श्रीमान् १०८
सद्गुरु बाबा शारदारामजी
उदासीनजी का
"जीवन चरित्र"

9/24

Sefananda Brahmachari

Sree Sree Mata Anandamayee
Asram

Bhadai

श्रीमान् १०८
सद्गुरु बाबा शारदारामजी
उदासीनजी का
"जीवन चरित्र"

'रामटेकड़ी,' पूना ★ 'उदासीनपुरी,' कप्तानगंज

लेखक :

राधेश्याम बडोलाशास्त्री

समर्पण

श्रीमान् १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम उदासीनजी के पूज्य गुरुमहाराज श्रीमान् १०८ महंत बाबा मौजीरामजी उदासीन इनके पवित्र चरण कमलों में।

श्री श्री ११०८ उदासीनाचार्य भगवान् श्रीचंद्रजी

ॐ सर्वाधाराय नमः।

9/24

भूमिका

मांगल्यं अनन्तप्रापितम्। वन्दे ब्रह्म ॐकारम् ॥
सुरदेवसर्ववन्दितम्। स्वयं मम आराधनम् ॥

—निर्गुण-रामायण

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

—श्वै. उ. अ. ६, मं. २३

भारतभूमि आदि काल से ही देव-देवता, ऋषि-मुनि और साधु-सन्तों की क्रीड़ास्थली एवं तपोभूमि रही है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रपरमानन्दकन्दने अपने मुखारविन्द से अर्जुन के प्रति कहा है।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

—गीता, अ. ४, श्लो. ५

(अर्थात्—हे परंतप अर्जुन, मेरे और तेरे कितने जन्म हुए और बीत गये। उन्हें मैं ही जानता हूँ; तू नहीं जानता।)

जहाँ समुद्र में अमर जीवन प्रदान करने-वाला अमृत था, वहीं प्राणघातक हलाहल जहर भी था।

इसी प्रकार इस भूमि में जहाँ देवता, ऋषि, मुनि, साधु-सन्त रहे हैं वहाँ ही दुष्ट दानव, असन्त, दुराचारी भी पैदा हुए हैं जिनके अत्याचारों से पीडित ऋषि, मुनि, साधु-सन्तों की रक्षा के लिये और अत्याचारियों से पीडित पृथ्वी के भार हरण के लिये तथा धर्मद्रोहियों से धर्मरक्षा के लिये समय समय पर परब्रह्म लीलामय परमात्मा को अनेक बार इस भूमि पर आना पड़ा।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—गीता, अ. ४, श्लोक ७, ८

(अर्थात् उस लीलामय परब्रह्म को धर्मसंस्थापन के लिये पृथ्वी पर युग युग में आना पड़ता है।)

त्रेतायुग में दशरथनन्दन मर्यादा पुरुषोत्तम "राम" के रूप में अवतरित हो कर अनेक राक्षसों का संहार करते हुए रावण को मारे थे। भगवान् रामचन्द्रजी के साथ भालु बन्दरों के रूप में तमाम देवता और ऋषि-मुनि अवतरित हो कर

भगवान् की सेना के रूप में दुष्टों के दलन में सहायक हुए थे।

द्वापारयुग में भगवती वसुन्धरा देवकी के गर्भ से स्वतः ज्योतिर्मय परब्रह्म षोडश कलावतार श्रीकृष्ण अवतरित हुए जिनका वात्सल्य रसास्वादन नन्द–यशोदाने आजीवन किया। उन्हीं नन्द-नंदन परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रने कंसादि अत्या-चारी दुष्टों का नाश किया था। और ग्वालबालों के रूप में देवता लोग इनके साथ मनोरञ्जन करते रहे।

ज्योतिर्मय परब्रह्म स्वतः पीछे अवतार लेते हैं; पहिले अपने पार्षदों और देवताओं को इस भूमि में भेज देते हैं। जो कि यहाँ पहिले ही ऋषि, मुनि, साधु, सन्त और दानी–धर्मियों के रूप में तपोमय जीवन यापन करते रहते हैं।

दुष्कर्मी, नास्तिक और पापियों के बबण्डरों से जब पृथ्वी काँपने लगती है और ये ही सन्तजन आदि त्राहि त्राहि पुकारने लगते हैं तो भगवान् अवतार लेते हैं और ये लोग उनके कार्य में जुट जाते हैं। ये ही सेना का काम देकर दुष्टों का नाश कर देते हैं।

कलियुग में भगवान् बुद्ध एक अंशावतार और ब्रह्म के उच्च कोटि के पार्षदों में से एक हुए।

एवं भगवान् ईसा, स्वामी शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य चैतन्य महा प्रभु, आदि भगवान् के सामिप्य प्राप्ति के साधक थे। गुरु गोरखनाथ, मायामच्छिन्दरनाथ, सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास तथा श्रीगुरु नानकजी, भगवान् श्रीचन्द्रमुनीजी, संत तुकारामजी, श्रीज्ञानेश्वरजी, तथा मीराबाई, समर्थ गुरु रामदासजी, भक्त नरसी मेहता आदि भगवान् की भक्तिधाराओं एवं सायुज्य भक्ति के रसास्वादक थे।

इनके द्वारा जनसमाज का कल्याण घोर अत्याचारों के समय हुआ और आज भी धर्म का दीपक, इन घोर अत्याचारों के मण्डराते हुए बादलों के नीचे, छल-कपट और पाप-पाखण्डों के तूफानों के घेरे में टिमटिमाता हुआ प्रकाशमान है।

दस बीस नहीं सैंकड़ों और हजारों सन्त साधुजन आजतक हो चुके हैं और होते रहते हैं तथा अनगिनत वर्तमान में भी उपस्थित हैं। न जाने कितनी बार उस लीलामय परब्रह्म के धाम पहुँच गये और कितनी बार फिर इस नरलीला क्षेत्र में तपस्वी जीवन साधन के लिये और लोककल्याण के लिये इनका आवागमन होता रहा। इस आवागमन के हेर फेर को तो भगवान् ही जान सकते हैं।

अस्तु, यह मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि समुद्र में हलाहल और अमृत दोनों ही रहते हैं। अमृत के प्रभाव के आधिक्य से ही वह हलाहल अधिक फफनाता नहीं है। किन्तु जब वह कदाचित् अमृत पर ही आक्रमणा करने लगेगा तो फिर अमरत्व प्रदान करने वाले अमृत को साक्षात् परब्रह्म ही उभार सकते हैं।

इसी प्रकार इस संसार सागर में जहाँ सन्त हैं वहीं असन्तों की भी कमी नहीं है और न रही है। अथवा जहाँ सन्तजन रहे वहीं दुष्ट भी तो रहे। सन्तों के आघात के लिए दुष्ट हुए और दुष्टों के दमन के लिए सन्त हुए। जब जब इन दुष्ट दानवों का सन्तों पर भी आक्रमणा होता रहा तब भी सिवाय परब्रह्म के कौन सन्तों को उभार सकता था ! अतः परब्रह्म को भी 'बहूनि मे व्यतीतानि०' से अर्जुन को सान्त्वना देनी पड़ी।

आज भी इस भारतभूमि में असन्तों की भरभार सी होते हुए भी सन्तों की कमी नहीं है। ये सन्त ही प्रभु के पार्षद होते हैं। प्रभु की प्रेरणा से ही ये लोग नरलीला में आ कर भारतभूमि को पवित्र करते रहते हैं।

ये ही सन्त भक्त उस प्रभु को निर्गुण निराकार ब्रह्म या सगुण साकार ब्रह्म रूप में भजते

रहते हैं। वे सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं और संसार में :—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननी जठरे शयनं।

से मुक्त हो जाते हैं।

और जिनकी योग साधना या तप में किसी भी प्रकार कमी रह जाती है वे तो देवलोक में ही प्रभु के पार्षद देवता स्वरूप हो जाते हैं। वे स्वर्ग में देव बनकर तबतक रहते हैं जबतक उनका योगतप–रूपी पुण्य समाप्त नहीं होता। जब वह पुण्य क्षीण हो जाता है तो फिर वे—'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशांति' के अनुसार फिर से मनुष्य लोक में—

(क) शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽपि जायते।
(ख) अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमतां॥

—गीता–अ. ६ श्लो. ४१, ४२

इस भगवदुक्ति के अनुसार वे योग भ्रष्ट तपस्वी पवित्र धनवानों, या उच्च कोटि के भक्तों के घर में अथवा साधुस्वभाव वाले योगियों के ही घर जन्म लेते हैं।

इन्हीं योग भ्रष्ट अवतारी योगियों में से श्री श्री १०८ बाबा शारदारामजी उदासीन भी एक हैं।

जिनकी आत्मकथा संक्षिप्त विवरण सन्त, साधु, और भक्त-अभक्त पाठकों के समक्ष 'प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्' के रूप में रखा जा रहा है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है:—

साधुचरित शुभ चरित कपासू।
निरस विशद गुणमय फल जासू॥

तात्पर्य यह है कि सन्त महात्माओं का चरित्र कपास के गुणतुल्य है। फल में नीरसता अवश्य है किन्तु कपास के गुण ही अपने फल को अमृत फल की तुलना करवा देते हैं।

इसी तरह सन्त-साधुजन असार संसार के लिए बाह्यस्वरूप से नीरस परन्तु अन्तःकरण से जनहितकारक होते हैं। इसलिए इनका चरित्र प्रधान होता है जिसके द्वारा ये लोग समाज के कल्याण के साथ अपना जीवन सफल करते हैं।

"शुद्ध पवित्र चारित्र ही साधु जीवन की कसौटी है।" उसी कसौटी में कसने के लिए ही वे तपोमय जीवन यापन करते हैं। इसी ध्येय को शास्त्रकारोंने परब्रह्म प्राप्ति का साधन बताया है।

किसी भी अमूल्य या मूल्यवान वस्तु के संस्कार होने पर वह बद्ध हो सकती है। सोने के संस्कार होने से वह अत्यन्त बलकारक रोगनाशक

गुणमय पदार्थ (कुस्ता) बन जाता है। हीरा को ही देखिए, वह कितने संस्कारों और कितनी भट्टियों में चढ़कर भुष्ट किया जाता है, तब कहाँ वह अमृतमय पौष्टिक खोराक बनता है।

श्रीमान् बाबाजीने भी इसी ध्येय को लेकर अपने शरीर को उस "परब्रह्म" परमात्मा की अमानत जान कर उसी ब्रह्म के बताये हुए मार्ग "तपःस्वाध्याय" का अवलम्बन किया है। सांसारिक अनेकानेक माया रूप बन्धनों से मुक्त होकर प्रभु परमात्मा की शक्ति में अपने आपको रमाया है। भक्ति-ज्ञान-बैराग्य के अमृत रस का आस्वादन बचपन से ही किया है। आपके जीवन में संघटित घटनाओं की विचित्रता पर यह निश्चय होता है कि प्रारब्ध अवशिष्ट तपस्या को ही यम–नियमादि के पूर्ण व्यवहार से साधने के लिये इस नर चोले में अवतरित हुए हैं। इसीसे आप परब्रह्म में उच्च कोटि के उपासक बनकर जनसमाज का कल्याण कर रहे हैं। इस कलि कलुषित असार संसार में आप अपने विभूतिमय धूना को रमाकर आस्तिक-नास्तिकों के मन को शान्ति पहुँचा रहे हैं।

आज के संसार में भी सन्त–साधुजनों की कोई कमी नहीं है और ना ही कलुषित असन्त दुराचारी नास्तिकों की छल छिद्रता की कमी है।

असन्तोंने सन्तों पर आघात ही किया है और सन्तोंने असन्तों को भी सन्त बना दिया है।

श्रीमान् बाबाजी के पास भी आत्माभिमानी पण्डित मानी नास्तिक जन यदा कदा पहुँच ही जाते हैं। परन्तु बाबाजी की शरण में पहुँच कर वे पण्डित मानी अभिमान को तिलाञ्जलि दे कर सच्चे प्रभुभक्त बनने की परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

" जिसकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरत तिन्ह देखहि तैसी। "

सन्तों के समक्ष भी यह उक्ति वास्तविक चरितार्थ होती है। उनके पास जिस भाव से जाइये और जिस भाव से उन्हें देखिये उसी प्रकार वे सन्त दिखायी देते हैं।

श्रीमान् बाबाजी में अद्भुत ब्रह्मज्ञान की विशेषताएँ बचपन से ही मिलती है।

जैसे साधारण हिन्दी की पहिली दूसरी पुस्तक पढ़ा हुआ बालक जलेश " रामचरित मानस " और अन्य धर्मग्रन्थों की कथाओं से ग्रामीण जनता को मोहित कर देता है।

वही " जलेश " योगाभ्यास के समय सुखपन्थ लोकनाम की गुफा में—" निर्गुण रामायण " की रचना करता है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो मर्यादा पुरुषोत्तम, लीलामय प्रभु तथा राजाराम कहकर अपने "राम" को रिझाया है; परन्तु बाबा शारदारामजी (भक्त जलेश) ने "जीव" रूपी राम और "मन" रूपी रावण का कटक जुड़ा कर खूब संघर्ष कराकर अपने "आत्माराम" (ब्रह्म) को रिझाया है।

"निर्गुण रामायण" जैसे महाकाव्य रचने के लिये अनपढ़ "जलेश" की आवश्यकता ही नहीं थी। यहाँ तो इस महा "राम रावण तत्त्व विचार" के लिये परम तपस्वी "बाबा शारदारामजी" की आवश्यकता थी। यह अभूतपर्व चमत्कार बाबाजी में आज विद्यमान है कि उनसे कोई भी धर्मशास्त्र की शंका या प्रश्न किया जाता है तो वे वेद–वेदान्त–उपनिषद्–ग्रन्थसाहब आदि अनेक शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा जिज्ञासु की शंका निवारण करते रहते हैं।

यद्यपि बाबाजी का ध्येय तो है कि—"सा विद्या या विमुक्तये" (वही विद्या ग्राह्य है जिससे मुक्ति प्राप्त हो) परन्तु जिज्ञासु समाज इस बात को कहाँ मानते हैं! वे तो कुछ न कुछ धर्मशास्त्रों की छेड छाड या प्रश्न बाबाजी से कर ही तो देते हैं।

श्रीमान् बाबाजी की मधुर मुस्कान और दयालु हृदय अपने भक्तों और प्रभु परमात्मा के भक्तों के लिये परमात्मा से सद्भावना माँगता है। श्रीमान् बाबाजी की गम्भीर मुद्रा तथा तपोमय मूर्ति के दर्शनों से समाज मुग्ध हो जाता है और बाबाजी के दर्शनों में खींचा हुआ चला जाता है।

आज इस घोर कलिकाल में ऐसे सन्तों की पहिचान करना आस्तिकों के लिये तो सुलभ है परन्तु नास्तिक जनों के लिये तो सर्वथा असम्भव है।

ऐसे सन्तोंने अपने जीवन में कितना त्याग, कितना संयम तथा कितनी कठिनाइयों का सामना किया होगा, प्रायः इन ग्रहणीय शिक्षाप्रद चरित्र और घटनाओं का समाज हित समाज तक पहुँचाने के लिये ही इन सन्तों का जीवन चरित्र लिखा जाता है। सन्तों की जीवनी में जो रहस्य होता है वह सन्तों को अमर कर देता है और लोकसमाज का कल्याण करता है।

यही रहस्य की बातें श्रीमान् बाबाजी की जीवनी में पायी गयीं जो कि ज्यों की त्यों उसीतरह लेखनी से इस ग्रन्थ में लिखी गयीं हैं।

अन्त में मैं तो यही कहूँगा कि हमारा ही

देश नहीं अपितु समस्त संसार ही इन सन्तों का ऋणी है और न जाने कबतक ऋणी रहेगा।

श्रीमान् बाबाजी इस असार संसार से विरक्त होते हुए भी सांसारिक माया में लिप्त मनुष्यों का कल्याण कर रहे हैं और तबतक करते रहेंगे जबतक उनका विभूतिमय चोला इस संसार की शोभा बढ़ा रहा है।

॥ हरि ॐ तत् सत् ॥

सन्त कृपाभिलाषी :—

राधेश्याम बडोला,

सं० साहित्यशास्त्री, हिन्दीविशारद,

साहित्यरत्न, राष्ट्रभाषा शिक्षक,

धर्मोपदेशक. ए. एम्. सी. सेन्टर, पूना

प्रस्तावना

महामंण्डलेश्वर वेददर्शनाचार्य स्वामी गंगेश्वरानंदजी महाराज, वेदमंदिर, अहमदाबाद

बाबा शारदारामजी महाराज एक बड़े प्रसिद्ध तपस्वी महात्मा हैं। आपके सद्गुणों एवं साधु सेवा के कारण आपका आश्रम (उदासीन-गढ़, रामटेकड़ी, पूना) भारत के समस्त साधु समाज में प्रसिद्ध हो गया है। आप बड़े सरल, संयमी, तितिक्षु और भजनानंदी महात्मा हैं। सदा अपनी गुफा में योगसाधना निरत रहते हैं। जब कभी बाहर निकलते हैं, जनता दर्शन के लिए उमड पड़ती है। जैसे आपका आचरण उच्च और पावन है, वैसे ही व्यक्तित्व भी बहुत प्रभावशाली है। आपके दर्शन और सत्संग से अनेक विलासी और नास्तिक भी संयमी एवं धर्मानुरागी बन गये हैं। इस विपरीत काल में भी प्राचीन महात्माओं के उच्च आदर्श आपके आश्रम में देखने को मिलते हैं।

ऐसे आदर्श महात्मा का जीवन लेखबद्ध होना लोक-कल्याण के लिए बहुत आवश्यक प्रतीत हो रहा था, किन्तु बाबाजी छिप कर रहना

ही अधिक पसन्द करते हैं। उनमें लोकैषणा का तो गन्ध भी नहीं। लेखकों की अत्युक्ति और अलंकारों से वे सदा दूर रहना चाहते हैं। किन्तु "महापुरुषों" के जीवन–चरित्र साधकों के लिए पथ प्रदर्शन करते हैं; धर्म और संस्कृति की लता के अवलम्बन होते हैं। इन्हीं विचारों से प्रेरित हो कर लेखकने बाबाजी महाराज के जीवन को लेखबद्ध करने का पुण्यप्रयास किया है।

मेरा बाबाजी से बहुत दिन से परिचय है। इस जीवनी को अंशतः पढ़ा और बड़ी प्रसन्नता हुई कि ऐसे महापुरुषों के जीवन राष्ट्रभाषा हिन्दी को अलंकृत करें और मुमुक्षुओं के मार्गदर्शक बनें। ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे महात्मा दीर्घजीवी हों, और उनके जीवन, इस कलिकाल की अंधेरी रात में, प्रकाशस्तम्भ होकर जनता का मुक्तिमार्ग प्रकाशित करें। आशा है इस जीवन से साधक अपना मार्ग निश्चय करने में अवश्य सहायता लेंगे।

बम्बई
६–१०–५३

महामण्डलेश्वर वेददर्शनाचार्य
— स्वामी गंगेश्वरानन्द

अभिप्राय

(हरिभक्तिपरायण शंकर वामन ऊर्फ सोनोपंत दांडेकरजी)
(रिटायर्ड प्रिन्सिपल, सर परशुरामभाऊ कॉलेज, पूना)

बाबा शारदाराम उदासीनजी का "जीवन चरित्र" इस ग्रंथ की कुछ प्रकरण मैंने पढ़ा। पूना से दो-ढ़ाई मील दूरी पर की रामटेकड़ी नामाभिधान से प्रसिद्ध हुई टेकड़ी पर रहनेवाले, उदासीन पंथ के बाबा शारदारामजी इन साधु की यह जीवनी है। पिछले दो तपों से अधिक काल आप साधुपुरुष पूना नज़दीक रहते हुए भी इनका किसी तरह का गाजवाज नहीं सुन पड़ा यह बड़ी महत्त्व की बात है। वे सचमुच उदासीन हैं। इन्होंने कीर्ति की इच्छा की ही नहीं। धूनासाधन, पञ्चाग्निसाधन, जलसमाधिसाधन, शितोष्णक्रियासाधन और प्राणायामादि साधन करते हुए साथ ही साथ वहाँ रहकर जनता की पारमार्थिक मार्गदर्शन करने की सेवा करते करते इनका काल व्यतीत हो रहा है। सैंकडों लोग इनके दर्शनार्थ और भेंटपूजा के लिये हर साल आ जाते हैं। लेकिन इन्होंने प्रसिद्धि के लिये अबतक कहीं भी दौड़ नहीं की।

उत्तर भारत में जन्म लेकर आप साधुपुरुष पूना के नज़दीक आ कर निवास करके रहे हैं यह

तो इस प्रदेश के लोगों का सौभाग्य है इसमें संदेह ही नहीं। इस जीवनी में इनके जन्म, गाँव, कुल का इतिहास, वैराग्य कैसा हुआ, इन्होंनें साधना क्या की आदि का वृत्तान्त दिया है। साधकों को उसका बड़ा उपयोग होगा।

इस "जीवन–चरित्र" के साथ इनके काव्य में का कुछ अंश भी इस ग्रंथ में प्रकाशित किया गया है यह बड़ी अच्छी बात है। आहिस्ते आहिस्ते इनका बचा हुआ काव्य भी प्रकाशित किया जायगा ऐसी मुझे यकीन है।

"साधु चरित्र यह हमेशा सुनना, गाना" ऐसे श्रीज्ञानेश्वर महाराजजी कहते हैं। परमार्थ साधकों के लिये उपयुक्त ऐसा यह एक नज़दीक के साधुपुरुष का जीवन–चरित्र श्री. राधेश्याम बडोलाशास्त्रीजीने प्रकाशित किया है। मुझे आशा है कि, मुमुक्षुजन उनके श्रमों का यथायोग्य चीज़ करेंगे।

— शं. वा. दांडेकर

अभिप्राय

(महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदारजी, पूना.)

कुछ चालीस वर्ष पहिले मुझे रामटेकड़ी के पीछे सासवड रोड स्टेशन के नज़दीक झोपडी में रहने का कारण हुआ था। उन दिनों इस पहाडी पर कुछ भी नहीं दिखता था। किन्तु जब श्री बाबा शारदाराम उदासीनजी का अधिवास इस पहाडी पर हुआ तो इस पहाडी की शकल ही बदल गयी। अब यहाँ श्रीप्रभुजी के मन्दिर और भगवन्नाम का घोष और आत्मचर्चा हुआ करती है। मैं श्रीमान् बाबाजी का दर्शन कल किया। देखा कि उनके उपदेशामृत के वर्षाव से अनेक भक्तगण यहाँ श्रीप्रभुस्मरण कर शान्ति पाते हैं। श्री बाबाजी का जीवन चरित्र प्रकाशित होने जा रहा। वह पढ़कर श्री बाबाजी की तपस्या और प्रभुसेवा का अच्छा परिचय मिला। श्री बाबाजी जैसे निस्पृह उदासीन साधु इस दुःखी संसार में सत्य धर्म की प्रेरणा और प्रवृत्ति बढ़ाते हैं। संसार तो चलता ही है और चलना ही चाहिए किन्तु सत्य प्रेम से जीवन व्यतीत करना यही हमारा आदर्श रहना चाहिये। इस आदर्श की ओर प्रजाओं का झुकाव सन्त साधु करते रहते हैं। यह उनका उपकार ऐसे चरित्रो से

ही ज्ञात होता है। श्रद्धा का विषय अलग छोड़ा तो भी यह काम दुनिया के शान्तितुष्टीपुष्टी के लिए बहुत ही आवश्यक और उपयोगी प्रतीत होता है।

कार्तिक व. ५ शके १८७५, पूना — दत्तो वामन पोतदार

अभिप्राय

(श्री. ग. म. नलावडे, महापौर (अध्यक्ष),
(पूना म्युनिलिपल कॉर्पोरेशन)

"रामटेकड़ी" यह नाम से पहचाने जाने-वाली टेकड़ी पूना ज़िले की हडपसर गाँव में है। इस टेकड़ी का "रामटेकडी" यह नाम, सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन ये तपस्वी, त्यागी महापुरुष के वास्तव्य से पड़ गया है। बाद में यह अजरामर रहेगी इतनी तपस्या बाबाजीने इस टेकड़ी पर की है।

पूना ज़िले में की यह प्रसिद्ध, पवित्र टेकड़ी एक माहपूर्व तक देखा नहीं। बाबाजी के एक परम-

भक्त और मेरे मित्र श्री. गोविंदरावजी जाना इन्होंने

" जाकर फल मन विषय विरागा,
सब तज राम चरण अनुरागा।"

इसीलिए भगवानने " प्रथम भक्ति संतन कर संगा " का उपदेश दिया है। क्यों कि—

" बिन सत संग विवेक न होई।"

और विवेक होने पर मोक्ष का योग बनता है।

" ज्ञान मोक्ष प्रद वेद वखाना।"

असल में साधु संत धर्म के जीते जागते अवतार हैं। भगवान् रामचन्द्रजीने सात्त्विक भक्ति का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा है।

" सतई सब मोहिमय जग देखे
मोये संत अधिक कर लेखे।"

हमारे यहाँ कारज से कारण को ज्यादा माना है। इसीलिए कहा है—

" बलिहारी उन गुरुन को
जिन गोविन्द दिया दिखाय।"

साधुओं के विषय में बहुत से लोगों के फिर भी शंकाएँ हैं। इनमें से अधिकतर तो वे हैं जो साधुवृत्ति धारी और साधु आडम्बर धारी ढोंगियों में कुछ भेद नहीं समझते। कुछ लोग साधुओं को इस दृष्टि से देखते हैं कि इन लोगोंने सिर्फ़ अपने उद्धार के लिये दुनिया से किनारा कर लिया।

जो यह विचार रखते हैं वे साधुवृत्ति और उसके साधन के फल को नहीं समझते। योनीधारी जीव बगैर कर्म किये नहीं रह सकते। योनीधारी लोग बहुत ऊँचे सेवक हैं। उनमें सेवक के साथी ऊँचे सेवक हैं। अपनी स्वार्थ न देख कर अपने मालिक के स्वार्थ को देखना; मालिक के सुख के लिये अपने सुख को त्याग देना; सब अहंकार ऊँच नीच का भाव त्यज नम्रता और प्रेम से मालिक की सेवा में सदा तत्पर रहना। और उस मालिक की आज्ञा व इच्छा है—

"सतई सब मोहिमय जग देखे।"

वो अपनी सेवा सब रूप में सर्वत्र जहाँ जहाँ वो हैं करने का आदेश देता है। भला जिसने ऐसी सेवा ग्रहण की है वह सब से किनारा करके कैसे बैठ सकता है? साधु का स्वयं का उद्धार जगत् के स्वार्थ हित और दूसरों के उद्धार से बँधा हुआ है।

साधु एकान्त में भले ही रहे पर साधु का प्रभाव एकान्त से सीमित नहीं रहता। ज्यों ज्यों साधु आत्मोन्नति मार्ग में आगे बढता है त्यों त्यों उसके तप के प्रभाव की अदृष्ट किरणें चारों

ओर रेडियो यन्त्र की लहरों की तरह फैलती हैं और जहाँ जहाँ अनुकूल पात्र पाती हैं अपना असर जताती हैं। जो पुरुष साधु समाज के सेवक हैं वे इस अनुभव से भली प्रकार परिचित हैं। इस विषय पर इस पुस्तक में इसके पाठकों को अनेक प्रमाण व उदाहरण मिलेंगे।

साधु मौन रहता हुआ व देखने को अकर्मण्य रहता हुआ भी दूसरों पर सद् प्रभाव डालता है और लोकसंग्रह का हितकर्म करता है।

इस संसार में हमेशा दो बल रहे हैं। एक कुकर्म का, दूसरा सुकर्म का। जब कुकर्म की मात्रा अधिक बढ़ जाती है तब मानव समाज के पतन का विनाश का योग बढ़ जाता है। उस समय में जो सज्जन पुरुष हैं उन्हीं के कन्धों पर मानव समाज स्थिर रहता है। सन्त—सज्जन समुदाय का वह विशेष कलयन्त्र है जो अपने प्रभाव से कुकर्मों को सुकर्म में बदल कर सुकर्म की मात्रा को बढ़ाते हैं जिससे कि प्रजा स्थिर रहे। आज भी जब चारों ओर चोरी, कपट, लम्पटता, चोरबाज़ारी, भ्रष्टाचार व अनेक काले कर्मों का बाज़ार गर्म नज़र आता है, उसमें—

या निशा सर्व भूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी उस अँधियारे में सन्त सत् के प्रकाश की चिराग् लेकर धर्म को स्थिर रखते हैं जिससे जगत् अथवा प्रजा स्थिर रहे।

'धर्मो धारयति प्रजा'

सर्व लोग के हित के लिये यह परम आवश्यक है कि हम लोग ऐसे सत्पुरुषों को अपनायें और इनके संग से हम अपना जीवन पवित्र करें व सफल बनायें। यह पुस्तक उसी संग का एक साधन है। आशा है, पाठकगण इसका पूर्ण लाभ उठायेंगे।

"सुनि समझे जन मुदित मञ्जुहि अति अनुराग।
लहही चार फल अछत तन साधु समाज प्रयाग।"

॥ ॐ सच्चिदानन्द तत् सत् ब्रह्म ॥

—मोतिलाल शाँखला

आभार–प्रदर्शन

(१) बहुत दिनों से विचार था कि श्रीमान् सद्गुरु बाबाजी महाराज का जीवन चरित्र एक ग्रंथ रूप में छपवाया जाय किन्तु आग्रह करने पर भी श्रीमान् बाबाजी की अनुमति न मिलने से मौन साधे बैठे थे। समय बीतने पर सं. २००९ मार्गशीर्ष शुक्ल गोविंददशमी को उत्सव के समाप्ति पर फिर बाबाजी से आग्रहपूर्वक विनय की गयी कि, "महाराज यह शुभ समय है, कृपा करके अपने जीवन चरित्र लिखवाने की आज्ञा दे दीजिये।" बहुत अन्य भक्तोंने भी प्रार्थना की तो महाराजजीने अपनी महती कृपा से हमारे मनोरथ को सफल किया जो कि हमें इस सेवा के लिए दे दी।

महाराजजी की असीम कृपा की ही देन है जो कि हमें इस महाग्रन्थ को समाज के उपकारार्थ प्रकाशित करने की आज्ञा मिली है। बाबाजी को इस महान् कृपा के हम हमेशा ऋणी हैं।

(२) इसके अनन्तर हम वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी (वेदमन्दिर, अहमदाबाद) के ऋणी हैं। जिन्होंने

महोदयने बड़े परिश्रम से काम किया। इसके लिए यह सज्जन हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

(७) आर्थिक सेवा करनेवाले महाशयों के साथ बाबाजी का शुभ आशीर्वाद है।

अन्त में हम जनताजनार्दन से प्रार्थना करते हैं कि ग्रन्थ में छपाई सफाई या प्रसंग आदि की कुछ भूलें जिसे भी देखने में आवें वे हमें सूचित कर दें ताकि पुनःसंस्करण में ग्रन्थ की रोचकता में कोई कमी न रहे।

फिर भी यदि इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों तो हम अपने बन्धुओं से हाथ जोड कर क्षमा याचना करते हैं।

—प्रकाशन समिति के सदस्य—

१ श्री. शिवनारायण आसाराम कलंत्री
२ श्री. फग्गुमल छाबडिया
३ श्री. राधेश्याम बडोलाशास्त्री
४ श्री. कापडिया
५ डॉ. पी. व्ही. करमचंदानी
६ श्री. जे. व्ही. करमचंदानी
७ श्री. गुरुदयालसिंग हुंजन
८ श्री. देसासिंग के. सोदी
९ श्री. नारायणराव बोगम
१० श्री. रामगोपालशेठ
११ श्री. कालूशेठ गोपीशेठ
१२ श्री. मूलचंद
१३ श्री. अचलदास सराफ
१४ श्री. प्रभाती गुप्ता
१५ श्री. अजित मेहता
१६ श्री. गोविंद हणमंत जाना

ग्रन्थ के बारे में

ग्रंथ में जो सामग्री हमें प्राप्त हुई है उसका संक्षिप्त विवरण यह है। जैसे—जन्म से लेकर वैराग्य तक की तमाम घटनाएँ सत्य और प्राथमिक रूप से बाबाजी के बड़े भाई श्री अलगुराम चौधरजी से मिल गयीं। वैराग्य से यात्रादिक की यथातथ्य घटनाएँ श्रीमान् बाबाजी के शिष्य बाबा ब्रह्मदास कोठारीजी से मिल गयीं और अन्य भक्त भद्र पुरुषों से प्राप्त हो गयीं।

*** क्षमा—याचना ***

ग्रन्थ का प्रकाशन बहुत शीघ्र करना था। छपाई शुरू हो गयी और लिखने का कार्य बहुत कुछ रहा हुआ था, जिससे कि मैं स्वतः बहुत स्थलों पर प्रूफ संशोधन का कार्य नहीं कर सका। अतः ग्रन्थ में जो कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हों तो कृपालु पाठक गण मुझे क्षमा कर दे दें तो इसी में मेरा परिश्रम सफल होगा। आशा है पुनःसंस्करण में ग्रन्थ में आयी हुई त्रुटियों को सुधारने का प्रयत्न किया जायेगा। अन्त में मैं सब पाठकगणों से सविनय करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि जिनके हाथों में यह ग्रन्थ रूपी पुष्प पहुँचेगा वे ग्रन्थ में आयी हुई जीवनचर्या का मनन कर तथा इसमें भरी हुई सुगंध को ग्रहण करें यह प्रार्थना।

मिती कार्तिक वा॥ ९ — सन्तजन कृपाभिलाषी

सं. २०१० — राधेश्याम बडोला

श्रीमान् १०८ बाबा शारदाराम उदासीन महाराजजी की गुरुप्रणाली।

(१) उदासीनाचार्य श्रीगुरु श्रीचन्द्रभगवान्
(२) श्रीगुरु बाबा भक्त भगवान्
(३) श्रीगुरु बाबा टीकारामजी
(४) श्रीगुरु बाबा तुलारामजी
(५) श्रीगुरु बाबा फतेचंदरामजी
(६) श्रीगुरु बाबा साधहरिमकरंदरामजी
(७) श्रीगुरु बाबा धन्नुरामजी
(८) श्रीगुरु बाबा सहजरामजी
(९) श्रीगुरु बाबा संगतबकसजी
(१०) श्रीगुरु बाबा माधोरामजी
(११) श्रीगुरु बाबा सुद्धरामजी
(१२) श्रीगुरु बाबा मौजीरामजी
(१३) श्रीगुरु बाबा शारदारामजी

—०—
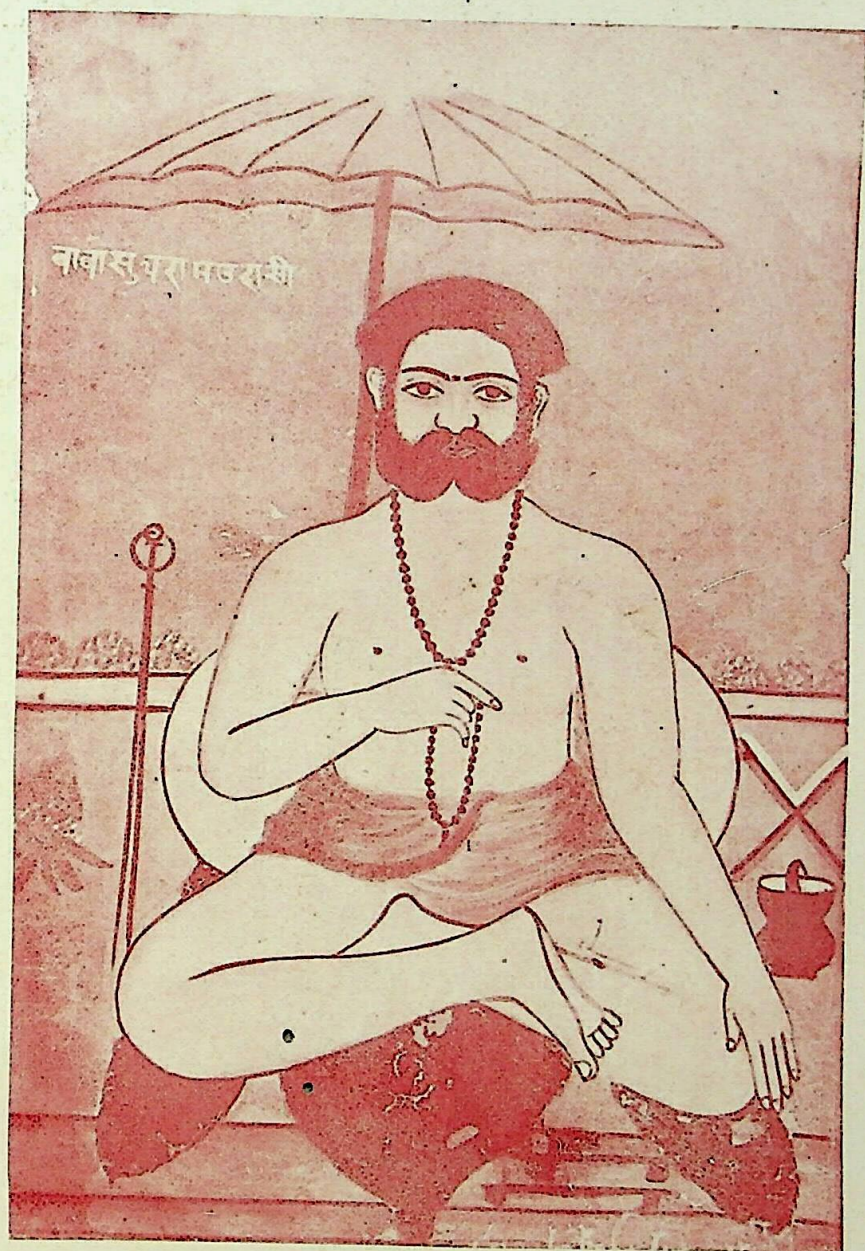
श्रीमान् १०८ महंत बाबा सुद्धरामजी

ॐ

" उदासीन सम्प्रदाय वंशावली के दोहे "

श्री ब्रह्माजी के पुत्रवर, सनत्कुमार मुनिराज
नारदमुनि, देवर्षि हुये, भक्तजनों हित काज ॥१॥
बाभ्रव्य, दालभ्य, जयमुनि, संजीवन देव अरविन्द
सहस्रभानु, शतभानुजी, चित्रभानु, गोविन्द ॥२॥
चित्रभानु, वरद दिव्य । सुधर्म, सुवर्म, अरु राम ॥
आदित्य, भूरिसेन, मुनिवर । महासेन अभि राम
हिमांशु गोपाल, नारायणजी । श्रीपद्म, कृष्ण
शिवदेव,
ऋतु वाम तिलक, गगनमुनि, । विबुध सुदेव भूदेव
शान्त, सत्य, विधि निधि विजन । सुजन श्रुतसिध्द
माधव,
मनोहर धर्मध्वज जयध्वज । गिरधर सत्य, ब्रह्मदेव,
विशाल, योगीन्द्र, रवीन्द्रमुनि । प्राज्ञ, श्रीश देवेश
चिदानन्द, सुज्ञान, विज्ञानप्रभु । शुद्ध विशुद्ध
लोकेश,

आचरण, सुभूषण सिद्धमुनि। नृदेव, नरेन्द्र देववान
प्रताप सुधाकर रत्नाकर। हिमकर देवरात मतिमान
सुरात विष्णु, शंकर हिरण्य। सुवेश, रिपुजीतनहार
मदन, अलोक सुलोकजी। सुकीर्ति पुण्यकीर्ति विस्तार
लोकपाल, सुमल, सुनय, अभय। रोचिणु दीपन सुतेज,
सुतप, चन्द्र त्रिनयनमुनि। हरिनारायण बलतेज
सुलोचन, प्रलोचनमुनि, । ब्रह्मबोध, विरजराज,
सुजन्म, सुशमी सुधामजी,। त्रिलोक भीष्म सुखराज
मंड़ल, पुण्डारिक, जितानन्दजी। महेश, शक्ति, अरुशान्ति
हंश सुसंग असंग प्रभु। विज्ञ कृतारथ कान्ति
सुबोध कुण्डल बृहद्रथ, सुरथ। सुवर्ण, शीमन,
हारीत, सुमन, ब्रह्मदत्तजी तपोधल,। शुचि, पूर्ण, हर्षणजीत
तोषण दिवाकर सुचितमुनि,। सुवृत, रामवित
मतिमान् सुधन प्रियंवद। श्वेतकेतुजी,। विघूत सुघन्व गुणवान्
प्रस्ताव, वीतहव्य रुद्धजव प्रभु। पिजवन उदय

स्वप्रकाश स्वतःसिद्ध, प्रभाकरनिकर । च्यवन सामोप्रिय आश
लोकप्रिय प्रभुप्रसादजी। हरि निरूपण नहुष,
विश्वश्रवा सुयश प्रभु। धर्म सेतु निरंकुश
चित्रकेतु लक्ष्मी मुनि । श्री सुमेरु हरि गम्भीर
ऋषिसम चतुर्भुज महाप्रभु । भास्कर रामरति धीर ॥
अतीत मुनि श्रीवेदमुनि । अरु सन्तरिण ऋषिराज
गुरुनानक अवतरित हुये। भक्तन के हित काज

रचयिता:—राधेश्याम बडोला

विषयसूचि
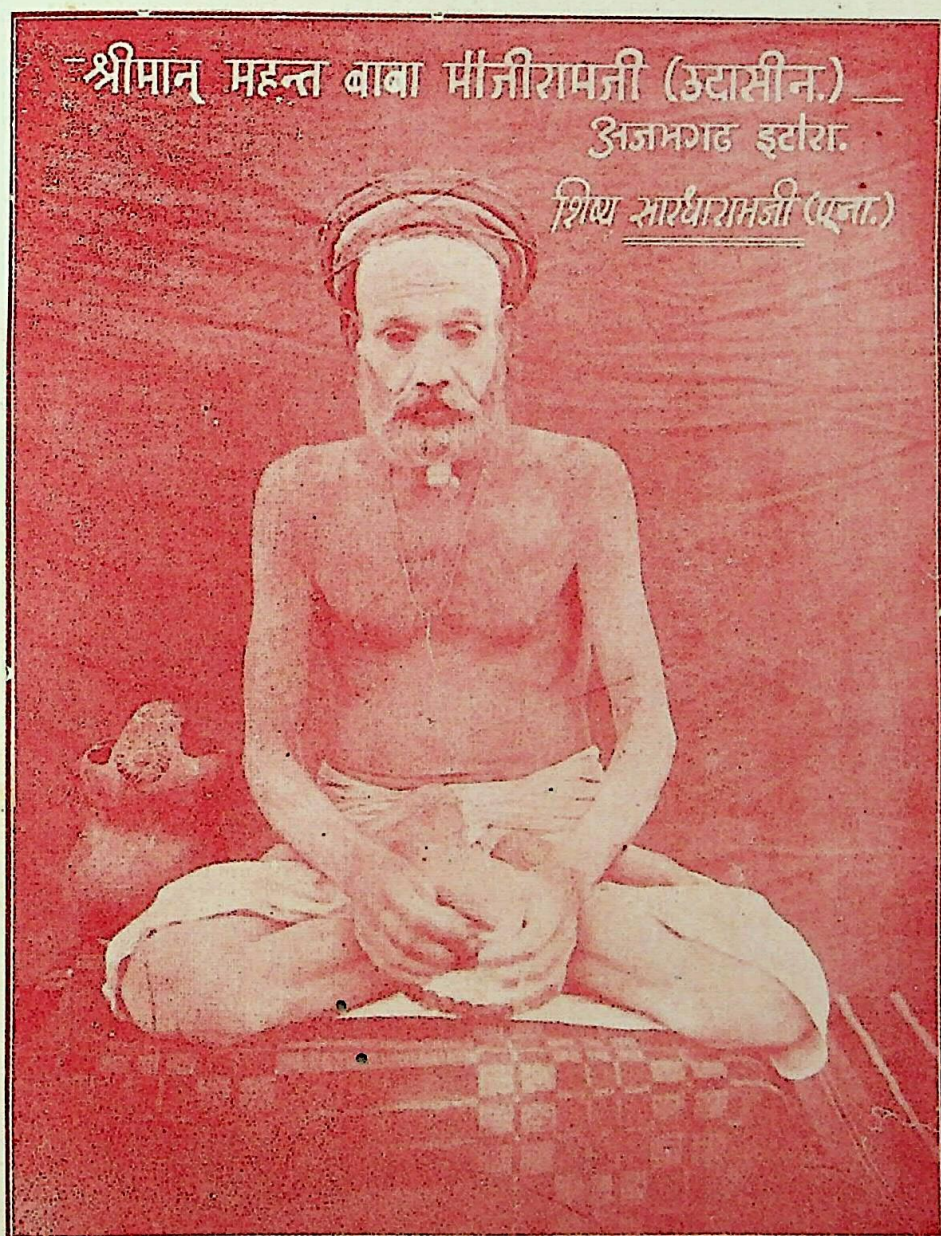
श्रीमान् १०८ महंत बाबा मौजीरामजी
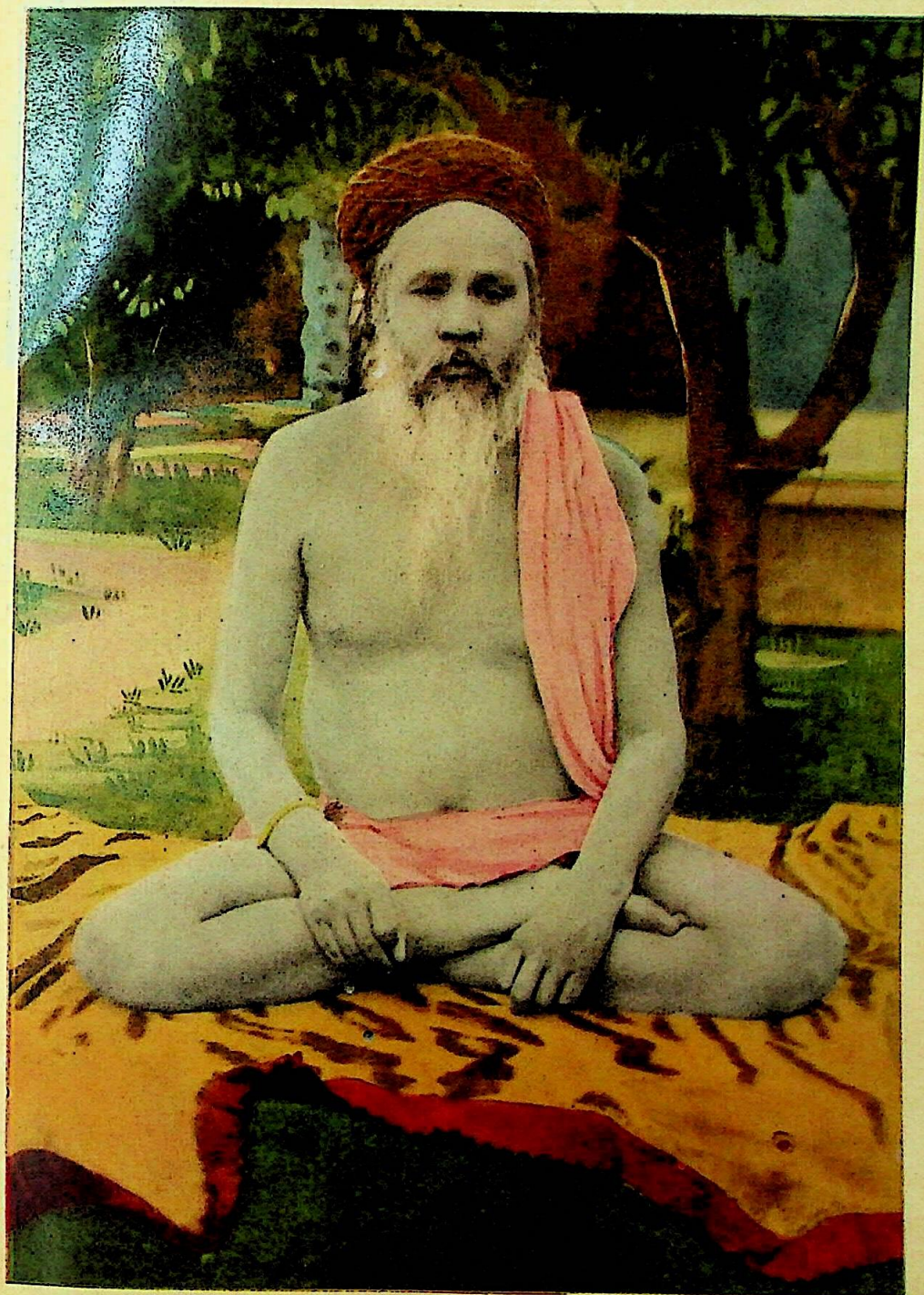
१०८ श्रीमान् सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन

ॐ

श्रीमान् महंत १०८

सद्गुरू बाबा शारदारामजी उदासीन, श्रीराम टेकड़ी, (पूना)

"उदासीनगढ़" निर्माता

तथा

"उदासीनपुरी" (आज़मगढ़)

निर्माता का

"जीवन चरित्र"

श्रीमान् महंत १०८

सद्गुरू बाबा शारदारामजी उदासीन,
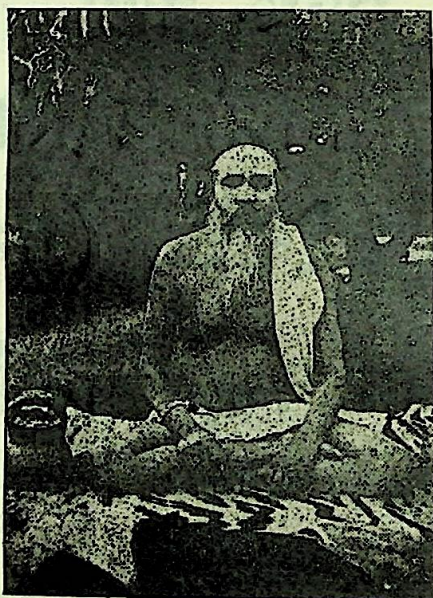
" उदासीनपुरी "
कप्तानगंज,
(जि. आज़मगढ़)

" श्रीराम टेकडी,
उदासीनगढ़, "
हडपसर (पूना).

बाल चरित्र प्रकरण

❀ जन्मभूमि ❀

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

— नीति

(१)

उत्तर प्रदेश अवध प्रान्त में जिला "आजमगढ़" है, वहाँ "कप्तानगंज" एक सुन्दर गाँव है। इस गाँव में अधिक तर किसानों की बस्ती है और प्रायः सभी जाति के लोग इस गाँव में निवास करते हैं। इस गाँव के आस पास और भी छोटे छोटे ग्राम हैं किन्तु प्रायः धनी मानी जमीन्दारों के ठाट इसी गाँव में है। ग्रामीण जनता बहुत सीधी सादी किन्तु अपने कार्य में सभी चतुर और विचारशील हैं।

वर्ण व्यवस्था और जाति पान्ति की परंपरा तो हिन्दुस्तान के कोने कोने में है ही; परन्तु इस गाँव में इस वर्ण व्यवस्था का प्रभाव अधिकाधिक जमा हुआ था। साथ ही इस गाँव के लोग पुरानी रूढीवादी प्रथाओं में अधिक विश्वास रखते हैं।

परन्तु हैं कट्टर सनातन धर्मी, ईश्वर और सन्त साधुओं पर श्रद्धा भाव रखने वाले।

* माता-पिता-जाति *

इसी गाँव में वैश्य कुल भूषण "कोइरी" जाति शिरोमणि श्रीमान सेठ, "गुलाबचन्द" जी निवास करते थे। आप की धर्मपत्नी का नाम श्रीमती "शची देवी" था। सेठ जी चार भाई थे। सभी भाइयों के घरों में अच्छी सम्पन्नता थी; चारों भाइयों में बड़े भाई जी की मान्यता सर्व प्रकार थी, क्योंकि बड़े भाई जी बड़े साधुस्वभाव और उदार हृदय के थे। चारों भाईयों में कुल मर्यादा के स्वाभाविक गुण थे। किसी भी छोटे बड़े लोक मर्यादा के कार्यों में बड़े भाई जी की ही सुलाह ली जाती थी; फिर भी सेठ "गुलाबचन्द" जी भी सब में मान्य और धन सम्पन्न थे। आप के गृह में प्रभु कृपा से अतिथी सत्कार और दान पुण्य प्रायः हर छोटे बड़े बारत्यौहारों पर हुआ ही करता था।

आसपास के ग्रामीण लोग आप को साक्षात् धर्मावतार और सत्य अहिंसा की मूर्ति कहते थे।

इनके वंश के पूर्वज ही सत्यवादी अहिंसात्मक थे यहाँ तक कि वे लोग बैलों को "बधिया" करवाना भी हिंसा ही समझते थे। उन का

कहना था कि "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् मनुष्य का धर्म यही है कि वह किसी की भी मनसा वाचा कर्मणा किसी भी तरह हिंसा न करे। कोईरी वंश के पूर्वज बड़े दानी और सत्यवादी थे। सेठ गुलाबचन्द जी उनके वंश में अपने पूर्वजों के अनुयायी थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शची देवी जी तो साक्षात् शशि (चन्द्रमा) के रूप में शीतल सौम्य स्वभाव, दयाद्र हृदय और लक्ष्मी स्वरूपा थी। आपका अधिकतर समय व्रत, उपवास, पाठ पूजा और माला जपने में ही बीतता था। आपका स्वभाव इतना सरल और स्नेहमय था कि गाँव की स्त्रियाँ आपकी बात बात में प्रशंसा ही किया करती थी। माता शची देवी साधु सन्तो और देव मूर्तियों को साक्षात् परमात्मा का स्वरूप मान कर उन की पूजा और सेवा सत्कार में कोई कमी नहीं रखती थी।

धार्मिक कथाएँ आपको अधिक रुचिकर थी। आपके घर में परमात्मा की असीम कृपा थी वहाँ अन्न धन वस्त्र आदि की कोई कमी नहीं थी।

"जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना।"

के अनुसार उनके पारिवारिक जीवन में बड़ी सुख शान्ति थी। साथ ही, सन्त समागम और

हरि कथा तथा अतिथी अभ्यागतों की पूजा उस घर में हुआ करती थी।

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधयः कान्ता प्रियालापिनी
सन्मित्रं स्वधने स्वयोषितरतिः आज्ञाप्रिया सेवकाः
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं, मिष्टान्नपानं गृहे।
साधोः संगमुपासते हि सततं, धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

— नीति

अर्थात् – इच्छानुसार घर हो, विद्वान सन्तान हो और गृहलक्ष्मी भी मधुर बोलनेवाली हो। अच्छे लोगों से मित्रता हो, अपनी ही स्त्री में प्रेम (आसक्ति) ही (अन्य स्त्रियाँ मातृ पुत्रिसम) हों सेवक भी अपनी आज्ञा के अनुसार चलें। अतिथी सत्कार हो, देव पूजन आदि हो तथा सात्त्विक, सुन्दर भोजन होता हो। सज्जन तथा साधुसन्तों की संगति हमेशाही हो ऐसे गृहस्थाश्रम के लिये धन्यवाद है।

इस प्रकार धन्यवाद के लायक सभी गुण आपके गृहस्थ में थे।

* शची माता को स्वप्न में भगवान शंकर के दर्शन *

माता शची को माला जपने और राम नाम रटने की इतनी अधिक आदत थी कि कभी कभी

गहरी निद्रा में भी आप की माला और राम राम रटन में मुह जप ही करता रहता था।

आप अधिक ध्यान भगवान शंकर जी का ही किया करती थी और गाँव में भगवान शंकर जी का मन्दिर भी पास में ही था इसलिये उन्ही का ध्यान अधिक मन में आया करता था। एक दिन माताजी का एकादशी का व्रत था। रात्री का अखण्ड जागरण करने का आप का नियम था, परन्तु तमाम रात्री बीतने पर प्रातःकाल आप की आँखों में एक नींद का झोखा आया, देखती क्या हैं कि आप भगवान भोलेनाथ से वरदान माँग रही हैं कि :– "हे भोले बाबा! मेरा मन आपसे बिचलित न हो!" परन्तु भोले बाबा कहते हैं कि तुम तो एक ऐसे पुत्र की माता होनेवाली हो जो कि तुम्हें मेरे ही भेष में मिलेगा। वह बालक तुम्हारे और बच्चों की तरह भोगी नहीं होगा। वह सच्चा त्यागी वैरागी तपस्वी साधु होगा। तुम तो धन्य हो! तुम्हारी भक्ति का फल तुम्हें मेरे ही भेष में मिलेगा।

माता की नींद का झोका भंग हुआ; शिव, शिव, कह कर माला सँभाली, स्वप्न का विचार हृदय को प्रसन्न कर रहा था। बार बार भगवान

शङ्कर के वरदान को स्मरण करती थी और आप ही कह देती थी कि हरि इच्छा बलवान है।

* जननी *

नारी जाती का नाम जननी इसीलिये है कि वह जन्मदात्रि है और माता है। उसकी कोख से "कुपुत्र भी जन्मता है और सुपुत्र भी," परन्तु कुपुत्र–सुपुत्र पैदा होने का श्रेय माता को ही है। हाँ – पैदा होने बाद कुपुत्र–सुपुत्र का श्रेय पिता को भी यत्किंचित् माना जाता है।

कद्रूने अपने पति से जैसे पुत्रों की माँग की उसका श्रेय कद्रू को ही मिला। विनिताने भी अपनी इच्छानुसार पुत्रप्राप्ती में श्रेय प्राप्त किया।

माता कुन्ती कितनी भाग्यशालिनी थी जिसने पांडव जैसे पुत्रों की माता होने का श्रेय प्राप्त किया।

गान्धारी माताने भी तो दुर्योधन आदि पुत्रों को जन्म दिया।

ऐसे अनेकों प्रमाण हैं कि जननी की इच्छा से सुपुत्र और कुपुत्रों की प्राप्ती होती है।

महात्मा ईशा की माताने :—

"वरमेको गुणी पुत्रो नच मूर्खाः शतैरपि।"

शची माता को (बाबाजी के माताजी को) स्वप्न में भगवान शंकर के दर्शन। भगवान शंकर शची माता को आशीर्वाद देते हुए कह रहे हैं – " तुम तो एक ऐसे पुत्र की माता होनेवाली हो जो कि तुम्हें मेरे ही भेष में मिलेगा। वह सच्चा त्यागी, वैरागी, तपस्वी साधु होगा। तुम्हारी भक्ति का फल तुम्हें मेरे ही भेष में मिलेगा। "
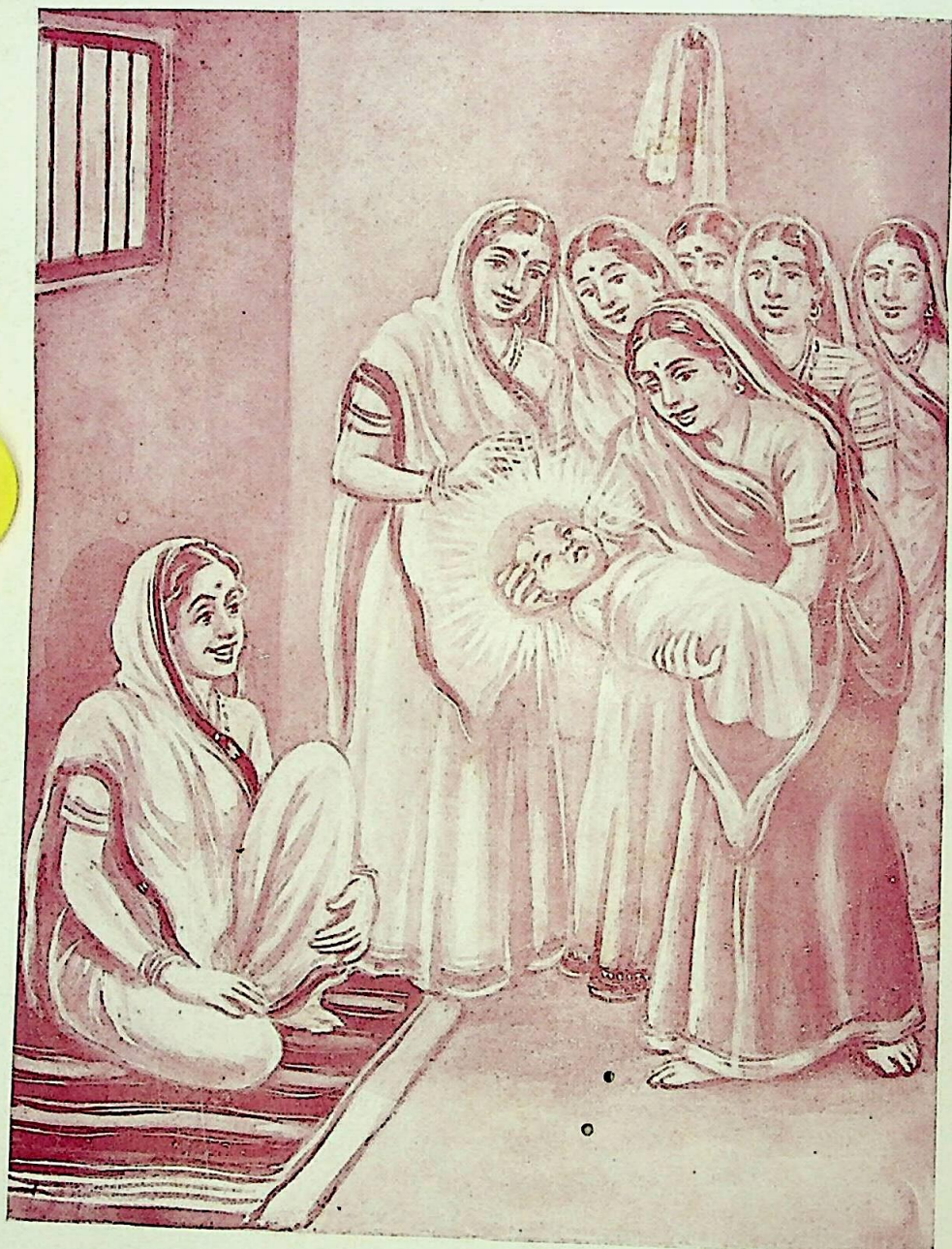
बाबा शारदारामजी के जन्मकाल का दृश्य। धाया कहते थे कि इस बालक के पैदा होने पर एक अद्भुत चमत्कार कि बात यह है कि इसके मुखमण्डल पर एक विशेष तेज चमक रहा था। ऐसा मालूम होता था कि प्रसूति-गृहमें चाँदनी का प्रकाश सहसा प्रकाशित हो रहा हो।

एक ही सर्वगुण सम्पन्न पुत्र के लिये कितनी कठिनाइयों का सामना किया।

महात्मा गान्धी जी की पूज्य माता की शिक्षा का आदर्श आज समस्त संसार प्रसिद्ध है कि "महात्मा गान्धीजी अपनी माता की आदर्श शिक्षा के पक्के अनुयायी थे इसीलिये तो वे समस्त समाज में पूज्य "बापू" कहलाये गये।

अस्तु लोग चाहे कुछ भी समझें किन्तु मैं तो यही कहूँ गा कि माता ही सुपुत्र-कुपुत्र की कसौटी है। एक उच्च कोटि का जगद्गुरु या परम-हँस भी उसी जननी से जन्म लेता है—और वह भी जननी से ही जन्म लेता है जो क्रूरतादिक अनिष्ट कर्मों से भी अघाता नहीं है।

यद्यपि, प्रारब्ध, सञ्चित और क्रियमाण कर्मों के ही अनुसार प्राणिमात्र सुखदुःख का भोगी और भक्त-अभक्त होता है; किन्तु फिर भी भक्त-अभक्तता में तो माता के "चरित्र-शिक्षण और व्यावहारिक सच्चरित्रता का प्रभाव बालक के लिये जीवन सुधार का काम कर जाता है।

वीर शिवाजी की माता स्वतः अनपढ़ थी किन्तु भाव पढ़े लिखे,-गुणे थे। स्वतन्त्रता के उच्च भावोंने व्यक्त हो कर पुत्र को उसी ओर प्रेरित किया।

कहने का तात्पर्य यह है कि माता का प्रभाव बच्चे पर स्वाभाविक पड़ता है। गर्भस्थ बालक तो माता के आहार, व्यवहार, रहन, सहन, सत्य, असत्य, भक्ति, अभक्ति आदि गुणावगुणों के ढाँचे में पलता है।

मैं अब अपने वक्तव्य को यों स्पष्ट कर देता हूँ कि – माता शची भी सती–साध्वी और शङ्कर उपासिका थी, यद्यपि उनके दो पुत्र पहले भी हैं किन्तु इस बार उनके गर्भ में जो बालक है उसके लिये शंकरजी से यही प्रार्थना की जाती है कि, "मेरा बालक उच्च कोटि का प्रभु भक्त हो"। शङ्करजी ने माता शची को स्वप्न में जो वरदान दिया था वह उन्हें रात दिन स्मरण ही रहता था।

* बालक का जन्म *

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

— गीता अ. ६, श्लो. ४१

इस भगवदुक्ति के अनुसार संवत १९४६ कार्तिक शुक्ल एकादशी रविवार प्रातः अरुणोदय के समय श्रीमान सेठ गुलाबचन्दजी के शुभगृह में श्रीमती शची देवी से पुत्ररत्नने जन्म लिया।

इस पुत्र के होने में माताजी को विशेष प्रसवपीड़ा नहीं हुई परन्तु आँखों में कुछ बेहोशी कहें या निद्रा (मायादेवी) का झोखा सा आगया। देखती क्या है कि कोई बालक भगवान शंकर की तरह साधु वेश बनाकर माँ की गोद से भाग रहा है, माता ज्यों ही उसे सम्भालने हाथ बढाती है कि हाशे में आकर उन्हें धाया और अन्य स्त्रियाँ बधाइयाँ देने लगीं।

✻ अद्भुत बालक ✻

"संत कतहु लेहि अवतारा"

— पलटु साहेब

"बच्चा थोरो ही है यह तो औतार है, औतार" इस तरह की चर्चा गाँव भर के लोग लुगाइयों में घर घर में फैल गई। धाया का कहना था कि इस बालक के पैदा होने पर एक अद्भुत चमत्कार की बात यह है कि – इसके मुखमण्डल पर एक विशेष तेज चमक रहा था। ऐसा मालूम होता था कि प्रसूति–गृह में चाँदनी का प्रकाश सहसा प्रकाशित हो रहा हो।

माता अपने इस सुन्दर और अद्भुत तेज-युक्त बालक को देखकर खिल उठी, और हृदय से भगवान शंकर की प्रार्थना करने लगी।

एक ही दो दिन में इस बच्चे के जन्म की चर्चा आसपास के गाँवों में फैल गई और लोग उस बालक के दर्शनार्थ यत्र तत्र से आने लगे।

"बालक सचमुच में अद्भुत और तेजोमय है।" बस यही उक्ति हर एक की वाणी में थी। जो आता था घन्टों उसे देखते ही रहता था। कोई कहता था —

"होनहार बिरवान के
होत चीकने पात।"

प्रभु की लीला बड़ी विचित्र होती है। प्रभु लीलामय को कोई पहिचान ही नहीं पाता। इसी हेर फेर में भगवान अपने भक्तों को भी विचित्र भावों से पैदा करते हैं, उन्हें भी मायावी समाज नहीं पहिचान पाता।

इसी तरह इस घर में उत्पन्न हुये बालक को कोई नहीं पहिचान पाया। यह तो भगवान की प्रेरणा से नरदेह में फिर से अपनी तपस्या पूर्ण करने को इस नरलोक में उत्पन्न हुआ था। परन्तु इस भवितव्यता को कौन जान सकता था। वहाँ तो माया मोह का जाल बिछा था, इतनी सूझ किसको थी कि यह बालक सचमुच में भगवान की लीलामय प्रेरणा से इस घर में पैदा हुआ है।
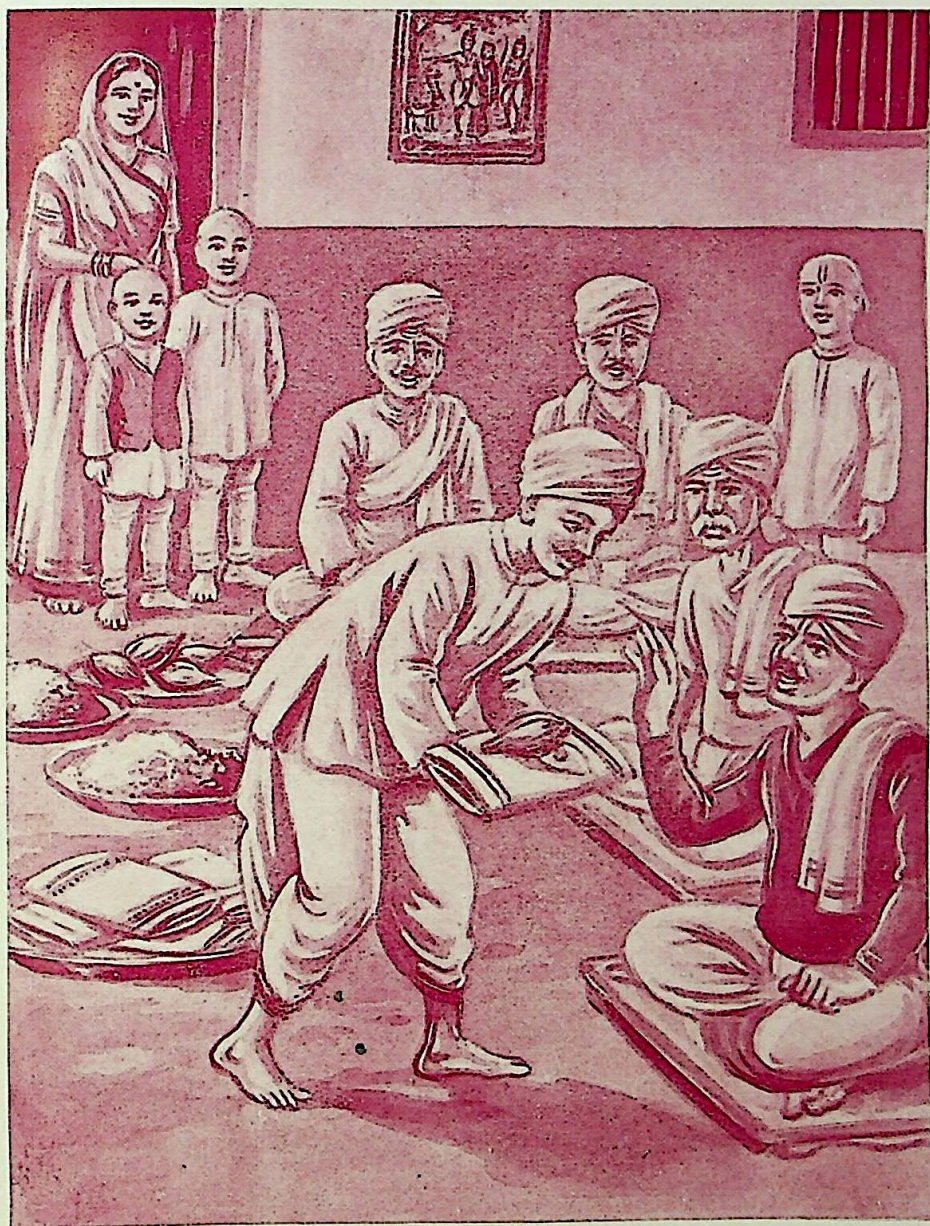
श्री गुलाबचंदजी (भक्त जलेश के) नामकरण संस्कार के समय ब्राह्मणों को अन्नवस्त्रादि दान देते समय ।

सच ही तो है साक्षात परब्रह्म लीलामय भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द को नन्द यशोदा तथा गोप गोपियाँ नहीं पहिचान पाये। अहीरों की छोकरियों ने उन्हें छाँछ की मटकियों के पीछे नाच नचाया। प्रभु तो मायापति लीला-मय हैं। उन्हें उन्हीं के पार्षद पहचान सकते हैं। साधारण मायालिप्त अज्ञानी जनों से भगवान को पहचानने की बात तो दूर रही, उनसे तो भगवान के भक्त भी पहचानने में नहीं आते।

※ नामकरण संस्कार ※

श्रीमान सेठ गुलाबचन्दजी सर्व सम्पन्न थे। दान और मान करने में आपकी ख्याति आसपास के गाँवों में फैली हुई थी। आपकी यशःकीर्ति प्रायः कस्तानगंज के आसपास के गाँवों में सर्वत्र विद्यमान थी।

बालक की विलक्षणता सुनकर तो गाँवों के लोगों की यात्रा सी लग गई। उन दिनों तो रात दिन की भीड़ सेठजी के घर की ओर ही शोभा बढ़ा रही थी। सेठजीने बड़ी उदारता तथा प्रसन्न चित्त से दान पुन्य के रूप में याचकों और ब्राह्मणों को बहुत सा अन्न–वस्त्र और धन दिया। कुलपुरोहित श्रीमान पं. शुभकरणजीने बालक

का नामकरण संस्कार वैदिक सनातन धर्म और कुल मर्यादा के अनुसार छठे महिने में शुभ घड़ी शुभ मुहूर्त में किया।

बालक का नाम 'जलेश' रखा गया जो कि माता पिता को रुचिकर था।

इस शुभ संस्कार में गविदान किया गया। साधु-ब्राह्मणों को अन्नवस्त्रादिक भोजन दक्षिणा से संतुष्ट किया गया। सबने बच्चे को शुभ-आशीर्वाद दिया।

* बचपन *

"बालक परमेश्वर का स्वरूप होता है।" उसकी मुस्कान में मायामोह की ज्योति होती है, इसी बालक की एक मधुर मुस्कान से उसके माता पिता उसपर लट्टू हो जाते हैं और अपने लाड़ प्यार को उस पर न्योछावर कर देते हैं।

बालक जब अपनी तोतली बोली में कुछ बोलने लगता है तो सुननेवाले भी खिल उठते हैं चाहे उस बोली से गाली ही क्यों न निकलती हों।

असभ्य लोग अपने बच्चों को इस भोली सुकोमल अवस्था से रे, बे, तू, ता, सिखा देते हैं जिसका परिणाम बहुत ही बुरा भविष्य में होता है। यही एक अवस्था है जिसे जिधर मोड़ा जा सके मुड़ सकती है।

परन्तु यहाँ तो बात ही कुछ और थी। बच्चा जलेश जब घुटनों के बल चलने लगा तो उसकी शोभा कुछ विचित्र ही दिखाई देती थी। इस बच्चे को किसीने भी कोई कुछ इसारा नहीं दिया कि यह चले या कुछ माँगे। न दूध पीने की सुध, और न माता को तंग करने की ही आदत। "इन के राम तो मस्त बने रहते थे।"

इस बालक की मधुर मन्द मुस्कान में एक जादु का सा असर था। एक ही मुस्कराहट में देखने वाले मुग्ध हो जाते थे। बालक की तोतली बोली में इतना आकर्षण था कि सुनने देखने वाले इसे गोद में लिये विना नहीं रहते। बालक क्या था यह तो 'मनमोहन' था जो कि सब के मन को मोहित करता था।

जलेश की मुस्कान में माता शची सब कुछ कारोबार भूल जाती थी। धूल से भरे बालक को झाड़ पोंछ कर माता छाती से लगा देती, और उस अद्भुत बालक के विलक्षण चरित्रों पर माता कभी कभी सोच में पड़ जाती थी कि— "न जाने परमात्मा की क्या माया है जो इस बालक में इतनी आकर्षणता है।"

* बचपन की क्रीड़ायें *

माताजी को स्वाभाविक आदत पड़ी हुई थी। सुबह चार साढ़े चार बजे उठकर शौच-स्नानादि से निवृत होकर 'पाठपूजा' में बैठ जाना, और कम से कम घंटा दो घंटा पूरे भगवान की पूजा प्रार्थना स्तोत्र पाठादिक कर के भगवान की आरती करती थी। और वैसे भी घर के कार्य संचालन करने में बड़ी निपुण थी। इसी तरह माता निश्चिन्तता से अपने प्रभु भोलेनाथ के ध्यान में रमी रहती थी।

जब जब आप अपने नित्य कर्म पाठ-पूजादिक में बैठती थी तब तब बालक जलेश भी आप के पास बैठकर अपनी उस जादुभरी तोतली बोली में बोल उठता :—

"इष्ट आमा, आमा, आम, आम,"

माता का ध्यान इस विचित्रता की ओर आकर्षण हो जाता और चकित हो जाती थी।

अपने पास पड़ोस की स्त्रियों से इस बालक की विलक्षणता को कह देती थी, और कहती थी कि "यह मनुष्य थोड़ा ही है, यह तो न जाने परमात्मा की क्या माया है।" इतना कह कर फिर आप ही अपना समाधान कर बैठती कि —

" होहि है सोहि जो राम रुचि राखा ।
कोकर तर्क बढावे साखा ॥ "

— तुलसीकृत

इस क्रीड़ामय जीवन के विकसित होने में कुछ समय नहीं लगा, यह तो आमोद प्रमोद का समय था ।

* कुमार अवस्था के स्वाँग *

" प्रसादचिन्हानि पुरः फलानि । "

श्रीमान सेठ गुलाबचन्दजी जितने श्री-सम्पन्न थे उससे भी अधिक उदार और साधु-स्वभाव के पुरुष थे । बच्चों की या घर-गृहस्थी की उन्हें कोई चिन्ता नहीं रहती थी कि " कब किस चीज़ की क्या आवश्यकता है ? " ये सब बातें घर की व्यवस्था माता शची देवीजी के ऊपर निर्भर थीं ।

परन्तु इस बालक के जन्मने के बाद माता की सारी बुद्धि ईश्वर भक्ति की ओर झुक गई । बालक क्या हुआ यह तो भक्ति का खिलौना था । माता रात दिन इसी के पीछे साज सजावट में लगी रहती थीं ।

आप जब कभी अपने बच्चे को नये नये

शृंगारों से सजाकर बच्चों के साथ खेलने भेज दिया करती थी। क्योंकि बालक जलेश बचपन में शृंगारप्रिय हो गया था।

कभी तो बच्चे के पैरों में घुंगरू बंध जाते और वह अन्य साथवाले बच्चों के झुंड के बीच नाचने लगता और बच्चों से गाना गवाता :—

"राम रमयिया राम रमयिया कहो मेरे भइया," आदि। कभी कभी तो बालक जलेश साधु का स्वाँग बना तो साधुओं के सभी चिन्ह धारण करता। जैसे :— जटा, तिलक, माला, कमण्डलु, खप्पर, चिमटा, लंगोटी, आदि।

खेल खेल में ही कभी उसी स्वाँग में आसन लगा कर बैठ जाता था और साथ वाले बालकों से कहता कि, "राम, राम, शिव, शिव, कहो प्यारे बच्चों।"

खेल के साथी सभी बच्चे जलेश की इस विचित्रता से दंग हो जाते, और कहने लगते कि, "भाई! तुम तो सच मुच में ही जोगी लगते हो, चाहे तुम स्वाँग बनाओ या न बनाओ।"

❋ जंगल की क्रीड़ायें ❋

भारतवर्ष में प्रकृति का पूर्ण रूप से अधिकार है। इस छटा का निरीक्षण करने वाला मनुष्य कुछ न कुछ विभूतिपद प्राप्त कर ही लेता है।

बालक जलेश और उसके साथी अब गाँव के कुछ ही दूर पेड़ों के नीचे खेलने जाया करते थे, पास में ही जंगल था। और बालक खेल में मस्त हो जाते थे, परन्तु कुमार जलेश को उस जंगल (तपोवन) ने अपनी ओर खींच लिया था। उस तपोवन का जलेश पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह उसके सुन्दर दृश्यों को ही देखा करता था। ईश्वरीय प्रकृति निरीक्षण में वह अपने आप को भूल जाता था। उसे ऐसा भास होता था कि इस जंगल से कोई महाशक्ति उसे संकेत कर रही है कि, "एक दिन तेरा वसेरा मेरे ही आश्रय पर होगा।"

* भगवान की कथा श्रवण *

"विनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा विनु सुलभ न सोई॥"

— तुलसीदास।

एक समय पासीपुर से पण्डित शुभकरणजी कसानगंज की ओर आ रहे थे। गाँव के समीप पहुँचे तो बालकों की भीड़ खेलक्रीड़ा में मस्त बनी हुई है। और परस्पर एक दूसरे के साथ हँसी ठठा भी हो रही थी; किन्तु जलेश इस हँसी ठठा की क्रीड़ा से भिन्न ही रहता था। उसकी अवस्था उस समय ११ वें वर्ष में पदार्पण कर रही थी।

बच्चोंने पंडितजी को पायलागन किया, उनके पैर छुये, आशीर्वाद प्राप्त किया और देखा पं. शुभकरणजी गाँव की ही ओर चल रहे हैं। सभी पण्डितजी के पीछे हो लिये। पं. शुभकरणजी बहुत सीधे सादे विचारों के और दीन ब्राह्मण थे। सत्य अहिंसा के उपासक थे। दो चार गाँवों में पुरोहिती कर लेते, – सादी–ब्याह पढ़ देते;–और कभी घड़ी दो घड़ी यजमानों के पास बैठ जाते तो कथा वार्तादिक से अपना समय निर्वाह अच्छी तरह कर लेते थे।

पंडितजी सत्संगी ब्राह्मण थे। आप रामायण की कथा और साधु–संतों की कथायें गाँव वालों को सुना देते थे। सभी यजमान आपपर प्रसन्न रहते थे।

समय पाकर बालक जलेशने पण्डितजी से हाथ जोड़ विनयभाव से पूछा—

"महाराज, कुछ साधु–सन्तों की कथा–वार्ता तो सुनाइये !"

बालक जलेश के प्रश्नप्रार्थना को पण्डितजी लौटा न सके बल्कि उसकी बात पर तो वे लट्टू से हो गये; उसके ओर वे आकृष्ट से हो गये।

पण्डितजी बडे प्रेम और श्रद्धाभाव से बोलने लगे। "प्यारे बालको ! तुम उस देश की

सन्तान हो जिसमें खेलने और कर्म करने के लिये स्वयं लीलामय भगवान भी लालायित रहते हैं।

इस भूमि में बड़े बड़े अवतार–साधुसन्त–ऋषि–मुनि पैदा हुये हैं। जिनकी भगवद्भक्ति के प्रभाव से संसार का कल्याण होता रहता है और भविष्य में भी सन्त ही देश के कल्याण करेंगे।

स्वामी दत्तात्रेय, गुरु गोरखनाथ, सन्त तुलसीदासजी, सूरदास, कबीरदास, मीराबाई, गुरु नानक आदि। ये सभीं परमार्थी, लोकोपकारी, ज्ञानी ओर उच्चश्रेणी के सन्त भक्त हुये हैं।

इन सबने रामनाम के जप के प्रताप से मुक्ति प्राप्त की है। और संसार में यशःकीर्ति प्राप्त की है। आज भी इनका नाम संसार में अमर है और भविष्य में भी रहेगा।

"राम रामेति यो ब्रूयात्, सर्व पापैः प्रमुच्यते।"

— स्कं. पु.

०

भगवान के असंख्य नाम हैं किन्तु – जिसने प्रेम से एक "राम" यह ढाई अक्षर का पाठ अच्छी तरह पढ़ लिया, बस वही तर गया। इसलिये तुम भी भगवद्भक्त बनो, नहीं तो राम राम तो भी जपा करो।

संसार के मायाजाल से बिरक्त रहने का एकमात्र रामनाम ही आधार है।

जो मनुष्य रामनाम का आश्रय ले लेता है वह चौरासी लाख योनियों के चक्र में नहीं फँसता। वह संसारिक मायाजाल से मुक्त होकर अमर हो जाता है।"

इस प्रकार उपदेश करने के अनन्तर पण्डित शुभकरण जी दूसरे गाँव को चल दिये। बच्चोंने पूर्ववत् उनके चरणों में पायलागन किया और पूर्वजों की स्वाभाविक श्रद्धा से दक्षिणा भेट पण्डितजी के चरणों में चढ़ा दी।

पण्डितजीने सबको आशीर्वाद दिया और आगे चल दिये।

जलेश नेत्र बन्द किये उस उपदेशामृत का मनन अपनी अन्तरात्मा से करने लगा। उसे सच मुच में सारा संसार असार मालूम होने लगा। वह क्षणभर के लिये अपने आप को भूल गया।

बालकवृन्द कहने लगे :—

"चलियेगा भी घर को, या यों ही जंगल में रमे रहो गे?" बच्चे ही ठहरे एक अट्टाहास से सभी हँस पड़े।

एक बोलाः—ज्ञानी पण्डित बनेगा ये तो।

दूसरा बोलाः—ना जी यह तो साधु बनेगा।

अपनी अपनी हरएकने बघारी।

जलेश शान्त भाव से बोला :—" ठीक है भाइयो !

जिसकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरति तिन्ह देखहि तैसी ।

जा को जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू । "

— तुलसीदास ।

* शिक्षा *

" सा विद्या या विमुक्तये । "

बालक जलेश की शिक्षा साधारण ही हुई थी; क्योंकि उसकी रुचि भगवद्भजन और त्याग की ओर विशेष थी । जब कभी अपने बड़े भाई के साथ गाय-भैंसें चराने जंगल में जाता तो कहा करता था कि, " मैं तो साधु बनूँगा । मुझे यह सब माया का प्रपंच झूटा लगता है । न जाने मेरा मन जंगल की ओर क्यों खींचा चला आता है । " आदि आदि ।

परन्तु बड़े भाईजी जलेश की बातें सुनी अनसुनी कर देते । भाई साहब तो चाहते थे कि, जलेश पढ़ लिख जाय तो पिताजी के हिसाब किताब को सँभाले । परन्तु जलेश ने इतना पढ़ना

पर्याप्त समझा कि वह भगवान के चरित्रों को पढ़ लिख सके । हनुमान चालीसा, रामायण, सुखसागर, ज्ञान गोदड़ी, भर्थरी चरित्र आदि सर्व साधारण ग्रन्थ पढ़ सकता था । और जो पढने में आजाय उसपर मनन करने का उसे विशेष अभ्यास था ।

तुलसी कृत रामायण की कथा तो बड़ी श्रद्धा और रोचकता के साथ तन्मय हो कर करता था। सुननेवाले बड़ी उत्सुकता से सुनकर भाव तन्मय हो जाते थे । जलेश जब कथा करने बैठता तो माता पिता, बड़े भाई तथा भाई दुःखहरन और गाँव के बड़े बूढ़े सभी लोग बड़े प्रेम से आकर श्रद्धाभाव से कथा श्रवण करते रहते थे ।

* आदरभाव *

" गुणं हि सर्वत्र पदं निधीयते "

यद्यपि बाल्यकाल के प्रभावोत्पादक भावों से जलेश के प्रति माता पिता और ग्रामीण जनों का आदरणीय भाव था, घर घर में उसीकी चर्चा थी। किन्तु इस अनपढ़ कालिदास के मुख से भाव भक्तिपूर्ण सरल मधुर कथा वार्तादिक सुनकर तो लोगों की श्रद्धा जलेश के प्रति विशेष सभादरणीय हो गयी । जहाँ एकवचन का आदर था वहाँ बहुवचन से सम्बोधित होने लगा ।
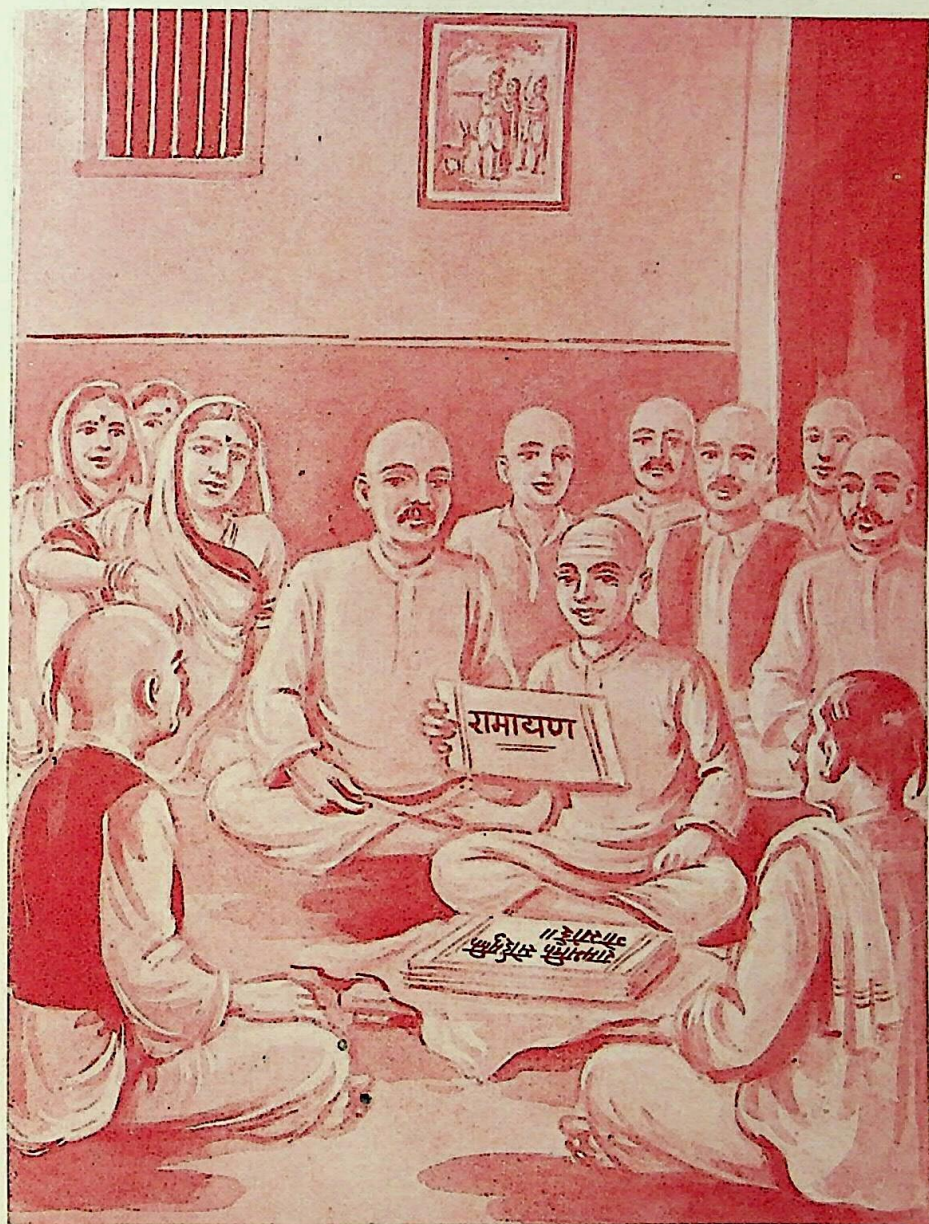
भक्त जलेश (बावा शारदारामजी)
बचपन में रामायण की कथा करते समय ।

गुफा मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

❀ बिवाह ❀
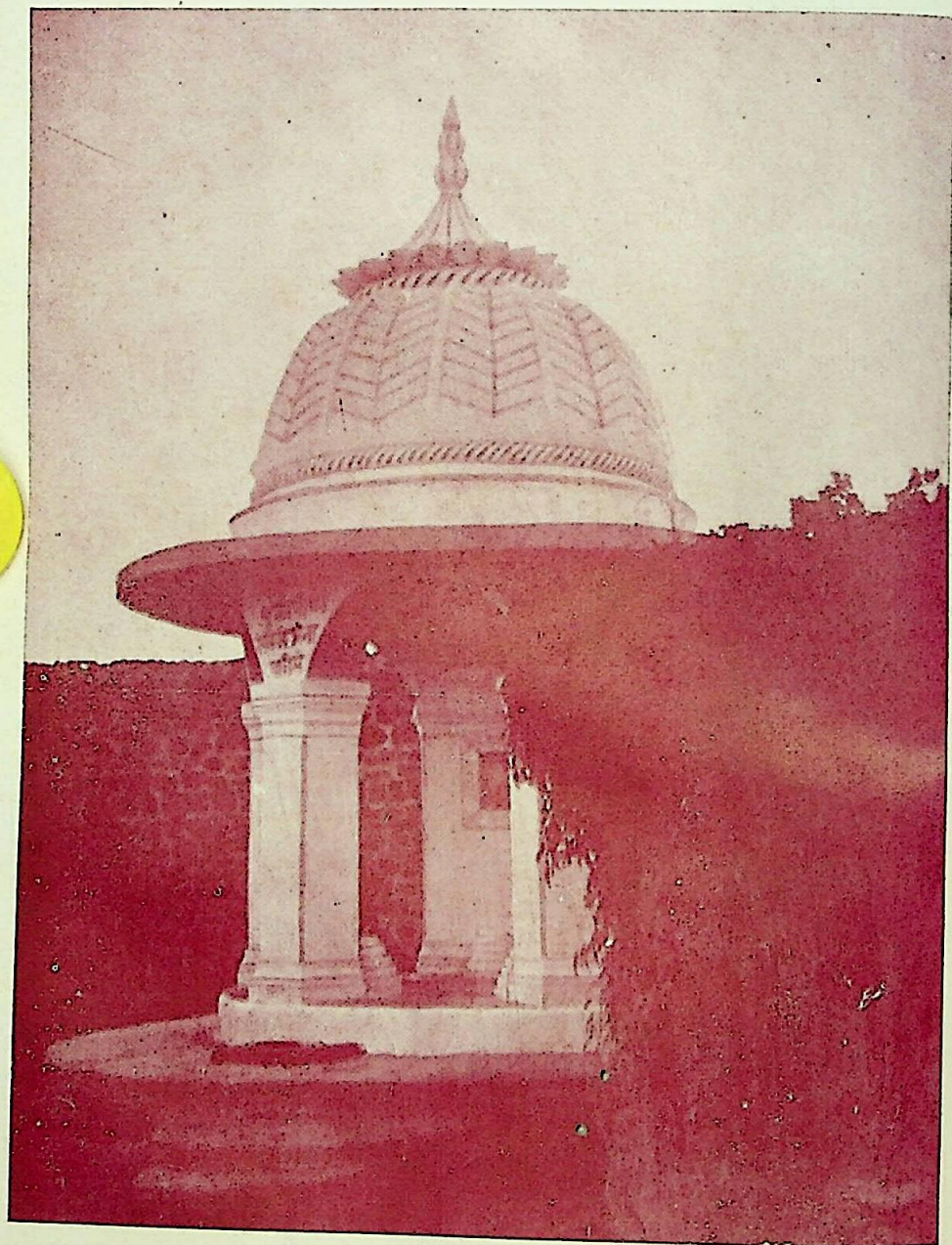
बाल-बिवाह की प्रथा हमारे ग्रामीण समाज पर अपना अच्छा प्रभाव डाले बैठी थी।

अष्टवर्षा भवेत् गौरी, नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या, अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥

— शीघ्रबोध।

काशीनाथ भट्टाचार्यजी की इस नीति को पढ़े हुये ज्योतिषी लोग, कन्याओं के माता पिता को 'शीघ्रबोध' पुस्तक को सुना सुनाकर, जितना शीघ्र हो सके कन्या का बिवाह कराने में ही पुण्य का भागी समझते थे। लड़की के जीवन का भविष्य क्या है इसकी तो चर्चा ही नहीं होती। बेचारे लड़की लड़के सुकुमार बाल्यावस्था से ही गृहस्थी के कीड़े बनाये जाते थे। बच्चों को क्या ज्ञान था कि इस बाल-बिवाह का परिणाम हमारे भावी जीवन के लिये क्या फलदायक होगा। वे तो माता पिताने जो कर दिया उस में ही अपना हित समझते थे।

यद्यपि जलेश, अपने जीवन में बिवाह को बड़ा घातक समझता था, और सर्वथा इस संयोग के विरोध में था।

किन्तु वह सनातन धर्म मर्यादा के कानून से

सह्य सा जाता था । "पितृ ऋण को गृहस्थी बन कर ही दूर किया जा सकेगा" इस सर्व साधारण बात को विचार में लाकर माता-पिताजी की इच्छा को ठुकरा न सका - और १५ वर्ष की अवस्था में आपका पाणीग्रहण संस्कार हो गया ।

* पिताजी का देहावसान *

दैव की इच्छा बड़ी प्रबल होती है, जलेश के बिवाह होने के ६ महिने के बाद चौधरी गुलाबचन्दजी का स्वर्गवास हो गया। जलेश के सिर पर बड़े भाई और माता हैं। जलेश को पिताजी के मरने पर यद्यपि बड़ा शोक हुआ, किन्तु जलेश तो बालक होता हुआ भी इस संसार में सभी कुछ नाशवान समझता था - इस लिये फिर भी उसे अधिक शोक की अपेक्षा वैराग्य का अधिक आश्रय मिला। उसने यह सब कुछ परमात्मा का खेल समझा ।

* बिवाह होने पर भी साधु विचार *

एक समय १०-१२ लड़के झाड़खण्डी बन में शिवरात्री के महापर्व पर भगवान भोलेनाथ के दर्शनार्थ गये। वहाँ पहुँच कर सबने शंकर पार्वती के दर्शन किये - मन्दिर की परिक्रमा होने के अनन्तर

श्रीपुजारीजी महाराज के समीप पहुँचे। दण्डवत प्रणाम करने के बाद उन्हें श्रद्धा-प्रेम से दान दक्षिणा देकर मन्दिर से बाहर कुछ ही दूर पर जंगल की ओर एक किनारे बैठ गये। वहाँपर सबने चना चवेना जलपान किया; और विचारने लगे कि आज कौनसा खेल खेलें? सब लड़के इसी उधेड़ बुन में पड़े थे कि, बीच में जलेश बोल उठा :- "यदि ऐसा ही विचार है तो आज का खेल गोविन्द साहब का खेला जाय ....।"

बस, कहने मात्र की देर थी, सभी बालकवृन्द मान गयें, और बात की बात में मानसिक साज बाज सज गये। कोई घोड़ा बन गया, कोई रथी बन गया, कोई घुड़सवार, कोई रथपालकी बन बैठा। पालकी में गोविन्द साहब बिठा दिये गये। हाथ मुख और पत्तों से तरह तरह के बाजे भी बजने लगे। एवं नाचते, गाते, बजाते, मस्ती से खेलते हुये "सरयू" जी में नहाने चल दिये।

कुछ दूरी पर रास्ते में ही पण्डित कतवारूजी से भेंट हो गई। सभी लड़कोंने खेल छोड़कर पण्डितजी को प्रणाम किया।

पंण्डितजी बोले :—अहो कौतुकियो, कहाँ चले जा रहे हो इतने बड़े स्वाँग सजा कर?

इतने में नारायण नाम का लड़का बोल उठा—

"महाराज हम तो सरयू जी में स्नान करने जा रहे हैं। परन्तु कृपा करके आप बताइये कि आप कहाँ पधार रहे हैं।"

पण्डितजी बोले :—हम तो तुम्हारे ही गाँव में 'राम सुगम' का "लगन" सोधने जा रहे हैं.......।

जलेशने बात काटते हुये बीच में ही कह दिया— "महाराज, हमारी सब की लगन क्या राम से लगेगी ?"

पण्डितजी बोले :—अरे तुम सब तो जन्म से ही राम से लगन लगाये बैठे हो।

सब लड़के हँस पड़े, प्रसन्नता से पण्डितजी के पैरों में माथा नवा कर प्रणाम किये।

पण्डितजी तो बाज़ार की ओर आ गये, लड़कों का खेल इतने में ही समाप्त हुआ।

———

वैराग्य प्रकरण

(२)

* वैराग्य की धारणा *

जलेश को लड़कों के साथ गये हुये बहुत समय हो गया था। माता जलेश की प्रतीक्षा में नये घर में बैठी थी।

जब जलेश माता के समीप पहुंचा और उसने चरण छूकर प्रणाम किया तो माताने पूछा :—बेटा, तुमने इतनी देर कहाँ लगाई? जलेश कुछ न कहता हुआ विचारमग्न सा हो गया। माता बोलती रहीः "बेटा, अब तू स्याना हो गया, तेरी शादी हो गई है। अब तुम इन खेल तमासों को छोड़ दो। कामकाज में चित्त लगाओ जिससे तुम्हारी सुख-सम्पृद्धि में कमी न आने पावे। लोग अब तुम्हारी हँसी उड़ायेंगे।"

जलेश मुस्कराता हुआ बोला :—माताजी, आपकी शुभ आशिर्वाद से सुखसम्पृद्धि, सर्व-सम्पन्नता हमेशा ही रहेगी। मै तो चाहता हूँ कि भाइयों का साथ करूँ और माता पिता की सेवा

करते हुये चाचा चाचीयों का भी दर्शन करता रहूँ। परन्तु क्या करूँ मेरे मन और हृदय को कोई दैवी इच्छा अपनी ओर खींच रही है। कह रही है कि:— "गोपीचन्द–भरथरी की तरह तू भी बैरागी बन जा। क्या रखा है इस माया जञ्जाल में, तपस्वी बन! जलेश, तू इसीलिये मनुष्ययोनी में आया है। तेरे जीवन में अभी कुछ तपस्या बाकी है। विवेक द्वारा संसारी बन्धनों को काटकर मुक्त हो जा।"

माता बोली:—बस कर, अपने इस बैराग को। तनिक सा लडका करे बैराग की बात।.... चल भूख लगी है रोटी सोटी खाले बेटा। ऐसी बातें नहीं करना।

जलेशने कहा:—माता मेरी भूख तो तू जानती ही है, कितनी थोडी लगती है। किन्तु आज तो मुझे बैराग की भारी भूख सता रही है तू मुझे आज्ञा दे दे।

माता:—बेटा, तेरे प्रारब्ध में यदि साधु ही बनना लिखा होगा तो कौन रोक सकता है?। चलो भोजन तो कर लो बेटा।

माता की आज्ञा शिरोधार्य थी। पिताजी का स्नेह बन्धन तो उचित समय में ही दैव ने काट दिया था। अब माता का स्नेह बन्धन कैसे छूटे?

यही सोचते हुये जलेश भोजन कर के सो गया। माता अपने पुराने घर में चली गई।

* साधु संगति *

क्षणमिह सज्जन संगतिरेका।
भवति भवार्णव तरणे नौका।

— शंकराचार्य

मध्यान्होतर ५ बजे के करीब जलेश सोकर उठा और कुछ ही दूर बाबा बन्हुदास जी की कुटिया पर चला गया।

प्रायः यह उसका एक नियम सा बन गया था। प्रति दिन बाबाजी की कुटिया पर पहुँचता और यथा योग्य उनकी सेवा किया करता था।

इस दिन तो वहाँ जलेश को इतनी शान्ति प्राप्त हुई कि जिससे उसे उस शान्ति की प्यास और भी बढ़ गई। अब उसे साधु संगति की धुन का रस लग गया।

एक दिन वह प्रातःकाल उठा और अपने गाँव से १८ मील की दूरी पर बाबा अविलाख-दास त्यागीजी महाराज के शुभदर्शन को चला गया।

बाबा अविलाखदासजी हमेशा नंगे मैदान

में रहा करते थे। उनके दर्शनों को बड़ी दूर दूर से भक्तजन आया करते थे। वहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी।

जलेश जब वहाँ पहुँचा तो बाबाजी को हाथ जोड़ कर प्रणाम कर के एक ओर बैठ गया। बाबाजीने —" कल्याण हो " कहते हुये जलेश के आन्तरिक भावों को जान कर कहा :— " जाओ बेटा, तुम्हारा गुरु तुम्हारे ही गाँव में मिलेगा ! तुम्हारी शुभकामना पूर्ण हो। "

✻ गृहस्थाश्रम में ✻

वेदों ने पुरुषों के ऊपर ५ प्रकार के ऋण बताये हैं। जिनका सर्वसाधारण के लिये नियम इस प्रकार है। धर्मशास्त्रों में मनुष्य को, देवऋण, पितृऋण, मातृऋण, अतिथीऋण, ऋषिऋण से मुक्त होने के लिये निम्नलिखित साधन बताये हैं।

(१) देश, धर्म, राष्ट्र और राष्ट्र के प्राणी मात्र के हितार्थ वेदशास्त्रानुकूल, ' स्वाहः, स्वधा ' रूप जो यज्ञ किये जाते हैं उनसे देवऋण चुकाया जाता है।

(२) गृहस्थाश्रम में रहकर पितृयज्ञ, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थ, दानादिक से पितृऋण चुकता

होता है। तथा पुत्रसन्तान की प्राप्ती से अपने ऊपर का पितृऋण भार उतर जाता है।

(३) तपस्या और सत्य—अहिंसादिक व्रतों के द्वारा या देश रक्षा के अर्थ जो आत्म-बलिदान मातृभूमि के चरणों पर किया जाता है, उससे मातृऋण दूर होता है।

(४) अनायास स्वगृह में आये हुये अतिथी अभ्यागत साधु, ब्राह्मण आदि अतिथी सेवा से, अतिथी का ऋण दूर होता है।

(५) शिक्षा, दीक्षा, अध्ययन, अध्यापन और वेदादिक धर्मशास्त्रों के अनुकूल मनन, चिन्तन, पालन करने से ऋषिऋण चुकाया जाता है।

अस्तु :—मेरा तात्पर्य तो यह है कि गृहस्थी बनकर मनुष्य के ऊपर जो उपरोक्त ऋणों का भार अनायास ही आ जाता है उन्हें चुकाने के लिये गृहस्थी को उपरोक्त सभी नियमों के साथ साथ पितृऋण को दूर करने के लिये सन्तान प्राप्ती की आवश्यकता हो जाती है।

बस, इसी एक भाव को नियमित मान कर भक्त जलेश अपनी गर्भवती धर्मपत्नी को शान्त्वना देते रहे कि "तुम्हारा हमारा यह धर्म पूर्ण होगा और

भगवान की जो इच्छा होगी उसे कौन जान सकता है !"

* पुत्रप्राप्ती और स्त्री-पुत्र का अवसान *

" होई है सोहि जो राम रचिराखा ।
कोकर तर्क बढ़ावे साखा ॥ "

— तुलसीकृत

" भगवान की इच्छा " ऐसा कहते हुये प्रायः सभी सुने जाते हैं किन्तु उस अपने कहे हुये पर दृढविश्वास बहुत कम मनुष्य करते हैं ।

भक्त जलेश को पूर्ण विश्वास ' हरि इच्छा ' पर था, इसलिये वह जो चाहता वह हरि इच्छा पर निर्भर था । भक्तिप्रियो माधवः, भगवान तो भक्ति के प्यारे हैं । ग्रामीणों की मसल है कि— " काम प्यारा होता है, चाम नहीं । " इसी प्रकार भक्त की भक्ति से भगवान संतुष्ट रहते हैं ।

भक्त की तमाम इच्छाएँ भगवान यथा समय पर पूर्ण करते रहते हैं । अगर भक्तों के भक्ति के मार्ग में कोई कडा बन्धन भी हो तो भगवान उसे भी मुक्त कर देते हैं ।

यही समस्या भक्त जलेश के जीवन में थी । उसके पैरों में माता का ' मायाज़ाल ' और

स्त्री–पुत्र का 'मोहजाल' के फन्दे थे। इन फन्दों से छुटकारा मिलना असम्भव ही नहीं बल्कि उसे तो वे दोनों बन्धन ऐसे जान पड़ते थे कि यदि भगवान ही इनसे छुटकारा करा दे तो खैर है। नहीं तो जैसी उसकी इच्छा। और हर समय हरिस्मरण करते हुये जलेश के मुख से यही निकलता रहता था कि "हरि इच्छा।"

अन्त में वही हुआ जो हरि को मंजूर था। जलेश के घर में पुत्रसन्तान की खुशी भी नहीं देख पाये थे कि अनायास स्त्री–पुत्र दोनों का अन्तकाल हो गया।

"गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः।"

— गीता अ. २, श्लोक ११

"सो मरा जिन मनहु बिसारिया।"

(गुरू नानकदेव)

यह उक्ति जलेश पर चरितार्थ हो रही थी उस समय॥

*** जन्मसिद्धयोगाधिकारी ***

"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥"

— गीता, अ. ६, श्लोक ४५

एक दिन भक्त जलेश बाबा अविलाखदासजी के दर्शनों से आ रहा था। योगी बनने की धुन मन में सवार थी। इसी उधेड़ बुन में चला आ रहा था कि रास्ते में गोविन्द साहेब की जमात मिल गई। जलेश की प्रसन्नता का अन्त न रहा, हर्ष से बड़े वेग के साथ उन साधुओं की जमात के साथ हो लिया।

उस रात को वह जमात अतरोलिया ही रही। जलेश को उस जमात के साथ जो आनन्द मिल रहा था वह जीवन में पहिला मौका था।

रात को पड़ा पड़ा गुनगुनाने लगा :—

भजनः—"मन लागो मेरो यार फकीरी में।
जो सुख पाया राम भजन में
सो सुख नहीं अमीरी में।"

— कबीरदासजी

इस गुनगुनाहट को सुनकर जमात के सन्त-महन्त जलेश से बड़े ही प्रसन्न हुये।

सुबह होते ही जमात 'भुड़कुड़ा' की ओर चल दी। जलेश महन्त राजाराम जी से कुछ विनय करना चाहते थे किन्तु महन्तजी समझ गये और स्वतः बोल उठे—"चलो बेटा, भुड़कुड़ा चल कर तुम्हें चेला बनावेंगे। फिर साधु बन जाओगे।"

जलेशने हाथ जोड़ते हुये विनय की कि :–
"महाराज, मेरी जन्मभूमि वाले मुझे पकडेंगे।"

महन्त राजाराम जी हँसते हुये बोले :—
"बच्चा, अब तुमको कौन कबतक पकड़ता रहेगा? तुम तो —

'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'

के अनुसार जन्मसिद्ध योगाधिकारी हो।"

* जमात के साथ फकीरी भेष में *

इस प्रकार महन्त जी का शुभवचन सुन कर जलेश उन्हीं के साथ चल दिया।

महन्तजी की जमात नई बाज़ार में उतरी। वहाँ उतरते ही भक्तगण, जनसमाज और सभी बाज़ारवाले दर्शनार्थ इकट्ठे हो गये।

भक्त जलेश के माता, चाचा, बडे भाई और द्वारपंडित कतवारूजी आदि कुटुम्बीजन भी वहाँ दर्शनार्थ आ पहुँचे।

कुटुम्बियोंने जलेश को साधुओं की जमात में पहिचान लिया। चाचाजीने महन्तजी से हाथ जोड कर विनय की कि, "महाराज, हम तो जलेश को लेने आये हैं। हम तो उसकी फिराक

में २–३ दिन से भटक रहे हैं। कृपा करके उसे हमें दे दीजिये।"

महन्त जी हँसकर बोले :—"बड़ी खुशी से ले जाइये। शरीर तो आप ले जायेंगे किन्तु मन कैसे ले जाओगे? इस बच्चे का मन तो प्रभु-भक्ति में लग चुका है।"

माताजी हाँपती काँपती बोली, "महाराज ऐसा आशीर्वाद करिये कि हमारे बच्चे का मन ईश्वरपरायण होते हुये भी घर–गृहस्थी सम्भालने की चेष्टा करे।"

महन्त राजारामजी ने माताजी को समझाते हुये अपने मधुर शब्दों में कहा :—"माताजी, जलेश तो छ महिने से अपने सच्चे घर को सम्भालने के लिये व्याकुल हो रहा है। उसे तो उस सच्चे घर को सम्भालने की लगन लगी हुई है।

"जाको जेहिपर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।"

— तुलसीदासजी

इतने में पण्डित कतवारूजी बोले :—"महाराज, आप तो सदुपदेश के वक्ता हैं। कृपा कर जलेश को ऐसा उपदेश दीजिये जिससे वह अपने

विचारों को बदल कर हमारे साथ घर चलने को तैयार हो जाय।"

महन्तजी मुस्कराते हुये बोले :—"पण्डितजी महाराज, आप तो इस बच्चे के पुरोहित हैं। आप समझ लीजिये कि इसपर किसका प्रभाव पड़ सकता है? मुझे तो पूर्ण ज्ञात है कि यह साधु होकर ही रहेगा। तो बताइये कि मैं ही उसे क्या उपदेश दूँ।"

पण्डितजी बात काटते हुये ही बोल पड़े :—"महाराज, अभी तो हम उसे ले जायेंगे, आगे जो होगा सो देखा जायेगा।" महन्तजीने शान्त्वना देते हुये कहा :—"पण्डितजी, आप तो व्यर्थ कहने का कष्ट उठा रहे हैं। यह बच्चा तो आठ दिन के अन्दर ही साधु बन जायेगा। यह तो अब आप लोगों का नहीं रहा। यह सच्चा हरिभक्त है। आप नाहक उसकी चाहना में हैं। आप लोग जाइये।"

भक्त जलेश के चाचा जी तो महन्त पर बिगड़ते हुये बोले, "महन्तजी महाराज, आप अपने सदुपदेश से देश, धर्म और समाज का सुधार करते हैं, परन्तु आप तो हमारे जलेश को उलटा ही पाठ पढ़ा रहे हैं। कृपा करके आप उसे ऐसा रास्ता बताइये जिससे वह अपने घरबार को बसावे।"

महन्तजी जिस तरह सुन रहे थे उसी शान्त भाव से बोले :—" भक्तराज, हम जो कुछ कह रहे हैं वह यथार्थ है। यह तुम्हारा लड़का देश, धर्म, और समाज का महान् उपकारी बनेगा। इसके शुद्ध हृदय में भक्ति कूट कूट कर भरी हुई है। यह तो आपके कोइरी वंश का दीपक है। आप लोगों के समझाने से भी यह नहीं समझेगा। भविष्य में तुम में से जो भी जीवित रहेगा इस बालक की कीर्ति से प्रसन्न होता रहेगा। आनेवाले समय में अनेकों मनुष्य इसी भक्त बालक के तपस्वी भेष के दर्शन करके तथा इसके सदुपदेशों से कृतार्थ होते रहेंगे।

भारतवर्ष को तो ऐसे ही भक्त तपस्वी बालकों की अत्यन्त आवश्यकता है। आप लोग घर को जाइये, नाहक इसकी आशा में बैठे हैं।"

महन्तजी के ये वचन जलेश के चाचाजी को असम्भव और बहकाव के से जान पड़े। उन्हें और भी क्रोध हुआ। उन्होंने जलेश का हाथ खींचा और ले चले पकड़ कर घर की ओर।

जलेश तो जानता था कि इस शरीर को मेरे चाचा तथा घरवाले कहीं भी ले जाँय किन्तु जलेश की आत्मिक लगन की तो ये लोग समझ भी नहीं सकते थे।

* कमरे में कैद *

जलेश को घर में ले जाकर चाचाजीने उसे एक अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया और बाहर से मजबूत सा ताला लगाते हुये बोले, " अब देखे कैसा साधु बनता है और कौन तुझे साधु बनाने आता है। " जलेश को यह एकान्त प्रभुचिन्तन करने का अच्छा अवसर मिल गया, उसी कोठरी में शान्त भाव से अपने इष्ट देव का आवाहन करने लगा।

तीन दिन बीत गये। चाचाजी की देखरेख के पहरे में भला कौन जलेश से खाने पीने की पूछ सकता है।

अन्त में माताजी से न रहा गया। विनम्रता से साहस के साथ चाचाजी से बोली :—" जलेश को छोड़ दो, यदि इसके प्रारब्ध में साधु ही बनना लिखा होगा तो हमारी कैद में भी वह साधु ही बनेगा। होहि है सोहि जो राम रचि राखा। "

इस माताजी के अनुरोध से दरवाजा खुला। जलेश को देखा तो वह प्रभुध्यान में मग्न हो रहा है। ऐसा जान पड़ता था कि कोई महान् सिद्ध-पुरुष का आसन जमा हुआ हो।

माताने उसे समाधि से भंग किया। वह

प्रसन्न था, माताजी के चरणों में प्रणाम करके, माताजी के साथ बाहर आ गया। माता उसे भोजनालय में ले गई। जलेश भोजन करता था और माता कहती थी—"बेटा, हम तो अब तेरे से हार गये हैं। अनेक यतन करने पर भी जब तुम नहीं रहना चाहते और साधु ही बनना चाहते हो तो मैं तुम्हारे मार्ग में रुकावट नहीं करना चाहती। तुम बड़ी प्रसन्नता से सन्मार्ग का अवलम्बन करो।

'जाको जेहि पर सत्य सनेहू
सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।'

भगवान में तुम्हारी लगन है। वे तुम्हें अवश्य सफलता देंगे।"

❋ जंगल का प्रस्थान ❋

"अन्धा क्या चाहे, दो आँखें" यह कहावत जलेश पर चरितार्थ हुई। माताने खुलम खुला आज्ञा दे दी है। अब क्या था, ठहरने पाँव नहीं थे, अपितु तुरन्त ही घर से वन यात्रा के प्रस्थान को पाँव बढने लगे और जलेशने जंगल की राह ली।

वन मार्ग के प्रस्थान में उसे ऐसा ज्ञात होता था कि मानों वह ज़िन्दगी की गुलामी की बेड़ियों से छूट चुका हो।

माताजी का आशीर्वाद प्राप्त कर प्रभु प्राप्ति के लिये भक्त जलेशने जंगल की राह ली जब।
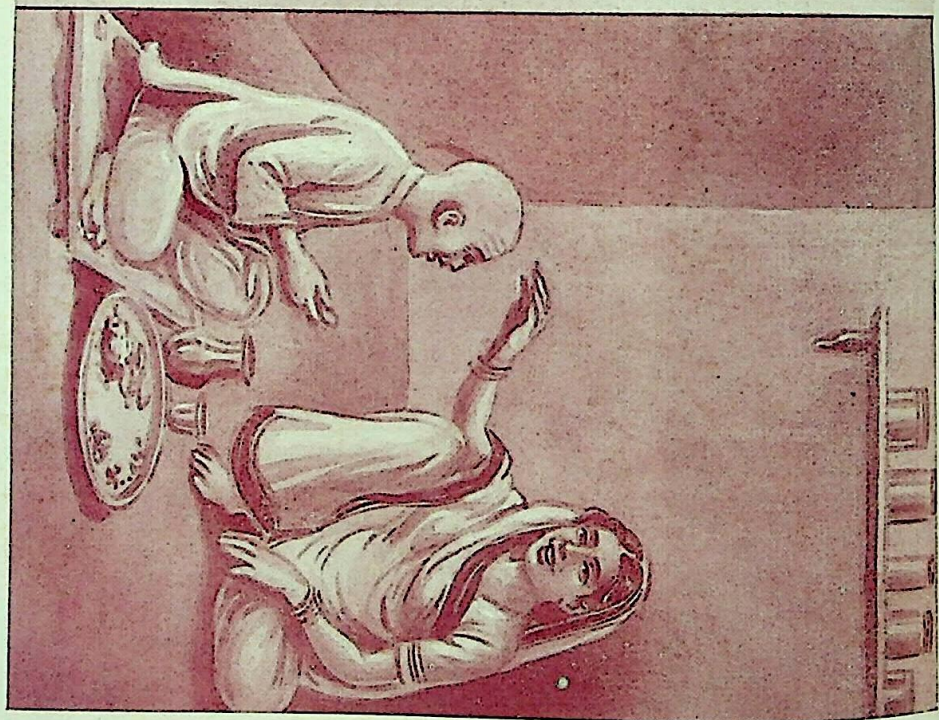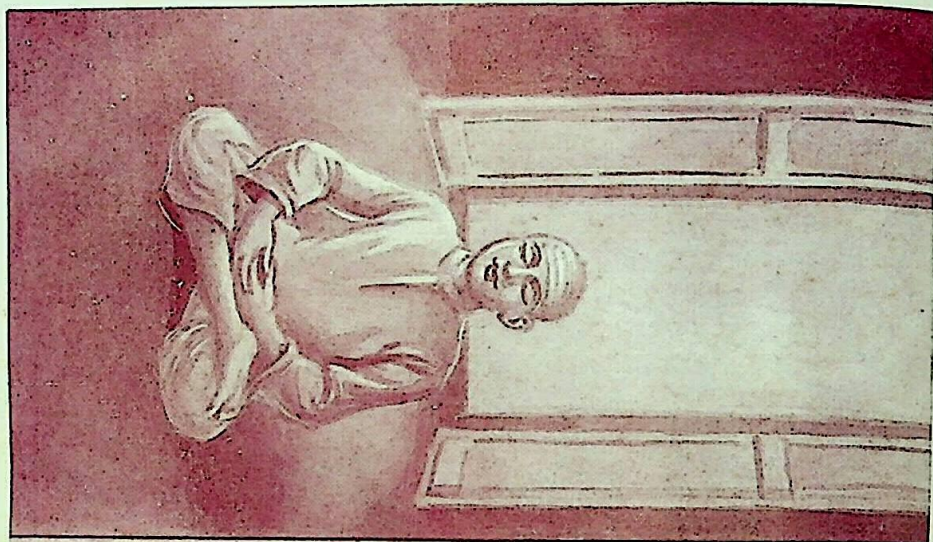
(१) भक्त जलेश को तीन दिन कमरे में कैद।

(२) शची माता आशीर्वाद देते हुए कह रही है—"बेटा, हम तो अब तेरे से हार गये हैं। अनेक यत्न करने पर भी जब तुम नहीं रहना चाहते और साधु ही बनना चाहते हो तो मैं तुम्हारे मार्ग में रुकावट नहीं करना चाहती। तुम बड़ी प्रसन्नता से सन्मार्ग का अवलम्बन करो। भगवान् में तुम्हारी लगन है, वे तुम्हें अवश्य सफलता देंगे।"

वह ऐसा चला जा रहा था जैसे मदपूर्ण हाथी लोहे की कड़ी जंजिरों से छूट कर झूमता हुआ कदली बन की ओर चला जाता है।

एवं भक्ति के मद में चूर्ण जलेश भी माया, मोह, ममता रूपी कड़ी जंजिरों से छुटकारा पाकर भक्तिसरोवर में पहुँच रहा है।

क्यों कि वहीं उसे शान्ति प्राप्त होगी।

* माता का विरह *

जबसे जलेशने जंगल की राह ली, तभीसे माताजी पुत्र–विरह में व्याकुल हो कर अनेक काल्पनिक चिन्तायें किया करती थी।

बस, रात–दिन यही विचार माथे पर चक्कर काट रहे थे कि:—"हाय राम भगवान, भोलेनाथ, अब मेरे जलेश के रक्षक आप ही हैं प्रभु।

हे ईश्वर, मेरा बेटा जंगल में कहाँ रहेगा, क्या खावेगा, कौन खिलायेगा ?

प्रभो ! अब आप ही रक्षक है ! जलेश की रक्षा करना।" इस प्रकार रातदिन माता जलेश के विरह में दुःखी होकर आँसू बहती रहती थी।

एक दिन जलेश का मित्र नारायण माताजी के पास आया, पैर (चरण) छू कर उसने माताजी को प्रणाम किया। नारायण जलेश के पास

जंगल में भी आया जाया करता था। इसलिये वह माताजी को समझाने लगा कि, "माताजी, जिसके बारे में तुम इतनी व्याकुल हो रही हो उसके विचित्र चरित्र तो सुनो। मैं तो उसके पास रोज ही जाया करता हूँ। वह पास ही झाड़खण्डी बन में रहता है। उसका नित्य नियम बड़ा कठोर है। रोज प्रातः शौचादिक नित्यक्रिया के बाद वह आलथी पालथी मार कर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ जाता है, और सूर्य भगवान को एक दृष्टि से देखता रहता है। मुँह स कुछ मन्त्रों का सा उच्चारण करता है। उसके दोनों हाथ पेट पर सपटे रहते हैं। कभी कभी अधखिले कमल की तरह दोनों हाथ पालथी के ऊपर रख लेता है। लोहार की मसक की तरह सांस भरता रहता है।

सांझ के समय पश्चिम को मुँह करके बैठता है, पूर्ववत् नित्यकर्म करता है। कभी कभी उत्तर को भी मुख करके बैठता है।

मैं कहता हूँ—भाई, यह कैसी तपस्या या साधन है।—तो जलेश कहता है कि,—नारायण भैया, साधुओं का तप के सिवाय और काम ही क्या है।

मैं कहता हूँ—भाई, मुझसे तो ऐसा साधन होना बहुत कठिन है।

जलेश मेरे लिये तो हँसते हुये कह देता है

कि, तुम तो घर में ही माता पिता की सेवा में लगे रहो। साधु मत बनना, यह मार्ग बड़ा कठिन है। अगर तुम घर में रहकर भी संसार के मायाजाल के कर्म बन्धनों से मुक्त होना चाहते हो तो, माता, पिता, गुरु की भक्ति में लीन हो जाओ, साधु संगति से आत्मज्ञान प्राप्त करो, बस भुक्ति ही मुक्ति है।

मैं कहता हूँ—जलेश भैया अगर तुम मेरे साथ घर पर रहो तो मुझे ज्ञान प्राप्त होता रहेगा।

जलेश कहता है—अरे भाई, साथ किसका होता है? किसीका कोई साथी नहीं होता। अकेला आया, अकेला चलाया, चलते वक्त कोउ काम न आया। यही संसार का चक्कर है।

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्
पुनरपि जननीजठरे शयनम्।"

यहाँ तो जन्म मरण का फेर है, इससे मुक्त होने के लिये प्रारब्ध संस्कार और क्रियमाण संस्कार शुद्ध और सात्त्विक होने चाहिये; समझ लो कि—तुम और मैं तो एक ही गाँव के घनिष्ठ मित्र हैं, किन्तु क्यों मेरे विचार त्याग की ओर जा रहे हैं, और क्यों तुम्हारे विचार घर के माया मोह में हैं।

बस, यही प्रारब्ध के हिस्से हैं। जिसने पूर्व जन्म में जो संचय किया होगा वही तो उसे मिलेगा। मैं भी तो इसी गृहस्थी से पैदा हुआ, इसीमें पला, इसी की संगति में खेला और बड़ा हुआ।

परंतु भैया, मेरे विचार तो बाल्यकाल से ही उस प्रभु के भरोंसे पर निर्भर हैं। बस, हरि इच्छा है।– इत्यादि बहुत सी गम्भीर और शांति देने वाली बातें जलेश की जब मैं सुनता हूँ तो हक्का बक्का सा रह जाता हूँ। वह तो "साद सुजान, सुशील निरपाला। ईश अंश भव परम कृपाला।" के अनुसार सचमुच का ज्ञानी और अवतारसिद्ध बालक जान पड़ता है।

चलो माताजी आपको भी उसके पास ले चलता हूँ।"

ॐ अवतारसिद्ध बालक ॐ

नारायण जलेश के चरित्र को कह चुका था– किन्तु माता का ध्यान उन बचपन की बातों की ओर आकर्षित था जिन्हें मातृस्नेहने योंही भुला दिया था।

आज माता की आँखों के सामने वह दृश्य प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हो गया है।

माता उस स्मृति को नारायण से कहने लगी :—" बेटा नारायण, तुम जो कुछ कह रहे हो वह अक्षरसः सत्य है। मैंने भी बाल्य काल के दृश्य जलेश के जो देखे सो आज तुम्हारे पास कहती हूँ। —

जब जलेश गर्भ में था तभी मुझे बड़े उत्कृष्ट ज्ञान की इच्छा होती थी। घर–गृहस्थी से तो मेरा मन स्वाभाविक शंकरभोले की भक्ति में लग गया था। यद्यपि मेरे और भी बालक हुये, किन्तु इस बच्चे की पैदायश के समय मेरी आँखों के सामने एक विचित्र ज्योति सी चमक रही थी और मैं प्रभु के ध्यान में मस्त थी।

' संत कतहु लेहि अवतारा '

(पलटुसाहेब)

धायाने मुझे जगाया कि धन्यभाग है, यह तो " औतार हुआ है औतार " कितनी बातें उसने कहीं इसका मुझे ध्यान ही न था। मेरी आँखों के सामने तो वह अद्भुत बालक एक ज्योतिस्वरूप दीखता था। पैदा होने के अनंतर उसके क्या चिन्ह और कैसा स्वरूप था मैं ही जानती हूँ या धाया ही जानती है और परमात्मा तो जानता ही होगा। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें अनेक जन्मों की साधुता है।

जब मैं उसे तैलादिक उवटन कराके नहला

धुलाकर दूध पिलाकर चारपाई पर लिटा देती थी, तो ऊपर छत की ओर हाथ खड़ा करता था, ऐसा मालूम देता था कि मानों वह किसीको बुला रहा हो, या किसीके साथ प्रत्यक्ष बातें कर रहा हो।

उसकी बचपन की विचित्र घटनायें जब मुझे स्मरण हो आती हैं तो मुझे पूर्ण विश्वास होता है कि अब जलेश हमारा नहीं रहेगा; वह जिस मार्ग को अपना रहा है, सचमुच में परमात्मा की ओरसे ही वह मार्ग उसके लिये नियुक्त है।

ज्योंही जलेश बड़ा होता गया त्योंही उसकी विलक्षणतायें बढ़ती और चमकती जाती थीं।

जब वह हँसता था, उस समय उसकी दंतपंक्ति कुंदकली के समान् चमकती थी। अथवा ऐसी वह दंतपंक्ति दिखाई देती थी जैसे मंजुल मेघों के बीच में विद्युत् का प्रकाश हो रहा हो।

* एक वर्ष के बाद *

एक वर्ष के बाद लगातार पाँच वर्ष की अवस्था तक तो वह बड़ी विचित्र तपस्या सी करता रहा।

आलथी पालथी बाँधकर घंटों बैठा रहता था। आँखें बंदकर कुछ गुनगुनाता

रहता था। कभी कभी आँखें तभी खोलता था जब उसके माथे पर मैं हाथ रख देती थी। आँखें खोलने पर वह एक मधुर मुस्कराहट से देख लेता था और फिर अपनी बालक्रीड़ा में लग जाता था। उसकी उस मधुर मुस्कराहट में ऐसी ज्ञान की ज्योति चमकती थी कि मैं भी आश्चर्य में डूब जाती थी, ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह जन्मसिद्ध ज्ञानाधिकारी हो।

कभी कभी वह भइया भइया कहता हुआ मिट्टी में चलता हुआ सब को कहता था कि, राम कहो, कृष्ण कहो, आदि, और हाथ उठा उठा कर देवताओं की तस्वीरों को सब को दिखाया करता था। आसपास के लोगों की भीड़ को देख कर तो वह खिल उठता था। सभी को राम राम कहो, कहता रहता था। कभी यदि वह ज़मीन पर गिर पड़ता तो भाई उसे उठा लेता पर जलेश कह देता था कि, "राम राम कहो" भइया।

* पाँच वर्ष से आठ वर्षपर्यंत *

पाँच वर्ष से आठ वर्ष तक तो वह ज्ञान-सम्पन्न हो गया था। उसके विचार त्यागमय, उदार, सच्चरित्र, सत्यात्मक हो गये थे। मुझे तो

उन्हीं दिनों पूर्ण निश्चय हो गया कि जलेश साधु बन के ही रहेगा।

जब वह सुबह का कलेवा करके अपने सम-वयस्क बालकों के साथ खेलने जाता था, तो वहाँ भी उसकी वही त्यागमय बातें तथा ज्ञान चर्चा हुआ करती थी। ऐसे ऐसे स्वाँग रचा करता था कि किसीको राम, किसीको कृष्ण, तथा किसीको शंकर बना बनाकर देवताओं का आवाहन ध्यान करता रहता था।

कभी कभी तो वह स्वतः पण्डित बनकर बालकों को धर्मोपदेश किया करता था।

कहता था कि :—

भाइयों, यह संसार और इस संसार में जो कुछ तुम्हारे आँखों के सामने दिखाई दे रहा है यह सब प्रातःकालीन ओस की चमक की तरह नाशवान, क्षणभंगुर है। जहाँ इसको ज्ञान की ज्योतिरूपी सूर्य का प्रकाश मिला कि सभी सूख गया है। आदि।......."

इस प्रकार माताजीने नारायण के पास जलेश की बचपन की विशेषतायें संक्षेप में कह सुनाई, और फिर बोली :—

"अच्छा भइया नारायण, कल मैं जलेश के दर्शन करने चलूंगी। कार्तिक का महीना है, इस

मास में साधु-ब्राह्मणों के दर्शन करने से पुण्य प्राप्त होता है।"

नारायण माताजी की इतनी बचपन की बातें सुनकर हर्ष और विस्मय से अवाक् सा रह गया, कुछ कहने नहीं पाया। माता को प्रणाम कर के घर की ओर चल दिया।

* माताजी का नित्यकर्म *

माताजी तो हमेशा ईश्वरपरायण, भगवद्भक्ति में लीन रहा करती थी। केवल कभी कभी पुत्र जलेश का विरह सामने आ जाता था तो मन विचलित हो जाता था।

माता का ही हृदय ठहरा, पुत्रस्नेह से विरक्ति मिलना असम्भव सी थी।

फिर भी माता अपने नित्यकर्म – ठाकुरजी की पूजा, आरती, पाठ और नामजप, आदि करने के उपरान्त, गुरुबाणी का पाठ किया करती थी।

घर का कारोबार बड़ी बहू किया करती थी। बड़ी बहू सर्व प्रकार कार्यकुशलता से सास की सेवा और घर का कारोबार करती रहती थी।

माताजी गुरु-उपदेशामृत (कथा सुनकर) पान कर आती थी, इतने में भोजन बन जाता था।

माताजी भगवान को भोग लगा कर स्वतः भोजन किया करती।

* जलेश के दर्शन *

कल फिर-नारायण माताजी के पास उपस्थित हुआ। माताजी अपने नित्यकर्म भोजनादिक से निवृत थी और इसी प्रतीक्षा में थी कि नारायण के साथ जलेश को देखने जाना है। माताजी को तो पता ही था कि यह जलेश का अठारहवाँ वर्ष है, ज्योतिषियोंने कहा था कि वह अठारहवें वर्ष में विरक्त हो जायेगा। गोपीचन्द भर्थरी की तरह यश प्राप्त करेगा। "हरीच्छा" इतना कहकर माताजी नारायण के साथ जंगल की ओर चल पड़ी। माताजी अपने पुत्र के लिये कुछ फल-फूल, मेवा और दही, वडा आदि पदार्थ साथ में ले चली थी। जो कि अपने छोटे पुत्र गुप्तार के पास दे रखे थे। वह भी साथ में था। छोटी देउरानी, चौथी की माता, नारायण की माता, एवं सभी पोखरा (तालाब) के पास जा पहुँचे जहाँपर कि माताजी इनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

तीनोंने माताजी के चरण छूकर सेवा वन्दना की और सभी भगवान शंकर के मंदिर

में दर्शनार्थ चले गये। भगवान भूतनाथ के दर्शनों में भेंट, फूल फल चढ़ायें, दर्शन किये। माता शचीदेवी भगवान भोलेनाथ की स्तुति इस प्रकार करने लगी। —

* आरती शंकरजी की *

"जै शंकर सुखकारी, जनहितकारी,
आश पुरवो प्रभु मेरी।
तुम तपधारी भव पार उतारी,
आवे जो शरण तुम्हारी। जै शंकर०
कह "शची" बेचारी इक आश तुम्हारी,
तुम हो डमरुधारी। जै०
जै जननी जनहितकारी मृगचर्म उरधारी,
खण्डउ संशय मेरी। जै०
तुम घट घटवासी अरु अविनासी,
पूरण हो आश हमारी। जै०
बाघम्बर धारी शिर जटा जूट धारी,
तीन ताप परिहारी। जै०
शिर गंगा बिराजे, मुण्डमाला छाजे
प्रभु हो आप खरारी भोजे।
सुशोभित भुजंगमाला तन छार खाला
बाल इन्दु माथे धारी।

नन्दी असवारी कहे " शची " पुकारी,
प्रभु पुरवो आश हमारी । जै०
" शची " अस मनमाना " जलेशहू "
दो वरदाना करे जो तपस्या तुम्हारी ।
जै शंकर सुखकारी० "

इस प्रकार माता शंकरजी का ध्यान करती हुई मौन हो गई। शंकर का ध्यान हृदय से हो रहा था। उन्हीं का स्वरूप निहारने लगी और आँखों के सामने वही शंकरजी का वरदान स्मरण हो आया इतने में चौथी की माता शंकर को जल चढाकर आ गई और बोली—" चलो, बहनजी देर हो रही है। "

माता का ध्यान टूटा, और शिव, शिव कहकर भगवान भूतनाथ को प्रणाम कर चल दी। दरवाजे की चौखटपर बार बार माथा नवाकर फिर आगे पैर बढ़ाये।

बाबा बन्हुदास महाराज की कुटिया पर पहुँचे, माथा नवाया, प्रणाम किया, फल फूल द्रव्य भेंट किये। और प्रार्थना की कि, " महाराज, जलेश पर कृपा रखिये जिससे उसका कल्याण हो जावे। "

बाबा बन्हुदास बोले :—

" माता, जलेश तो कल्याण का स्वरूप

है। आप तो धन्य हो गई हैं ऐसे पुत्र को प्राप्त कर। आपने तो माता सुमित्रा का स्थान ले लिया है। पुत्र को ज्ञान भक्तिमार्ग पर लगाकर, आपने तो अपने गाँव तथा आसपास के गाँव के लोगों को भी धन्य कर दिया है। ”

इसके बाद बाबा बन्हुदासजी को माताजीने नमस्कार किया और साथवाली स्त्रियोंसहित उसी पोखरे पर आ पहुँची जहाँपर पहले इकट्ठी हुई थी।

माताजी के मन में जलेश के दर्शनों की कितनी उतावली थी वह वर्णन करने में लेखक असमर्थ है। वात्सल्य स्नेह वाली मातायें स्वयं समझ सकती हैं। इतना अवश्य कहूंगा कि उस पोखरे-पर से माता जंगल की ओर इतनी शीघ्रता से गई मानो गोधूलि के समय गौवें अपने बच्चों की ओर दौड़ रही हों।

बस, पाठक इतनेसे ही अनुमान लगा लेंगे कि “ माता शची ” को अपने पुत्र दर्शन की कितनी लालसा थी।

* समाधिस्थ जलेश *

प्रेमविन्हल माता जब जलेश के समीप पहुँची तो गदगद हृदय हो गई। अवाक् सी खड़ी खड़ी न कुछ बोल सकी न पास में ही चल सकी। माता

के आँखों में अपना वह पाँच वर्ष का जलेश दिखाई देता था, वात्सल्यरस में सने हुये हृदय से लगाने के लिये हाथ आगे बढ़ाये, किन्तु वे हाथ आगे पीछे, नीचे ऊपर, दायें बाँयें ही होते रहे। जलेश को न अपना सके।

साथवाली स्त्रियाँ समझ गईं की "शची" पुत्र-विरह में पागल हो गई है।

बोली :—"बहिन, जलेश तो तुम्हारे आँखों के सामने है। पासही तो है, देखो तो सही।"

"शची माता" कुछ सचेत सी हुई। आँखें बन्द ही थीं, सोच रही थी कि "शायद मुझे देखकर मेरा जलेश कही भाग गया है या छिप गया है। हाय मैं उसका दर्शन नहीं कर पाई।"

परन्तु जब माताने ध्यानमग्न आँखें खोली तो सामने जलेश आँखें बन्द करके ध्यानस्थ है।

* माता और साधु पुत्र की बातें *

पुत्र और माता का सम्बन्ध दूध और जल का सम्बन्ध है।

जलेशने अपनी मातृस्नेह की सुगन्ध पाकर आँखें खोली और उठकर माता के चरणों में लिपट कर कृतार्थ हो गया। माता को प्रणाम करने के

अनन्तर अन्य माताओं को भी प्रणाम किया। और सभी यथा स्थान बैठ गये।

विकसित हुआ माताहृदय आँसुओंके द्वारा पिघल पड़ा। स्वभावने वाणी द्वारा प्रगट किया कि "लो बेटा कुछ भोजन कर लो।" मैं तो तेरी राह देखती हुई पगली हो गई हूँ। तुम जबसे इस ओर आये हो, तुमने मेरी सुध भी नहीं ली। बेटा, मैं तुम्हें क्या बताऊं कि मेरी क्या दशा हुई तुम्हारे वियोग में। मैं रातदिन तुमही को देखा करती थी। रोज यही ध्यान रहता था कि मेरा पुत्र नंगा कहाँ फिर रहा होगा। क्या खा रहा होगा। कौन खिला रहा होगा। जंगल में तो तरह तरह के जानवर भूत पिशाच्च आदि रहते हैं।

मेरा जलेश भोला भाला सुकुमार अवस्था में है। कहाँ डर रहा होगा। भगवान मेरे बच्चे को सामर्थ्य देना। अभय दान देना।" आदि आदि माता जलेश के सामने कहती रही।

माता का ही हृदय ठहरा। "जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ गुणों वाली सौख्यदात्री माता की कौन समता कर सक्ता है?

माता प्रेम विन्हलता में कहती जाती थी

और जलेश माता का दिया हुआ प्रसाद खाता हुआ माता के गुणों का अनुभव रसास्वादन करता जा रहा था। उसे तो भगवती माताका दर्शन और उसके प्रसाद, दोनों में आनन्द प्राप्त हो रहा था। उसकी ज्ञानेन्द्रियों को आज वात्सल्य रस के स्रोत में नहाने का अवसर प्राप्त हो रखा था।

जिव्हा प्रसाद का रसास्वादन करती जा रही थी। आँखें मातृतीर्थ के दर्शनसे अघा नहीं रही थी। कान माता के प्रेमामृत वचनों का श्रवणपान में रत थे। आत्मा कृतज्ञता में मस्त थी।

उस समय ता माता का अगाध प्रेम रूपी समुद्र और उसके पुत्र रूपी चन्द्रमा का मेल था।

* घर की यात्रा *

जलेश सोचने लगा कि अब माता को किस तरह यहाँ से बिदा किया जाय।........

फिर भी वह धैर्य और सन्तोष के साथ अपने स्नेहामृत वचनों से माताजी को हाथ जोड़कर कहने लगा।

" माताजी आप क्यों इस तरह व्याकुल और दुःखी होती हैं। मैं तो आप ही के आशीर्वाद से इस भेष में बैठा हुआ हूँ।

'जिस के रथपर राम हैं, को करि सकहि अकाज
भाव भक्ति के प्रेम में, रक्षक राम समाज'

और फिर मेरे सिरपर तो गुरु, देवता, माता की छत्र छाया है, मेरा बाल भी बाँका नहीं हो सकता, इसी पूर्ण विश्वास में मैं इस निर्जन बन में बैठा हूँ।

'जा को राखे साइयाँ, मार सके नहिं कोय
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।'

और :—

'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति,
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः
कृतः प्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति।'

माता बोली:—

'बेटा, सो तो भगवान भोलेनाथ ही तुम्हारे रक्षक हैं, परन्तु अब एक बार घर चलो, गाँव तथा अन्य आस पास के लोग सभी तुम्हारे दर्शनों को उत्सुक है।'

जलेश असमंजस में पड़ गया कि माताजी को निराश कैसे करूं। सशंकित भाव से बोला :— "माँ, घर में तो नहीं रखोगी? माताने कहा :—

"नही बेटा, भगवान की इच्छा को भला कौन रोक सकता है। और तुम तो बचपन से ही स्वतंत्र हो, तुम्हें रोकने से हमें क्या लाभ होगा। और फिर मैंने तो तुम्हें कभी रोका ही नहीं।

तुम्हारे लिये घर – बाहर – बन सभी एक जैसा है। और मेरी तरफ से तो तुम पैदा होने के बाद वन में ही हो।

तुम्हारे बचपन से आज तक जो जो चरित्र–लीलायें तुमने मुझे दिखाई हैं तथा जो जो उपदेश तुमने मेरे को दिये उन्हे मैं ही जानती हूँ, या भगवान ही, या तुम ही जानते होगे। मैं तो पहिले से ही जान गई थी कि यह गृहस्थी थोड़ा ही होगा। बेटा, मैं तो तुम्हारे बचपन के चरित्रों को कहने में असमर्थ हूँ, इसीलिये तुम्हें घर रोकने में भी असमर्थ हूँ। परन्तु एक बार घर चलकर सब को दर्शन देकर कृतार्थ कर आवो फिर जैसी हरि इच्छा।"

जलेश माता को निराश न कर सका, साथ चलने को तैयार हो गया। अन्य तीनो मातायें भी साथ ही थी।

चलते हुए जलेशने आधे रास्ते में माताजी से कहा "आप चलिये, मैं महात्मा बन्हुदासजी की कुटिया पर से होकर आता हूँ।" माताने स्वीकृति दी।

* बाबा बन्हुदासजी और जलेश की बातचीत *

जलेश बाबाजी को सतनाम गुहार कर, साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम कर खड़ा हो गया।

बाबाजीने मुक्तकण्ठ से आशीर्वाद दिया –

"तुम्हारा मनोरथ सफल हो !"

फिर बाबा बोले, "क्या इच्छा है जलेश ? गृहस्थी बनते हो या विरक्त ? दो में से एक रास्ता सम्भाल लो। ये क्या हलचल मचा रखी है। तुम्हारे घरवाले तथा गाँव–नगरवाले सभी तुम्हारे लिये व्याकुल हो रखे हैं। और तुम त्यागी बने फिरते हो। एक रास्ता क्यों न सम्भाल लेते हो।"

जलेश बड़े शान्त स्वभाव नम्रभाव से हाथ जोड़ कर बोला। "महाराज, जैसी इच्छा धनुषधारी राम की होगी वही होगा। गुरुकृपा सन्त, महात्माओं का आशीर्वाद और सत्वचन तो मनुष्य के लिये जीवन मुक्ति दाता होते हैं।

(शब्द, राग पुरबी)

अविगति की गति लखवे न आवै
सद्गुर दे परवाना हो॥ टेक॥
को अबिगति को गति भासत
का को है बेद परवाना हो॥

ब्रह्म है अबिगति भ्रम गति भासत
छर अक्षर में बेद परमाना हो ॥
शारदाराम सुजन जन लखि है
जापर होय सद्‌गुरू मेहरवाना हो ॥"

(निर्गुण रामायण — बाबा शारदारामजीकृत)

बाबा बन्हुदास जलेश की गम्भीर भावमई उक्ति को सुनकर प्रसन्नता से खिल उठे और बोलने लगे।

"बेटा, तू तो स्वतः सियाराम स्वरूप हो रहा है। तुम्हारे पास विवेक रूपी तुणीर है, शब्द-रूपी बाण हैं, अनुमान रूपी धनुष है, लक्ष्य रूपी निशाना (ध्येय) है। संशय रूपी मृग व प्रीति रूपी एकरस भोग है।

तुम्हारे पास क्या कमी है। मैंने तुम्हें जान लिया है, तुम्हारे पास वैराग्य का सभी सामान उपस्थित है। तुम जहाँ रहो वहीं तुम्हारा रामराज्य है। तुम्हारे शब्दरूपी बाणों में वह शक्ति है जिन के द्वारा विकारात्मक इन्द्रिय शिथिल होकर संशयात्मक आत्मा की शंकाओं का स्वतः ही समाधान हो जाता है और आगे भी होता रहेगा।"

जलेश बोला:—"महाराज, आप जिस प्रशंसा का भार मेरे ऊपर लाद रहे हैं यह तो आप अपनी साधु स्वभाव की बातें कर रहे हैं।

कहाँ तो त्रिलोकीनाथ मर्यादा पुरुषोतम भगवान रामजी और कहाँ यह तुच्छ दासानुदास। भगवान् रामचन्द्रजी की चरण रज से तो जड़ भी चेतन बन जाता था। पत्थर रूपसे गौतम घरणी मुक्ति पा गई।

त्रिलोक विजयी महाराजा रावण के संहार करने वाले भगवान् रामचन्द्रजी के दर्शन मात्रसे पापी भी तर जाते रहे। उनसे आप मुझ अकिञ्चन जुगनू को मिला रहे हैं। भला कहीं जुगनू सूर्य बन सकता है।"

बाबा बन्हुदासजीने एक मुस्कराहट से जलेश को आशीर्वाद देकर बिदा किया।

* दर्शनार्थियों की अपार भीड़ *

जलेश जब गाँव के बाजार से चल रहे था तो कप्तान गंज और आस पास के गाँवों के लोग लुगाइयों की अपार भीड़ से रास्ता ही घिर गया। सभी दर्शक गण जलेश को देखते थे, और धन्य है, धन्य है कहते थे। जलेश के बचपन के सहपाठी तथा सभी बच्चे लोग उस भीड़ में इकट्ठे हो गये।

जलेश के साथ नारायण की बचपन की मित्रता थी वह जंगल में भी आता जाता रहता था। इसीलिये नारायण जलेश से बेधड़क बातें कर लेता था।

इतना साहस और किसी को नही होता था।

लोग तो अपनी अपनी भावनाओं से जलेश को देख कर शान्ति प्राप्त कर लेते थे।

'जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखहि तैसी।'

परन्तु नारायण चुप रहने वाला नही था, वह आदत को न सम्भाल सका और जलेश से बोलने लगा :—

भइया जलेश, तुम तो वैराग्य के लिये बहुत शीघ्रता कर रहे हो। अभी तो तुम्हारी उम्रही क्या है ?

※ मित्र नारायण को जलेश का सत्यात्मक उपदेश ※

जलेश ने सावधानी से कहाः—क्या करूँ भइया, काल का डर जो है क्या जाने कब धावा बोल दे ? इस लिये पहिले ही क्यों न सम्भाला जाय।

नारायण ने अपनी विजय समझ कर कहने लगा — काल के लिये भी काल आत्मा है।

जलेश ने शान्त्वना देते हुये कहाः—

भइया, कहने मात्र से प्यास नही बुझती।

नारायणः—तो फिर कैसे बुझती है ?

"जतन" से जलेश ने उत्तर दिया।

अब नारायणने फिरसे नम्र भाव से कहा :- "तो भइया, आत्मा प्राप्ती के क्या साधन हैं? उसका जतन किस प्रकार हो सकता है? कुछ हमको भी बताओ न!"

जलेशने कहा :—

दोहा :— "सत्य कहे, सत्य हो रहे,
नित्य करे सत्य काम ॥
सत्य चले देखे सुने,
होवे पूरन काम ॥

— निर्गुण रामायण, बाबा शारदारामजीकृत

और सुनो :—

४ (शब्द, राग पुरवी)

मन हो कबहूँ सत्य सत्य
करिहो बिचारा हो ॥ टेक ॥
धिर्ती कीर्ती शान्ति शीलहू
क्षमा विवेक उरधारा हो ॥
सम दम संजम उपर्ती शरधा
सुमति करहू बे सुमारा हो ॥
ज्ञान बैराग परम पद मुक्ती, मन तू
कर इनका सनचारा हो ॥

शारदाराम सने सने चलहू
अहै अगम पन्थ अपारा हो ॥

यों समझो सत्यात्मक परमात्मा की शरण हो जाने से सब कुछ पूर्ण हो जाता है और जीवनमुक्त हो जाता है।

सम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये सभी वृत्तियाँ सत्यरूपी बीज, सरीररूपी खेत से, साधनरूपी वृक्ष और शाखाओं के रूप में उत्पन्न होकर ही आत्मारूपी फल प्राप्त होता है। जिस अमर फल के प्राप्त हो जाने पर फिर संसार की कोई वस्तु की इच्छा ही नहीं रहती। मनुष्य जन्म-मरण आदि चोरासी के फेर से मुक्त हो जाता है।"

इस प्रकार शंका-समाधान के साथ विनोद करते हुए सभी मित्र और बाल-मण्डली जलेश के नये घर में चले गये। गाँव और शहर के दर्शक-गणों की लगातार दो घण्टे तक बड़ी भीड़ लगी रही। तिलधरने को जगह नहीं थी, जो आता वह अपनी भावना को शुद्ध कर लेता। जलेश के दर्शन पाकर अपने को कृतार्थ मानता।

* ग्रामीण लोगों की भावना *

दर्शनों से बिदा होने की किसी की इच्छा नहीं थी। जनानियाँ तो आपस में तरह तरह की कल्पनायें कर रही थीं। कोई कहती, "मैं तो समझती थी कि जलेश बोलता ही नहीं हैं।" दूसरी बोलती —"बोलता तो है परन्तु उसकी बोली तो समझ में ही नहीं आती है।" कोई कहती — "बहिनों! जो इसकी बोली समझ जाता है वह भी मस्त हो जाता है।"

एक कहती है —"अरी देखो तो इसकी क्या निराली धारणा है। इसने तो अपनी जवानी में ही सभी कुछ त्याग दिया है। धन–सम्पति को तो यह मिट्टी समझता है।

धन्य है प्रभु, तेरी माया अपार है। इस घोर कलियुग में ऐसा कौन होगा जो अपनी इस सम्पति को छोड़ साधु बन जाय।

इसके घर में हजारों रुपयाँ हैं और अन्न का डेढ़िया चलता है। घर में प्राणी अधिक होने पर भी सभी एक ही शासन में रहते हैं। सारी बनी बनाई सुख–समृद्धि इसके भाग्य में नहीं बन्धी है।"

कोई जनानी कहती — "बहिन, तुम नहीं जानती यह तो अधिक से अधिक उन सुखों को

देख चुका है जिनके लिये राजा भर्थरी भी राजसुख छोड़ कर नंगेबदन जंगलों में फिरता रहा।"

आदि आदि तरह तरह की कल्पनाएँ स्त्रियों के बीच होती रहीं।

* ज्येष्ठ पिताजी (ताऊजी) की सुलाह *

भीड़ कमती हुई। घरवाले भी भाई, भाभी, उनके बच्चे सभी दर्शन करके पुराने घर को चले गये। जलेश के ताऊजी अब सामने आकर कुछ अपनी भी सुलझाने लगे। प्रथम जलेशने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया और बोले :—

"बेटा, अब जब तुम इस भेष को चाहते ही हो तो तुम्हारे लिये नज़दीक नदी के किनारे या मील दो मील जंगल में एक कुटी बना देंगे। तुम्हारे निमित्त से हमें और भी सन्त-साधुओं की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा।"

जलेशने विनम्र भाव से कहा :—"पिताजी, एक बार मुझे इस असार संसार से मुक्त होने दीजिये; भारतभूमि की प्रदक्षिणा, तीर्थों का स्नान, साधु-महात्माओं के दर्शन, और प्रमुख प्रमुख मन्दिरों के दर्शन कर लूँ तो फिर जैसी हरि इच्छा होगी देखी जायेगी।" इस प्रकार उत्तर पाकर दोनों ज्येष्ठ पिता आदि निराश होकर चले गये।

* बडे भ्राता के विचार *

अब महात्मा जलेश के सामने बडे भ्राता 'अलगुरामजी' आये; उन्होंने भी अपनी राम कहानी कहकर जलेश से अपने जीवन सफल बनाने का उपाय पूछा।

जलेशने उत्तर दिया :—

"भ्राताजी, यदि आप मातृसेवा बड़ी श्रद्धा से करोगे तो आपके सभी तीर्थ घर में ही हो जायेंगे। शास्त्रों में लिखा है "मातृदेवो भव।"

अर्थात माता पहिला देवता है, उसकी सेवा करनेवाला हो। मातृसेवा से ही आप धन, सन्तान आदि से सभी तरह सुखी रहेंगे।

हम सभी भाइयों में से एक मैं ही साधु बन जाऊँगा तो यह भी माताजी के लिये बड़े पुण्य की बात होगी।

और आप अगर घर पर रह कर भी श्रद्धाप्रेम से मातृसेवा में कोई कमी नहीं रखोगे तो माता के द्वारा आप भी पुण्य के भागी बनेंगे। मेरे विचार में तो आप दोनों तरह से पुण्य के भागी बनेंगे। अर्थात् आपके लिये घर में ही पुण्य की प्राप्ती का प्रमुख साधन है।

पाण्डवोंने मातृसेवाभक्ति के प्रभाव से श्रीकृष्ण जैसा सखा प्राप्त किया।

अतः मैं रामसेवा भक्ति में लग रहता हूँ और आप मातृसेवा भक्ति में लगे रहें। यशः-कीर्ति अपने अपने शुभकर्मों द्वारा, गृहस्थ और विरक्त दोनों को प्राप्त होती रहेगी। "

* माता का आशीर्वाद *

इतनी बातचीत हो ही रही थी कि माताजी दूध ले आयी। जलेश दूध पीने लगा।

माताजी अपने स्वाभाविक विरह में आँखों से आँसू डबडबाने लगी। गला कहने में रुक रहा था कि वात्सल्यरस से भरा हुआ हृदय खुले बिना न रहा। जी भर के रोने के बाद माता बोलीः– " बेटा, लोग तो तुझे आज साधु मान रहे हैं परन्तु मैं तो तुम्हें कहती हूँ कि तुम अनेक जन्मों से ही साधु चले आये हो। मैं तो तुम्हारे बचपन के चरित्रों से विमोहित हुई हूँ और तुम्हें देखती ही रहती हूँ। परन्तु धनुषधारी राम की इच्छा ही यह है कि तुम मुझे छोड़कर बैरागी बन जाओगे।

अच्छा, जाओ बेटा, भगवान् भोलेनाथ तुमको सुख–शान्ति दें और तुम्हें साधुता प्रदान करें।

माता के जीते जी दर्शन देते रहना, कहीं भूल नहीं जाना अपनी माता को। और मेरी

सीख को याद रखना बेटा, इसमें तुम्हारी सर्वत्र विजय होगी।"

* माता की शिक्षा *

" वत्स, सभी जीवों पर दयाभाव रखना। निन्दनीय कर्म से हमेशा लज्जा करना। लोक-वेद की मर्यादा का पालन करना। भजन का खजाना यतन से रखना। शर्म का कफन पहिने रखना। लज्जा तथा जत का लंगोटा धारण करके रखना। शत्रु–मित्र अपने मन को ही जानना। हाथ में आस्वादन स्वल्प, और शरीर की खप्पर या बटुआ जानना "........

आदि कहते कहते माताजी मूर्छित–सी हो कर जमीन पर लेट गयी।

जलेशने माताजी को तुरन्त उठा लिया और सम्भाल कर बोला –" माताजी, मैं तो अभी आपके ही पास हूँ, आप क्यों इतनी दुःखी हो रही हैं। आप तो सच्चिदानन्द प्रभु का उपदेश करती रहती है जिस प्रभुके सदुपदेश में सुख-दुःख-मोह आदि का लेसमात्र भी नहीं है। आप तो धन्यवाद के योग्य–पूज्य हैं। आपकी अमृतवाणी से तो मैं भी अपनेको सफल मान रहा हूँ। आपका आशीर्वाद मुझे शक्ति देवे कि मैं आपके

सदुपदेश का ठीक ठीक पालन कर सकूँ। माता होस में आयी, गहरी साँस लेकर रुके हुए कण्ठ से बोली —"बेटा, धन्य तो तू है! जा मेरे लाल, तेरे मनोरथ भगवान् पूर्ण करें।"

इस अनन्य उपदेशरूपी आशीर्वाद के बाद माता अपने बड़े पुत्र के साथ पुराने ही घर में आ गयी।

* माताजी अथाह विरह में *

जलेश की बिदाई से माताजी को बड़ा आघात पहुँचा। अत्यन्त विरहने उन्हें घेर लिया। निद्रा महामाया भी उनपर अपना जाल न बिछा सकी। आती थी और लौट जाती थी। कभी कभी उसका दाँव-पेच उस विरहाग्नि पर एक आधा घण्टे क लिये लग भी जाता रहा; कभी कभी पूर्व दिशा की लालिमा माताजी को सूचित कर देती थी कि सूर्यभगवान् आ रहे हैं। तुम्हारा भजन करने का शुभमुहूर्त हो रहा है। कुकुट्ट (मुर्गा) की बाँग तो मानो प्रातः नित्यकर्म के लिये साव-धान कर रही हो।

उड्डगण (तारे) ऐसे विलीन होते जा रहे थे कि जैसी कपटी कुचाली का मन ज्ञान के प्रकाश

से विलीन होता जाता है। चन्द्रप्रभा अपने में ही समा जा रही है मानो।

पक्षियों का कलरव निनाद ही ब्रह्मचारी बटुओं की वेदध्वनि का संकेत कर रहा है। नेत्रों के सहायक प्रकाशदाता भगवान् भास्कर उदय-गिरिमञ्चपर आ गये। कमल खिलखिला कर हँसने लगे। माताजी विरह सरोवर में इस शुभमुहूर्त में गोते ही लगा रही हैं। साथ ही अपना नित्यकर्म भी करती जा रही हैं।

उधर भक्तपुत्र जलेश असार संसार से "माया-मोह" की कठिन बेड़ियों को तोड़कर निर्वाण पथ जंगल की ओर चला जा रहा था। और कहता था कि :—

२ [शब्द राग पुरवी]

"अब हम जइबै अपने घर हीं।
सद्गुर से लेबै साख भराई हो॥ टेक॥
यह घर नाहीं वह घर भावत।
जाको बेद पुराण अचल ठहराई हो॥
जनम जनम का जीव है विसरल।
सद्गुर दें बाँट बतायी हो।
शारदाराम अचरज घर पावल।
यह सद्गुर की है बढ़ियाई हो॥

— निर्गुण रामायण

* जलेश का पूर्ण रूप से घर छोडकर जंगल में चला जाना *

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

— गीता अ. १२, श्लोक ५

अर्थात् उस अव्यक्त सच्चिदानन्द निराकार ब्रह्म में जिनका चित्त आसक्त हो जाता है उन्हें पहिले पहिले बहुत-सी सांसारिक कठिनाइयों से तथा लोकाचार की अव्यवस्था के क्लेशों से टक्कर खानी पड़ती है।

सांसारिक क्लेश माया-मोह के जँजाल से तो अभिमानादिक विकार होंगे ही, और जहाँ ये विकार हैं वहाँ कैसे उस शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार ब्रह्म में स्थिति हो सकती है।

भगवान् तो कहते हैं कि :—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

— गीता अ. १२, श्लोक ६

अर्थात् — जो भक्त जन मुझमें ही परायण हो जाता है और सम्पूर्ण कर्मों को सभी तरह मुझमें ही अर्पण कर देता है; तथा सभी तरह

एकीभावसे मेरा ध्यान तथा उपासना करता है, तथा अनन्य ध्यान योग द्वारा निरन्तर मेरा ही चिन्तन करता रहता है :—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥
— गीता अ. १२, श्लोक ७

उन मुझमें आसक्तिभावसे चित्त लगानेवाले अपने प्रेमी भक्तों का तो मैं शीघ्र ही मृत्यु-संसार-रूपी-सागर से उद्धार करनेवाला होता हूँ।

क्योंकि मुझे तो वे ही भक्त प्रिय हैं जो :—

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
— गीता अ. १२, श्लोक १६

हर प्रकार की इच्छाओंसे रहित (सिवाय परमात्मा के) तथा बाहर भीतर से शुद्ध और चतुर है; एवं पक्षपात से रहित सुख और दुःखों से छूट चुका है वह सर्वारम्भ का त्यागी (अर्थात् जिसने मन, वाणी और शरीर द्वारा प्रारब्ध से होनेवाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कार्यों में कर्तापन का अभिमान का त्याग कर दिया है, ऐसा ही भक्त मुझे प्रिय है।

बस यही समस्या जलेश के सामने थी। उसके मन में उदासीन भाव के अंकुर फूट पड़े थे। वह

तो उन उदासीन भाव के अंकुरों को एक विशाल वृक्ष के रूप में देखना चाहता था जिस वृक्ष के अमर फलों का रसास्वादन प्राणिमात्र कर सकें और अपने जीवन को सभी सफल बनावें।

इसी उद्देश्य को लेकर वह घरबार को सावधानी से छोड़कर तथा माताजी को अव्यवस्थित विरह व्याकुलता की हालात में छोड़कर उस परब्रह्म के मार्ग पर चल दिया जिस मार्ग से फिर लौटना नहीं होता।

ॐ अच्छैवर अहीर का प्रेम ॐ

जलेश बड़ी शीघ्रता से गाँव के बाहर परिक्रमा की तरह घूम कर, नयी बाज़ार बनारसी बाग होते हुए छाता कपूरा, अहरौटी, नया शिवालय का दर्शन करके आगे चले ही थे कि बचपन का साथी अच्छैवर अहीर दौड़ता हुआ आकर बोला :—"भइया, दूध तो पीलो थोड़ा। तुम और मैं तो गाँव, घर और बचपन के साथी हैं। तुम साधु बनकर मुझे न भूल जाना। मेरी भी सुद लेते रहना।"

जलेश अच्छैवर अहीर के स्वाभाविक प्रेम में मुस्कराकर दूध पीते हुए बोला :—

"भैया अच्छैवर, राम सबकी सुद लेता है,

तुम चिन्ता न करो, 'राम' नाम का जप किया करो, बस इसीमें तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।"

※ भगवान् शङ्कर से जलेश की प्रार्थना ※

कार्तिक के महिने का उत्सव पुराने शिवालय में हो रहा था। जलेश भी हाथ पाँव धो कर भगवान् भूतनाथ के शुभदर्शनों को पहुँचा।

प्रफुल्लित हृदय से भगवान् भोलेनाथ की स्तुति-बन्दना करने लगा :—

"भगवान भोलेनाथ, भवभञ्जन करनेवाले प्रभु शम्भु कैलास के वासी! अब मैं आप की शरण में आ पहुँचा हूँ; मुझे ऐसी भक्ति प्रदान करो कि मैं दत्त-चित्त होकर इस मार्ग में सफलता प्राप्त कर सकूँ। मुझे इसी वेष-भूषा परिधान की भिक्षा दे। मेरा शरीर भी इसीसे सुशोभित हो।

प्रभो, आपने तो विष्णु-भगवान् को शंख चक्र गदा पद्म दिये हैं। और ब्रह्माजी को चारों वेद तथा भगवान् रामचन्द्रजी को धनुषबाण और अर्जुन को भी पशुपत अस्त्र दिया है।

सभी अवतार, तथा ऋषि-मुनि, देवता, दानव आपकी वन्दना करते हैं। आप सबके पूज्य और अविनासी है। मैं तो आप का अकिञ्चन

किंकर दासानुदास चरणरज हूँ, मेरी आशा मनोरथ पूर्ण कीजिये प्रभो!"

इस प्रकार जलेश तो भगवान भूतनाथ को मनाने में लगे हुए थे। रात्रीने चाँद और ताराओं द्वारा अपना जाल संसार में बिछा दिया। पक्षियोंने अपने कलरव निनाद से दिन के बिदाई और रात्री के आगमन के गीत गायें, ऐसा मालुम होता था जैसे त्रिवेणी का 'सगवग' मेला भरा हुआ हो।

परन्तु जलेश के लिये तो भक्ति की पवन-धारा में ही आनन्द है। उसके सामने एक ही लक्ष्य है योगसाधन द्वारा भगवच्चिन्तन।

भगवान् शंकर को अनेकवार नमस्कार कर परिक्रमा कर चरणामृत पान करके बाबा बन्हुदासजी की ही कुटिया पर आ पहुँचा, जहाँपर कि वह प्रायः हमेशा ही आया जाया करता था।

* माताजी का आदर्श त्याग *

जलेश बाबा बन्हुदासजी की कुटिया पर पहुँच ही थे कि वहाँ माताजी भी अपने पुत्र को फिर से खाद्यपदार्थ देने की उत्कण्ठा में बैठी थी।

खाद्यपदार्थ अपने पुत्र को दे कर माताजी कृतार्थ हो गई और जलेश से बोली कि "वत्स, मुझे कभी कभी तो दर्शन देते ही रहना।"

जलेशने हाथ जोड़कर नम्रभाव से कहा कि "माताजी, जब तक मैं इस प्रान्त में हूँ तब तक तो आपका दर्शन करता ही रहूँगा। फिर अन्य प्रान्तों या तीर्थों में भ्रमण करने पर तो देरी होगी, आपके दर्शन बहुत दिनों या महीनों में हो सकेंगे। अब तो आप अपनी शुभ आशीर्वाद देती रहना।"

इस तरह क्षणिक वार्तालाप के अनन्तर जलेशने माता को प्रणाम किया। माताजीने शुभ तथा अंतिम आशीर्वाद दिया और घर को चल दी।

उस समय माता का हृदय इतना व्याकुल था कि मानो बछड़े से छुडा कर गाय को जबरन जंगल को धकेला जारहा हो।

* शचीमाता को समाज का धन्यवाद *

माताजी के इस आदर्श त्याग की सभी लोग घर घर प्रशंसा कर रहे थे। माता शची के दर्शनों से ही लोग अपनेको धन्य मान रहे थे।

माताजी की प्रशंसा में लोगों का कहना था कि धन्य है ऐसी माता की जिसने इतना साहस किया कि अपने होन हार पुत्र को साधु बनने की आज्ञा दे दी। कोई स्त्रियाँ कहती थी कि एसी ही माता का जीवन सफल है जिसकी कोख से ऐसा साधु-पुत्र पैदा हुआ है।

वरमेको गुणी पुत्रो नच मूर्खशतैरपि ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति, नच तारागणोऽपि च ।

— हितोपदेश

अर्थात् गुणवान तो एक ही पुत्र श्रेष्ठ है आदि....आदि कोई कहते थे ।

पुत्रवती युवती जग सोई
रघुवर भक्त जासु सुत होई ।

— तुलसीदास

इस तरह तरह की उक्तियाँ लोग कहते थे ।

माता की पुत्रस्नेह की संवेदना और पुत्र का भगवत्प्रेम इन दोनों समस्याओं का जनता अनुभव कर रही थीं । साथ ही सहर्ष धन्यवाद दे रही थीं !

दीक्षा प्रकरण

(३)

मंत्र

"ॐ ब्रह्म सोहं जाप
शुद्ध ब्रह्म आतम आप।
आदिगुरु हँसावतार
आतममेधावी सनत्कुमार।
ॐ सत् नाम श्रुत
नामजप जीवन्मुक्त॥"

* गुरुदेवजी का परिचय *

श्री श्री १०८ पूज्य श्री गुरुदेव मौजीरामजी महाराज उस दिन सात आठ बजे रात को भ्रमण करते हुए बाबा बन्हुदासजी की कुटिया पर आये हुए थे।

जलेश को जब से वैराग्य की धुन लगी हुई थी तभी से कोई सद्गुरु की धुन भी लगी हुई थी। क्योंकि अज्ञान-अन्धकार में भटकनेवाले प्राणी को ज्ञान का प्रकाश गुरु ही दिखा सकता है।

बहते हुए दरिया में तिनके का भी सहारा

माना जाता है। यह संसार भी एक सागर है। इसमें जीवन की नैया है, उस नैया में कामक्रोधादिक पत्थरों का असह्य बोझा है; अज्ञान का अन्धकार है, और विषयबासनादिक तूफान चल रहा है। ऐसे विकट समय में इस नैया को पार लगानेवाले गुरुदेव के सिवाय और कौन हो सकता है जो कि सीधा पार लगने का मार्ग बता सके।

(१) सत की नाव। खेवटिया सद्गुरु।
भवसागर तर आयो॥

— मीराबाई

(२) जीव राम भूलन हार है।
भूलत बारंबार।
सद्गुरु कृपा से सच्चे यार भये।
सो जन उतरा पार॥

— निर्गुणरामायण

(३) संशय सर्व समुद्र है।
श्रुतिस्मृति जहाज सुहान।
ईश ब्रह्म रचि दिये।
तरी है जीव जहान॥

— निर्गुणरामायण

कबीरदासजी कहते हैं :—

(४) भाई कोई सतगुरू संत कहावै,
नैनन अलख लखावै॥

डोलत डिगै न बोलत बिसरै
जब उपदेश दृढ़ावै ॥
प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा
सहज समाधि सिखावै ॥
द्वार न रूँधे पवन न रोके
नहिं अनहद अरूझावै ॥
यह मन जाय जहाँ लग
सब ही परमातम दरसावै ॥
करम करै निहकरम रहै जो
ऐसो जुगुत लखावै ॥
सदा विलास त्रास नहिं मन में
भोग में जोग जगावै ॥
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै
अधर मँड़इया छावै ।
सुन्न सिखर के सार सिला पर
आसन अचल जमावै ॥
भीतर रहा सो बाहर देखै
दूजा दृष्टि न आवै
कहत कबीर बसा है हँसा
आवागमन मिटावै ॥

अस्तु । आज तो जलेश की प्रसन्नता का

ठिकाना नहीं था, मानो निर्धन को धन की प्राप्ती हो गई हो।

श्री १०८ बाबा पूज्य मौजीरामजी को देख कर जलेश का मन उनके चरणों की ओर खिच सा गया। निर्धन को खज़ाना प्राप्त हो गया; शरीर, मन और बाणी कृतार्थ हो रहे थे; परन्तु उस ज्ञान-चर्चारूपी अथाह सागर में गोता लगाने का साहस किसीको नहीं हो रहा था; अर्थात् जलेश कुछ पूछना चाहता था किन्तु साहस उसे मौन कर रहा था। आख़िर उसने आँखों की तृप्ती में ही अपनी तृप्ती समझी, और गुरुदेवजी को एक ध्यान–दृष्टि से देखता रहा।

* गुरुजी से शंकानिवारण *

जलेश गुरुदेवजी को शान्त और स्वस्थ चित्त से देख रहा था। कुछ देर पश्चात बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर गुरुदेव से बोला :—" भगवन्, दया करें तो मेरी कुछ पूछने की आशा है।"

गुरुदेव बोले :— " बेटा, साधुस्वभाव तो जनसमाज के कल्याण करने के लिये होता है। निःशंक हो कर पूछो जो कुछ तुम्हें पूछना हो।

जलेशने प्रश्न किया :—" भगवन्, साधुजन कितने प्रकार के होते हैं ? "

गुरुदेव बोले :—"वत्स ! साधुजन चार प्रकार के होते हैं और वे सभी एक ही परमात्मा के दास होते हैं।

वे चार इस प्रकार हैं —उदासीन, सँन्यासी, बैरागी और नाथ। इन चारों भेष के अंतर्गत सभी साधुजन आ जाते हैं।

१–" उदासीनों " के अन्तर्गत निरङ्कारी निर्मला सुतरे साह हैं।

२–"दण्डी संन्यासियों" के अन्तर्गत गोसाईं सात आखाड़े हैं।

३–" बैरागी" के अन्तर्गत श्रीराम सनेहीजी, श्री कबीरदासजी तथा श्री भीखादासजी, गोविन्द-साहेब, श्री पलटुसाहेबजी आदि हैं।

४–" नाथ " पन्थ के अन्तर्गत श्री औघड़ भैरव हैं।

इन सभी चारों प्रकार के साधुओं के शिष्य प्रशिष्यों की अधिक-परम्परा बढ़ती हुई चली आ रही है और सभी भगवत्–भजन में लगे रहते हैं। इनसे सनातन–धर्म, और गौ–रक्षा आदि का प्रचार–सेवा होती रहती है। सभी सन्त–साधु लोकहित के लिये होते हैं।

बेटा, हम उदासीन भेषी हैं। हमारे आदि

गुरु हँसावतार होकर "उदासीन" दीक्षा सर्व-प्रथम सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, मुनियों को दिये हैं। फिर इसी उदासीन भेष की परम्परा नारदादिक ऋषियोंने बढ़ाई। फिर इस कलिकाल में उदासीनाचार्य सर्वश्री श्री चन्द्राचार्य मुनिजी से परम्परा बढ़ती हुई चली आ रही है।

इस परम्परा के सभी महात्माओं के द्वारा लोक परलोक का सुधार हुआ। ये ही सन्त महात्माजन लोककल्याण और जनसमाज के हित में लगे रहे और लगे रहते हैं। ये महात्मा-जन तन, मन, बचन से जनसमाज का हित और सेवा करते आये हैं और भविष्य में करते रहेंगे।

मनके द्वारा भगवत्–भक्तिपरायण होते हुवे जनसमाज तथा प्राणिमात्र को सुखी देखना चाहते हैं।

बचन के द्वारा सत्य–उपदेश, धर्मरक्षोपदेश, कथाप्रकथन, प्रवचन तथा बड़े बड़े मेला, कुम्भादिक पर्वों पर भी धर्मोपदेश, सत्संग, अन्नदान, हरिकथा-चर्चादिक करते रहते हैं।

और कर्म के द्वारा धर्मशालाएँ, बावड़ी, कुआ, तालाब, पाठशालादिक बना बनाकर प्राणिमात्र का हित चाहते हैं। इन्हींकी अमृत-वाणी है कि:—

सर्वे हि सुखिनः सन्तु
सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद्दुःखभाक् भवेत् ॥

— उपनिषद्

और भी इन्हीं सन्त-महात्माओं के द्वारा तमाम भारतवर्ष में दीन-दुःखी, अतिथी-अभ्यागतों के लिये दान, धर्म, पुण्य आदि शुभ-कर्म होते रहते हैं।

यह भी इन्हा महात्माओं की कृपा है कि देश में बड़े बड़े धार्मिक पर्व समय समय पर मनाये जाते हैं। जैसे भारतवर्ष में कुम्भ का महापर्व चार प्रमुख तीर्थों में मनाया जाता है।

हरिद्वार, प्रयागराज, नासिक और उज्जैन इनमें महीनों तक जनसमाज तथा साधुसन्तों की अपार भीड़ लगी रहती है। जनता सतोगुणी होकर स्नानदान, पूजापाठ, देवदर्शन करती रहती हैं। और साथ ही साधुसन्तों की कथा-प्रवचनादिक सुनती रहती हैं। सन्तों के दर्शनों से जनता अपना जीवन सफल मानती हैं।"

जलेश ध्यानमग्न सुन रहा है, गुरुदेव की

अमृतवाणी उसके कर्णपुटों द्वारा उसके हृदय को विशुद्ध करती जा रही है। जलेशने फिर हाथ जोड़ कर प्रश्न किया :—

"महाराज, 'उदासीन' का क्या तात्पर्य है तथा उदासीन के क्या कर्तव्य हैं और उसे कैसे रहना चाहिये; कृपा कर श्रीमुख से निजदास को खुलासा बतला दीजिये।"

* उदासीनों के गुणकर्म *

गुरुदेवजीने कहा :—"वत्स सुनो! उदासीनों के तमाम गुणकर्म स्वभावादिक तो भगवान् श्रीकृष्णने गीता में अपने मुखारविन्दसे वर्णन किये हुये हैं। और भी बड़े बड़े ग्रन्थ तथा वेद—वेदान्तों में उदासीनों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि के बारेमें उनका वर्णन मिलता है।

परन्तु तुम्हारे संशय को दूर करने के लिये संक्षेप से मैं भी वर्णन कर देता हूँ, ध्यान से सुनना :—"उदासीनो गतव्यथः" गीता के इस एक ही पद से स्पष्ट हो जाता है कि संसार के मायाजाल, तथा सांसारिक तमाम सुखदुःख, राग-द्वेष, शीतउष्ण, मानअपमानादिक गुण, कर्म-स्वभाव से होनेवाली व्यथा से जो रहित है वही उदासीन है।

अर्थात् जब आसक्ति ही नहीं होगी तो व्यथा होगी ही कैसी ?

> ' साचहुं उनके मोह न माया,
> उदासीन धन धाम न जाया।'
>
> — तुलसीदासजी

वास्तविक रूपसे उदासीन का तात्पर्य यही है और उनका धर्म भी यह है कि मनसा, वाचा, कर्मणा से भगवद्भक्ति में लीन रहना।

उदासीनों के लिये यह आवश्यक है कि सभी प्राणियों में समभाव से रहना तथा सत्य सनातन लोकमर्यादा के हितार्थ जप, तप, साधना, दया, धर्म आदि प्रवृत्ति में रहना।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी इस धर्म का सत्यरूप से पालन किया। सन्त तुलसीदासजी कहते हैं :—

> ' पिता बचन तजि राज ' उदासी '।
> दण्डकबनं बिचरत अविनासी ॥
> तापस भेष विशेष ' उदासी '।
> चौदह वरष राम वनवासी ॥ '
>
> — तुलसीदासजी

भगवान् रामचन्द्रजी पूर्ण ब्रह्म परमात्मा

स्वरूप होते हुये उन्होंने भी उदासीन भेष धारण किया और बन में बिचरण करते रहें। उन्होंने लोकमर्यादा का पालन करते हुये धर्मरक्षा के लिये अनेक राक्षसों का हनन किया और सत्य सनातन धर्मपूर्वक रामराज्य चलाया।

भारद्वाज मुनि भरतजी से कहते हैं :—

'सुनहु भरत हम झूठ न कहहिं
'उदासीन' तापस बन रहहिं॥'

— तुलसीदासजी

भारद्वाज मुनिजी भी उदासीन थे जो कि विश्ववत् सूर्य है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारद, कपिल आदि सभी उदासियों का वर्णन पुराण इतिहासादिक धर्मग्रन्थों में जगह जगह मिलता है।"

इस प्रकार उदासीन भेश के बारे में सर्वश्री १०८ बाबा मौजीरामजीने संक्षेप में बहुत कुछ जलेश के प्रति उसके संशयनिवारण के लिये कहा। फिर कहने लगे :—"बेटा, तू धन्य है। मैं तेरी बुद्धिपर प्रसन्न हूँ कि तुझे इस तरह उदासीन भेष का परिचय तथा ऐतिहासिक अर्थ जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तू तो सच मुच में इस मार्ग के ही लिये इस असार संसारमें पैदा हुआ है। भगवान् तेरी कामना सफल करेंगे।"

जलेश कृतार्थ हो गया था। उसके रोम रोम में प्रसन्नता और उत्साह हो रहा था। फिर हाथ जोड़कर बोला :—“ भगवन्, आप तो सर्वसमर्थ हैं। मुझ जैसे पामर को कृतार्थ करते रहें।

प्रभुवर, आपने तो मेरी एक ही शंका के समाधान में अनेक शंकाओं का निवारण कर दिया है। अब कृपा करके आत्मा परिचय के विषय में भी मेरे संशय का निवारण करीये। ”

गुरुदेव जलेश की गहरी बुद्धि की थाह लेते हुये प्रसन्नता से कहने लगे।

“ वत्स ! आत्मज्ञान तो सुनने सुनाने से ही बुद्धिरूपी गृह में निवास नहीं करता है। इसके लिये तो स्वतः अभ्यास और अहर्निश गुरु–उपदेश, सत्संग, ध्यान–धारणादिक की आवश्यकता होती है। फिर भी इतना मैं तुम्हें समझा देता हूँ कि, अनेक जन्मों के सुपुण्यों के द्वारा प्राप्त इस मानवदेहरूपी भूमि में सत्कर्मरूपी बीज बोने से और भक्ति-रसामृत का जल सींचने से आत्मज्ञानरूपी कल्पवृक्ष अभिमतफल दातार बन कर ज्ञानरूपी प्रकाश से सभी इद्रियों को प्रकाशित कर देता है। जिसके द्वारा :—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥

— गीता अ. ५, श्लोक २१

बाहर के विषयों अर्थात् सांसारिक भोगों में आसक्ति रहित अंतःकरणवाला पुरुष अपने अन्तःकरण में जो भगवान् का ध्यान करता है ऐसा ब्रह्मयोग से युक्त आत्मा अक्षय सुख को प्राप्त करता है। ब्रह्मयोग से आत्मज्ञान की पूर्ण प्राप्ती होती है।

सो पुत्र, तू भी अनेक जन्मों के सत्कर्मों से ऐसे गम्भीर प्रश्नों को जान रहा है, इससे तू पूर्ण भगवत्भक्त प्रतीत होता है। आगे और भी जो तेरी इच्छा है सो निःशंक होकर पूछ ले — कबीरदासजी कहते हैं :—

'वृक्ष फले न आपको, सरिता सचै न नीर।
परमारथ के कारण साधुन धरा शरीर॥'

अर्थात् :— परोपकाराय सतां विभूतयः।

साधुओं की विभूति दूसरों के हितार्थ ही होती हैं। अतएव इस शरीर से किसी भी प्रकार जीवों पर उपकार हो सके तो इससे बढ़कर क्या है।

जलेशने मुस्कराते हुये कहा :—"भगवन्, आपका उपदेशामृतरूपी रस, रसनारूपी मेघों से टपक कर, मेरे हृदयरूपी भूमि को सिञ्चित कर रहा है। जिसके द्वारा विवेकरूपी अंकुर निकल रहे हैं और वे सन्तोषरूपसे फलित हो रहे हैं।

आप स्वयं शिवस्वरूप मेरे कल्याण के लिये पधार कर मुझे कृतार्थ कर रहे हैं।"

गुरुदेव प्रसन्नता से बोले :—"वत्स, इसमें कृतार्थ की क्या बात है। मन का सन्देह प्रकट करना तुम्हारा कर्तव्य है और उस सन्देह का निवारण करना हमारा धर्म है। जो यथार्थ उपदेश है उसे कहने के लिये हमें यह भेष प्राप्त हुआ है।"

जलेशने कहा :– "भगवन्, सब आपकी महान् कृपा है, जो कि आप मेरे संशय को मिटा रहे हैं। इस महान् कृपा से मैं पार हो जाऊँगा।"

गुरुदेवजीने कहा :—"वत्स, और कुछ पूछना हो तो पूछ लो।"

जलेश बहुत समय से जिस उधेड़ बुन में पडा हुआ था, जिसकी उसे रात दिन चिन्ता थी उस चिन्तनीय अवस्था का स्पष्टीकरण करने के लिये ईश्वर कृपा से आज उसे अवसर प्राप्त हो गया।

पुनः हाथ जोड़ कर गुरुदेव से पूछने लगा :—"भगवन्, मैं कौन हूँ? जड़ हूँ या चेतन? सत्य या असत्य हूँ? अविनासी हूँ या नाशवान? कौनसा हूँ? जीव हूँ या शिव हूँ? आत्मा हूँ या परमात्मा हूँ?" ऐसा कहते कहते जलेशने गुरुदेव के चरणों में सिर टेक दिया।

गुरुदेव जलेश को उठाते हुये कहने लगे :—
" वत्स, वास्तव में सब कुछ तू ही है।

'वासुदेवः सर्वमिति', 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म'

*** ॐ सच्चिदानंदब्रह्म की व्याख्या ***

जड़ चेतन, नाम रूप, सच्चिदानन्दस्वरूप सभी तू ही है। तेरे सत्यस्वरूप के लेशमात्र से " जड़-विश्व " सत्य प्रतीत हो रहा है। जैसे " मृगजल " प्रकाश के आश्रय से सत्य प्रतीत होता है परन्तु समीप जाने से निराकरण से मिथ्या हो जाता है, ऐसे ही वैराग्य " विवेकवान " बुद्धि से :—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।'

की प्रतीति हो जाती है।

" सर्वं खलु इदं ब्रह्म " अर्थात् यह सारा संसार अखिल ब्रह्माण्ड ही ब्रह्मस्वरूप है अन्य सभी मिथ्या है।

जैसे सुवर्ण के तरह तरह के जेवर बना (गढ़) दिये जाते हैं और उनके भिन्न भिन्न नाम रख लिये जाते हैं, एवं रुई के सूत्र के द्वारा तरह तरह के रंगबिरंगे वस्त्र बनाये जाते हैं, जैसा मन चाहे वैसे सिलवाये जाते हैं और इसी तरह

कुम्हार एक ही मिट्टी के विभिन्न घड़े बर्तन बना लेता है। परन्तु हैं वे सभी अपने वास्तविक स्वरूप सोना, रुई, मिट्टी में ही। उन तमाम चीज़ों का बनावटी स्वरूप नाशवान है, किन्तु वास्तविक उनका बीजस्वरूप नाशवान नहीं है।

इसी प्रकार संसार के रूप, रंग, आकार, विकार सभी विभिन्न हैं, किन्तु सभी उसी परब्रह्म के आश्रय पर स्थित हैं और वे सब कुछ ब्रह्म-स्वरूप ही हैं।

इसलिये वत्स, "सत्" की सत्यता सर्वत्र है, उसके बिना संसार की कोई भी वस्तु, पदार्थ, प्राणी अगण्य है।

और "चित्त"। चेतना तथा क्रिया का नाम ही चित्त है। इस चेतना के बिना देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कोई भी क्रियावान देखने में नहीं आता है।

यदि देखने में आता है तो जड़ वर्ग भी क्रियावान हो जाना चाहिये था।

जैसे लोह, सोना, मिट्टी, धातु, वस्त्र आदि जड़ वर्गों में कोई प्रकार क्रिया प्रतीति नहीं होती। प्राणिमात्र का शरीर तो चेतन की चेतता पाकर ही क्रियावान प्रतीत होता है।

अब रहा "आनन्द"। सो उसके बारे में भी सुन।

ब्रह्म परमात्मा आनन्द का स्वरूप है, केन्द्र है, रासि है, वह जो ब्रह्म है सहज सुखरासि है। जो जो जड़ या चेतन में आनन्द देखा या सुना जाता है या अनुभव में आता है, वही सुख है और उसीका नाम "आनन्द" है; वही सुख ब्रह्मानन्द का लेस मात्र है। (लेस अंश को कहते है) जैसे सूर्य की किरणें झरोंखे के रास्ते मकान के अन्दर जाकर प्रकाश करती हैं वही किरणें सूर्य की लेस (अंश) मात्र हैं। यों समझों कि सूर्यरूपी ब्रह्म का आनन्द, किरणरूपी लेस लेकर सर्व जड़ चेतन सुख का अनुभव करते हैं। ब्रह्म की सत्यता सभी जड़ चेतन में बराबर प्रतीत होती है।

क्रिया और आनन्द क्रियावान के संसर्ग से प्रतीत होता है, जैसे राजा की धर्मनीति का आनन्द प्रजा को होता है, तो आज्ञापालन, शीलस्वभावादिक का आनन्द राजा को होता है। इसी प्रकार संसार भर के समस्त सुखोंका केंद्र आत्मा ही है।

जलेश ने 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' के तात्पर्य को समझ कर गुरदेवजी से कहा :—"भगवन्, आप

के अमृतरूपी वचनों से निश्चय हुआ कि "सत्" की प्रतीति, "क्रिया की प्रतीति और "सुख" की प्रतीति शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म के लेशमात्र से ही हो रही है।

अब आप कृपा करके "मोहित जीवों" का वर्णन समझा दीजिये कि, किस कारण से जीव मूढ गति (वृत्ति) को धारण करके निन्दनीय कर्म करता रहता है। जैसे बालहत्या, स्त्रीहत्या, गोहत्या, इत्यादिक तथा बलात्कार और स्त्री, पशु, धन अपहरण आदि सभी निन्दनीय पापकर्म हैं, ऐसे लोकमर्यादा से रहित निन्दनीय कर्म जीव क्यों कर बैठता है ?"

गुरुदेव जलेश की प्रखर बुद्धि पर बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्नता से बोले :—"वत्स, सुनो, सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों में से तीसरा गुण जो तम है वह अज्ञान में डालनेवाला है। जो जो इस तमोगुण के बस में है उनका विवेक विचार-रूपी प्रकाश नष्ट हुआ रहता है। इसीलिये वे सत्य, असत्य, धर्म, अधर्म आदि भलीबुरी वस्तु नहीं पहिचान सकते हैं; जसे अन्धेरे में आदमी को श्वेत, रक्त, पीत वर्ण का कुछ भान नहीं हो पाता है। वह केवल उस अन्धेर के ही कारण पहिचान नहीं हो पाता।

ऐसे ही विवेकरहित मोहित जीव मूढ—अज्ञान-रूपी अन्धःकार के कारण निन्दनीय और प्रशंसनीय कुछ नहीं पहिचान पाता। जिससे कि वह मूढ जीव निन्दनीय कर्म करता है। भगवान् कहते हैं :—

'न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

— गीता अ. ७, श्लोक १५

माया से जिनका विवेकज्ञान नष्ट हो गया है, जो आसुरी संपत्ति के पीछे लगे हैं, ऐसे दुराचारी मूढ, अधम लोक मेरी उपासना नहीं करते ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् । "

— गीता अ. १६, श्लोक २०

हे अर्जुन, वे मूढ पुरुष मुझे प्राप्त न होते, अनेक जन्म आसुरी योनी प्राप्त कर उससे भी अधिक अधम योनी में जाते हैं अर्थात् घोर नरक में पडते हैं।

जलेश को आज खुलम खुला समय मिला हुआ था, वह चाहे जितना पूछे निःशंक पूछ सकता था। फिर पूछने लगा :—" भगवन्, यह अज्ञान-अन्धःकार में रखनेवाला तथा मोह माया को

विस्तृत करनेवाला माया का तमोगुणरूप अन्धःकार कैसे दूर हो सकता है ? ”

गुरुदेवजीने कहा, “ बेटा, भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :—

‘ मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । ’

— गीता, अ. ७, श्लोक १४

अर्थात् भगवान् भक्तवत्सल की शरण लेने से माया मोह का जाल स्वतः छूट जाता है। और उसके छूट जाने से ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानान्धःकार आप ही नाश हो जाता है। बस, फिर वह प्राणी

‘ जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते । ’

— गीता, अ. १४, श्लोक २९

जन्म, जरा, मृत्यु, दुःख आदिसे मुक्त होकर उस सच्चिदानन्द परब्रह्म में आनन्दरूपी अमृतरस का आस्वादन करता है।

यों समझ लीजिए जैसे सूर्य के प्रकाश से रात्र्यान्धःकार स्वतः ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार श्रद्धा-विश्वाससे भक्ति, आराधना, नाम जप करने से सभी दुष्कर्मरूपी अन्धःकार नष्ट हो जाता है।

फिर वह ज्ञानी पुरुष, आत्मदर्शी आत्माभ्यासी सदा मुक्तस्वरूप ही है।

निष्काम भक्ति से अन्तःकरण शुद्ध होता है। और अन्तःकरण शुद्ध हो जानेसे आत्मज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान प्राप्त हो जानेसे वह पुरुष समदर्शी, समभावी, समज्ञानी, सदुपदेशवान हो जाता है।

बस, समदर्शी ही मुक्त कहलाता है। भगवान् श्रीकृष्ण भी गीता में अर्जुन को कहते हैं कि —

'आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्याति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।'

— गीता, अ. ६, श्लोक ३२

अर्थात्, जो योगी अपनी सादृश्यतासे सम्पूर्ण भूतों में समता देखता है, और सभी सुखदुःख में समत्व देखता है वह योगी परमश्रेष्ठ है। वही विचारवान् योगी समदर्शी कहलाता है। और समदर्शिता ही मुक्ति का मार्ग है।"

जलेश की तृप्ति बढ़ती ही जा रही है। फिर कहता है :—"भगवन्, आपके महान् उपदेशामृत से महान् लाभ, अप्रमेय लाभ, सीमारहित लाभ, सर्वप्रकार प्राण और जीवन का लाभ आज ही उपलब्ध हुआ।

' ब्रह्मरूप है ब्रह्मविद, जाकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रमच्छेद ॥ '

— विचारसागर

भगवन्, आप धृति, कृति और शान्ति के उपद्रष्टा हैं । भगवद्भक्ति आत्मज्ञानरूपी धन की आप रासी हैं । आपके वचनामृत का पान मेरे श्रवणपुट निरन्तर करना ही चाहते हैं । देवता लोग जिस अमृतपान से अमर हुए उससे भी अनन्त गुण अमर पद देनेवाला आपका वचनामृत है ।

सो भगवन, अब यह बतानें की कृपा करें कि परमात्मा को कौन प्रिय है, प्रियतर है तथा कौन प्रियतम है । गृहस्थ है या विरक्त ?

जड़ चेतन जो नाना जीव पदार्थ हैं उनमें कौन माया का है, कौन परमात्मा का है तथा कौन मुक्त है ? कौन बद्ध है ? "

गुरुदेव भी उत्तर देने में ही जलेश का कल्याण समझ रहे थे और बोले :—" वत्स, भक्तिप्रियो माधवः । अर्थात्, देवता, दानव, सुर, नर, मुनि, पशु, पक्षी आदि जो जो परमात्मा परायण हैं वे सभी प्रिय भक्त ब्रह्मस्वरूप हैं । गृहस्थजन ' गृही ' कहलाते हैं । गृह नाम है " गाँठ " का, जिस गृहस्थी का मन प्रभु से " गँठ गया " (लग-

जुड़) प्रभुचरणों में लीन हो गया तथा जिसने सद्धर्म, विवेक, दया आदि सद्गुणों का संचय किया है वही परमात्मा का प्यारा है।

विरक्त नाम प्रपञ्चरहित का है। जो साधु या पुरुष संसार के प्रपञ्चों से रहित है वही विरक्त है, और जिन जिन साधुओंने विवेक, वैराग्य, सम, दम, उपरति, समाधान, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है वे साधु मुक्त हैं। इस मुक्ति के अधिकारी गृहस्थी और विरक्त दोनों हैं। साधना दोनों की भिन्न भिन्न है।

जैसे गृहस्थी की " भावमयी " साधना में " दासोऽहम् ", " शरणागतोऽहम् " आदि शब्दों का प्रयोग होता है और " सोऽहम् ", " एकोऽहम् " ये शब्द भाव विरक्त के उच्चारण के हैं। दोनों ही सतपथ के गामी हैं। " गुरुदेवने कहा, " वत्स, और आगे पूछो, मुझे भी तुम्हारे पूछने में आनन्द आ रहा है। "

जलेशने सोचा आज के दिन का पता ही नहीं चला। रात्री भी अधिक व्यतित हो चली है। अब जलेश से कुछ कहता नहीं बना, चुप हो गया।

गुरुदेव आत्मज्ञानी अन्तर्यामी थे। जलेश के भावों को समझ गये। आगे न पूछ कर शयनगृह

में सो गये। सेवक लोग चरणसेवा करने लगे। जलेश एकान्त में गुरुदेव के वचनों का मनन करने लगा। उस समय के भाव जलेश के इन कविताओं से स्पष्ट हो जाते हैं।

५ (शब्द, राग पुरबी)

गुरु दरियाव नहाना हो,
जाके दुरलभ भाग ॥ टेक० ॥
इंगला पिंगला चबर डोलावे,
सुख मन मग चलि जाना हो ॥
जनम जनम के काई मल लगले,
पैठत सब कटि जाना हो ॥
शारदाराम चेत सुचेत हो के,
ज्योत में ज्योति समाना हो ॥

६ (शब्द, राग पुरबी)

गुरु सागर चलि आना हो,
जा की बहुत कमाई ॥ टेक० ॥
गैबी गुरु गैब दर्शावत,
साजन मीत कुटुम्ब तराना हो ॥
पतितपावन सद्गुरु करि दीना,
यह अचरज अनेक परमाना हो ॥
शारदाराम हटकि मन रोकहु,
बहुरि जनम नहीं आना हो ॥

७ (शब्द, राग पुरबी)

सद्गुरु सत्यसरोवर दर्शना हो ॥ टेक० ॥
हमहूँ सुनत हैं दरसत उसीको,
जो तन मन दे कुरबाना हो ॥
सत्यसरोवर मंजन करिके,
लहिहो पद निर्वाना हो ॥
शारदाराम पूरण मन मन्शा,
सद्गुरु भये मेहरबाना हो ॥

— निर्गुण रामायण

* गुरुदीक्षा *

रात्री व्यतीत हुई, गुरुदेव सर्वश्री १०८ बाबा मौंजीरामजी अपने प्रातः नित्य नैमित्तिक क्रिया से निवृत्त होकर "धनछुला" (एक गाँव का नाम है) जाने लगे। जलेश भी पीछे हो लिया। गुरुदेव के साथ जलेश धनछुला पहुँचा जहाँ गुरुदेवजी के शिष्य श्री अलखरामजी उदासी का स्थान था (वर्तमान में उन्होंने उस स्थान को छोड़ दिया है) वहाँ पहुँचकर सम्वत् १९६४ कार्तिक महीने की पौर्णमासी तिथी के शुभ मुहूर्त में गुरुदेवने जलेश को भगवत् चिन्ह उदासीन भेष की दीक्षा दी।

जलेश का जन्म भी कार्तिक शुक्ल पक्ष

एकादशी तिथी को था; इस समय जलेशके अठारह वर्ष पूर्ण हो रहे थे। अब वह पूर्ण रूप से उस परब्रह्म की खोज़ में लग गया जिसके लिये उसकी भटकना थी।

*** नामकर्म ***

जिस दिन जलेश को उदासीन चतुर्थ आश्रम की दीक्षा मिली उस दिन बाबा अलखरामजीने विशेष रूपसे भण्डारा किया। उस भण्डारे में बहुत से साधु सन्त महात्मा लोग पधारे हुए थे।

अयोध्यापुरी से आजा गुरु बाबा सुद्धरामजी भी इस उत्सव पर आये हुए थे। इसलिये बाबाजी के ही श्रीमुख से जलेश का नामकरण संस्कार "शारदाराम उदासीन" रखा गया जो सर्वसम्मत से प्रिय नाम था।

*** मंत्रोपदेश ***

तत्पश्चात् पूज्यपाद गुरुदेव श्री मौजीरामजी महाराजने अपने प्रिय शिष्य शारदाराम को मन्त्रोपदेश दिये।

(१) "ॐ नमः शिवाय" शिवजी का मूल मंत्र।

(२) ॐ ब्रह्म सोऽहं जाप, शुद्ध ब्रह्म आतम आप,
आदिगुरु हँसावतार आतममेधावी सनत्कुमार,
ॐ सत् नाम श्रुत, नामजप जीवनमुक्त।

फिर गुरुदेवजीने कहा—"वत्स, यह मंत्र उदासीन – आदि – आचार्य – हँसावतारसे ही उदासीनों को मिला है।"

*** मंत्र दूसरा ***

(३) एक ॐ सत्नाम, कर्ता पुरुष, निर्भौ, निर्वैर, अकाल मूरत, अजोनीसै भं, गुरुप्रसाद जप, आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच ॥

गुरु नानकदेवजीने यह मंत्र गुरु श्रीचन्द्रजी तथा गुरु अंगदजी को दिया।

*** मंत्र तीसरा ***

(४) "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।"

यह श्री विष्णुजी का मंत्र नारदजीने ध्रवजी को दिया।

*** मंत्र चौथा ***

(५) "ॐ रं रामायनमः" श्री रामचन्द्रजीका मंत्र।
(६) "ॐ क्लीं कृष्णाय", श्री कृष्णजीका मंत्र।
(७) "ॐ श्रीं, ह्रीं, लँ, सूँ, द्रीं, बालायै नमः", दुर्गाजी का मंत्र। इत्यादि मंत्र गुरुदेवजीने दिये।

मंत्रोपदेश करने के बाद गुरुदेवजी शिष्य शारदाराम को सेवकों से मिलाते हुए, कहीं कहीं

५-७ दिन ठहरकर एक डेढ़ महीने के बाद पौष मास में अपने स्थान "कर्णपुर इटौरा" में ले गये। वहीं आपने अनेक धर्मशास्त्र, ग्रन्थसाहब, सुखमुनि तथा वेदवेदान्त उपनिषदों के तत्त्व-भेद बताये।

* कर्णपुर इटौरा में *

महात्मा श्री शारदारामजी महाराज अब पूर्ण रूप से उदासी साधु हो गये। आपके मनकी वास्तविक शान्ति आज गुरुदेवजी के चरणों में पहुँच कर हुई। मन की भटकना जिस अनायास अनाधारपर अपनें आपको तृषित कर रही थी वह आज शान्त और आनन्द का आश्रय पा चुकी है।

गुरुदेव उदासीन भेष का चिन्ह देकर उपदेशामृत से उसे सींचने लगे। श्री श्री १०८ गुरुदेवजी एकान्त स्थान पर अपने प्रिय शिष्य शारदारामजी को कहने लगे :—

"वत्स, आज से तुम्हारा नाम शारदाराम उदासीन है। लोकव्यवहार सिद्धि के लिये तथा लोक परलोक सिद्धि के लिये तथा जनहितार्थ तुम्हारा नाम शारदाराम उदासीन है। और जितने भी उदासीनजन साधु होंगे उन्हे तुम भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला जानना।

वर्ण तुम्हारा शुक्ल है और मुक्तिदाता

सतोगुण स्वरूप है। गोत्र तुम्हारा अच्युत है। (जो अक्षय सदा एक रस अविनाशी पूरण ब्रह्म है वही अच्युत है।) जप तुम्हारा सोऽहम् है, जिसको जीवात्मा अहर्निश (रात दिन) जपता रहता है। (इसीका नाम अजपा जाप है।) मठ तुम्हारा निराश है, तथा बनस्पति मूल मठ है। ज्ञान तुम्हारा क्षेत्र है। भोजन ब्रह्मज्ञान तथा भाव है। वस्त्र तुम्हारा ब्रह्म चोला है। रुन झुन नाद ही माला है। विष्णु भगवान् उपास्य हैं। (जो कि भक्तों के सदा रक्षक हैं।) इष्ट लक्ष्मीजी हैं। लक्ष्मीजी ही आत्मारूप से ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। शिवसुखस्वरूप सर्व अविनाशी सर्वांग विभूतिरूप है। सब जीवोंके अधिष्ठान शिव हैं। माता पार्वतीजी हैं।

जैसे माताएँ बच्चों को पालनपोषण कर प्रौढ करती हैं वैसे ही माता पार्वतीजी अपने भक्तों को तथा भगवत्भक्तों को विवेकवैराग्य मुक्तिरूपी फल देकर प्रौढ बनाती हैं।

जत तुम्हारा लंगोटा है। अलख तुम्हारी झोली है। खलक ही खजाना है। ध्यान तुम्हारा ब्रह्म बटुआ है। जटा जूट ब्रह्म में प्रेम तथा ब्रह्म को जानना है। अखण्ड ब्रह्म जनेऊ है। तिलक संसार में यश कमाना है।"

आदि आदि तरह तरह के उपदेश गुरुदेवजीने

दियें। अन्त में बोले कि, "अन्तरंग यह सब साधन तुम्हारा है तथा परम गोपनीय धन है।"

गुरुभक्त श्री शारदारामजीने कहा कि:—

"धन गुरुदेव ज्ञान के दाते
ना ना नेत वेद यश गाते।
गुरु ईश्वर गुरु गोरख ब्रह्मा
गुरु पार्वती माई।

— श्रीगुरु नानक

ईश्वर से गुरु में अधिक, धारे भक्ति सुजान,
बिनु गुरु भक्ति प्रवीण हू लहे न आतम ज्ञान।"

— विचारसागर

इसके बाद श्री गुरुदेवजीने प्रसन्नता के साथ सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया कि:—

"तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो"
"शिवास्ते पन्थानः सन्तु"

ॐ आजा गुरु की सेवा में ॐ

कर्णपुर इटौरा गुरुजी के स्थान पर पाँच बर्ष तक रह कर बाबा श्री शारदारामजीने बहुत से साधुसम्प्रदायों के मंत्रों का संग्रह किया; तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के रहस्यों को श्री गुरुदेवजी के मुखारविन्द से सुनते रहे।

कुछ समय पश्चात् आजा गुरुजीने श्री गुरुदेवजी को आज्ञा दी कि, "शारदाराम" को कुछ दिन के लिये हमारी सेवा में भेज दीजिये।"

गुरुदेवजीने बड़ी प्रसन्नता से कहा :— "महाराज, यह सब कुछ मकान, आश्रम, सेवक, शिष्य आप ही के हैं। शारदाराम का बड़ा सौभाग्य है कि आप कृपा करके उसे सेवा का मौका दे रहे हैं।"

श्री गुरुदेव बाबा मौजीरामजीने प्रसन्न चित्त से प्रिय शिष्य शारदारामजी के सिर पर हाथ रखकर आज्ञा दी कि :—"बेटा, सुखी रहो। जाओ गुरुदेवजी की सेवा में चले जाओ। आज्ञा का पालन अच्छी प्रकार करते रहना। इतना कह सुनकर, बाबा शारदारामजी श्री आजा-गुरुजी की सेवा में अयोध्या (अजुध्याजी) उपास्थित हुए। सेवा में रहते हुए अपने योगाभ्यास को बढ़ाते रहते थे।

* साधुओं की कल्पना *

कोई कोई साधुजन आपकी साधुवृत्ति देख कर हँसते रहते थे; कहते रहते थे कि :—"बामन छत्रियों का काम एक वैश्यवर्णी कोइरी का बालक कर रहा है।" उन्हीं साधुओं में से कोई कोई कह उठते थे कि:—

'जातपात पूछे नहिं कोई
हरि को भजे सो हरि का होई।'

"भक्तमाल" तथा उपनिषद् आदि धर्म-ग्रन्थों में सभी तरह के भक्तों के चरित्र मिलते हैं। भगवान भक्ति से प्रसन्न होते हैं चाहे कोई कर ले, भगवान् की दृष्टि में सभी भक्त एक है। भक्तिप्रियो माधवः अर्थात् भगवान् तो भक्तिप्रिय हैं, चाहे स्त्री हो या पुरुष, नीच हो या ऊंच, जिसने भगवत् भक्ति का रस पी लिया वही मुक्त हो गया। आदि।

बाबा शारदारामजी तो शान्त स्वभाव के थे। उपरोक्त बातों से आपके मन में कोई विक्षेप नहीं आता था। आप जो सेवा आजा गुरु जी की करते रहे वह यही थी कि उनकी शरीरादिक क्रिया करवा देना। जैसे :—स्नान करवा देना, वस्त्र, लंगोटा धो देना तथा भांग "सरधाइ" वगैरह समय समय पर नियमित सुबह शाम पिला देना। जमात सेवकों में जाती थी तब वस्तुओं की देख-भाल करते रहना तथा करवाना। इस प्रकार श्री आजा गुरुजी की सेवा में तीन वर्ष तक रहे।

यात्रा प्रकरण

(४)

मंत्र

" ॐ ब्रह्म सोहं जाप ।
शुद्ध ब्रह्म आतम आप ।
आदि गुरु हँसावतार ।
आतममेधावी सनत्कुमार ।
ॐ सत्नाम श्रुत ।
नामजप जीवन्मुक्त ॥ "

प्रथम यात्रा

३ वर्ष के बाद आजा गुरु बाबा श्री सुद्धरामजी से आज्ञा लेकर बाबा श्री शारदारामजीने तीर्थादिक पर्यटन के लिये प्रस्थान किये ।

आपका स्वभाव बहुत शान्त होने के कारण आप ग्रामीण वस्ती में जाने में हिचकते थे, और फिर आपको तो अब आत्मसाधन की धुन लगी हुई थी । इसलिये आप तीर्थादिक भ्रमण के समय यदि कहीं बस्ती के समीप ही रात्री हो गयी तो भी आप स्मशान या जंगल, या उदासीन

मठों में ही ठहरते थे। यह आपका स्वाभाविक नियम था।

आप कभी कभी तो स्मशान तथा निर्जन पहाड़ों में छः छः महीने ठहर जाते थे। कहीं आप वर्ष भी बिता देते रहे। ईश्वरकृपा और गुरुदेव की छत्रछायात्मक आशीर्वाद से आपका योगक्षेम परिपूर्ण हुआ करता था, इसमें प्रारब्ध भी साथ देता था।

✻ उत्तरभूमि की यात्रा ✻

आप सर्व प्रथम उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी तीर्थों का भ्रमण करते हुए, हरिहरक्षेत्र काशी विश्वनाथजी के दर्शनों में पहुँचे। फिर चित्रकूट प्रयागराज होते हुए उज्जैन कुम्भ के मेले पर जाकर आपने महांकालेश्वरजी के दर्शन किये। आप उज्जैन में बडे आखाडे में ठहरे रहे और कडा प्रसाद का भोग लगवाये तथा सरधाई का बर्तावा किये। अनाश्रुती जो आपके सामने भेटा होता था उसका इस रीतीसे संतोंके सेवामें विनियोग करते रहे।

उज्जैन से मथुरा, वृन्दाबन, हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मणझूला की यात्रा में पहुँचे।

उस समय आप विशेष त्यागमय जीवन से ही समय का निर्वाह करते थे। यहाँ तक कि आप केवल लंगोट, कमण्डलु के सिवाय अन्य वस्त्र या सामान का बोझा उठाना ही झूठा प्रपञ्च समझते थे।

जहाँ जहाँ आप पधारते थे, दर्शकगणों को दर्शनों से कृतार्थ करते रहे और सत्संग हरि-कथामृतपान से समाज को तृप्त करते रहे।

अधिकतर आप उदासीन आश्रमों में ही ठहरा करते थे।

इस तरह घूमते फिरते लक्ष्मणझूला से जब आप गुरुधाम में लौट आये तो फिर आपका विचार शिवरात्री पर नेपाल पशुपतिनाथजी के दर्शनार्थ जाने का हुआ।

लखनऊ गोरखपुर होते हुए नेपाल पशुपति-नाथजी के दर्शनों में पहुँचे। शिवरात्री को पशुपतिजी के दर्शनामृत का पान किये। पुनः वहाँ से पटना साहेब को चले गये। वहाँ से कलकत्ता श्री कालीमाता के दर्शन करके आपने दक्षिण भारत के तीर्थों का प्रस्थान करने का संकल्प किया।

* दक्षिण भारत का भ्रमण *

आपने उत्तरभूमि की यात्रा समाप्त करके

दक्षिण भूमि की यात्रा का संकल्प किया। सर्व प्रथम, भ्रमण करते हुए आप श्री जगन्नाथपुरी आये और उदासीन मठ में ठहरे। यहाँ पर आप महीनों तक ठहर गये। यहाँ रहते हुए आप नित्य प्रति भगवान् का दर्शन सुबह शाम किया करते थे। श्री कृष्णचन्द्रजी तथा आदिशक्ति श्री सुभद्राजी, बलदाऊजी आदि के दर्शनों में आप समय व्यतीत करते रहते थे और कभी कभी समुद्रस्नान कर आते थे। भगवान् की मूर्तियों के सामने आप खडे हो कर स्तुती प्रार्थना किया करते थे। उस समय आप ऐसा समझते थे कि मानो भगवान के तरफ से आपको आशीर्वाद मिल रहा हो कि, "विजयी बनो"। "जगन्नाथपुरी और श्री सेतुबन्ध रामेश्वर ये तीर्थ भारत में प्रसिद्ध है"।

आप हमेशा चन्दन तलाई, नानक बावली, तथा समुद्र में स्नान किया करते थे। अठ्ठाईस वर्ष की अवस्था में आपने जगन्नाथपुरी से रामेश्वर दर्शनार्थ यात्रा की। आप कहीं कहीं पैदल ही चलते थे और कहीं कहीं रेल से जाते रहे।

कभी फाँके के दिन काटते थे तो कभी साधारण जलपान से ही सन्तुष्ट रहते थे। कभी कभी तो जनता आपके आगे पीछे फल फूल लेकर दौड़ पड़ती थी। कोई कहता था, "लो

महाराज, दो–चार फल खा लेना।" बस, इसी तरह आप घूमते फिरते गाँव, शहरों, तीर्थों को देखते हुए रेल द्वारा रामेश्वर पहुँचे। रेल से उतरते ही आपने उस पृथ्वी को प्रणाम किया जहाँ भगवान् उदासीन श्री रामचन्द्रजीने कुछ काल निवास किया और अपने हाथों से शिवलिंग की स्थापना की है। आप चार रोज वहाँ ठहरे। नित्यप्राति भगवान् शंकर के दर्शन किया करते थे और राम कुण्ड, लक्ष्मण कुण्ड, सुग्रीव कुण्ड, नलनील कुण्ड, हनुमान कुण्ड आदियों का दर्शन जलपान किया करते थे।

तथा उस भूमि की धूल उठा कर नेत्रों में, मुख में लगा लिया करते थे। उस समय आपको ऐसा मालूम होता था कि, मानो भगवान श्री रामचन्द्रजी आपके आँखों के सामने घूम रहे हैं। श्री रामचन्द्रजी के विरह चिन्तन में आप मस्त बन कर घूमा फिरा करते थे। उदासीन आश्रम में आप रात्री को निवास किया करते थे। श्रीरामेश्वरजी के दर्शनार्थ आप आठ नऊ बजे रात को भी जाया करते थे। सुबह पण्डा से गंगाजल लेकर आप शिवलिंग पर चढाया करते थे।

उस पवित्र स्थान पर भगवान श्री रामचन्द्रजी के हाथों शिवलिंग की स्थापना हुई थी।

सो उस भूमि का दर्शन बड़ा अद्भुत दर्शनीय है। वहाँ पर अनेकों शिवलिंग स्थापित हैं। जैसे एक तो भगवान् रामचन्द्रजीने स्वतः स्थापित किया, दूसरा हनुमानजी द्वारा काशीजी से लाया गया स्थापित है, तीसरा देवताओं द्वारा स्थापित है और भक्तों के द्वारा तो कितने ही शिवलिंग स्थापित हैं, सभी दर्शनीय हैं।

✳ तीर्थ पण्डाओं का सन्देह निवारण ✳

एक बार आप दर्शन करके आ रहे थे तो पण्डाजन चकित चित्त से आपको देखने लगे। क्योंकि आपके सारे अंग में विभूति रमी हुई थी। शिर में जटा शोभा दे रही थी, कटि में मृगछाला बन्धी थी, हाथों में फरसा सुशोभित था। कलाई (हाथ) में सुमिरिनी माला, बाँएँ हाथ में बभूति भरा कमण्डलु था, पैर में खडाऊ आदि साधु चिन्ह भरपूर थे।

मन्दिर के द्वार से निकल कर धर्मशाला के सामने आते ही एक साधुने "लक्ष्मणदास" करके आपको बुलाकर धर्मशाला में ले गया। वहाँ मृगछाला का आसन लगा कर आपको बिठा दिया। सत्संग की बातें साधुजनों से होने लगीं, इतने में ही १०-१२ पण्डेजन धर्मशाला में आ कर साधुओं के सामने बैठ गये।

समय पाकर उन लोगोंने आपसे प्रश्न किया कि, —" महाराज, विश्वरचना प्रकृति–पुरुष से हुई है या केवल एक पुरुष के द्वारा हुई है। या एक प्रकृति के द्वारा हुई है। अथवा प्रकृति, पुरुष, जीव, इन तीनों के द्वारा हुई है। आप कृपा करके यथार्थ समझाकर हमारे सन्देह को दूर कर दीजिए।"

बाबा शारदारामजी महाराज हँसते हुए कहने लगे कि :—" भूदेव, आप लोग सर्वज्ञ हैं, सर्व पूज्यमान हैं। आपका यह जो प्रश्न है वह सभी जीवों के कल्याणार्थ है, आप स्वयं सभी कुछ जानते ही हैं। फिर भी साधुस्वभाव तथा गुरुकृपा से जो हमें प्राप्त है वह कहते हैं। कहने सुनने से जीवों को लाभ ही होगा सो ध्यानपूर्वक सुनने की चेष्टा करना।

उपदेश :—

" एकोऽहम् बहु प्रजायते "

अर्थात्—उस ज्योतिस्वरूप परमात्माने सत्य-संकल्प किया कि 'मैं एक हूँ पर अनेक रूपों से उत्पन्न हो जाऊँ।' वह परमात्मा अपने शुद्ध संकल्प के द्वारा अनेक रूपों में हो गया। जैसे भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन की इच्छा से अपना विराट रूप क्षण में ही दिखा दिया।

उनके उस विराट रूप में संसार के सभी

प्राणीमात्र, देवता दानव, ऋषि मुनि, नक्षत्र मण्डल आदि सभी कुछ अर्जुनने देखा। इससे भी पहिले भगवान्‌ने यशोदामय्या को अपने मुँह में ही अखिल ब्रह्माण्ड दिखा दिया था। इसी प्रकार माता कुन्ती और भीष्म पितामह को भी भगवानने विराट स्वरूप दिखाया था। दुर्योधन को भी विराट स्वरूप प्रभुने दिखाया किन्तु उसकी आसुरी प्रवृत्ति होने से उसे भगवान् के स्वरूप का बोध नहीं हो सका। इसी तरह नास्तिक मतवालों को भी भगवान् का बोध होना असम्भव है।

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरऽव्यक्तमेवच।
इंद्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥
इच्छा द्वेष सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥

— गीता, अ. १३, श्लोक ५—६

अर्थ — और हे अर्जुन, वही मैं तेरे लिये कहता हूँ कि पांच महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का सूक्ष्मभाव, अहंकार, बुद्धि और मूलप्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया भी तथा दश इंद्रियाँ अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा, एक मन और पाँच इंद्रियोंके विषय अर्थात् शब्द,

स्पर्श, रूप, रस और गंध तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और स्थूल देहका पिंड एवं चेतनता और धृति, इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप से कहा गया।

अब आप यों समझिये कि, प्रथम महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ, उससे आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, उससे जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, उससे अन्न और अन्न से मनुष्यादिक प्राणियों की रचना तथा समस्त विश्व की रचना इस प्रकार हुई है। परमात्मा ज्योतिस्वरूप जीव रूप से सब में समाया है जैसे महाआकाश घटमठादिक अनेक उपाधियोंमें समाया है :—

जैसेः—

ब्रह्म यह सारा खेल रचाई,
कहिं राम कहिं जीव कहाई,
ज्यौं स्वाँगी नाना स्वाँग बनाई,
ब्रह्म रचना रच आप समाई।

— निर्गुण रामायण

अर्थात् जैसे एक ही स्वाँग रचनेवाला पुरुष अनेक रूप में प्रतीत होता है तैसे ही सारा विश्व एक ही परमात्माने रचकर उसीमें समाया हुआ है।" इस गम्भीर उक्ति को सुनकर पण्डा लोग

कृतार्थ हो गये; बार बार "धन्य है, धन्य है" कहने लगे और आपकी जयजयकार करने लग गये।

उनमें से श्री शुकदेव पण्डाजीने प्रश्न किया कि, "महाराज, मुक्ति-प्राप्ति का भी कुछ उपदेश करने की कृपा करें।"

आपने उत्तर देते हुए यह चौपाई पढ़ी :—

"रामभक्ति सोइ मुक्ति गोसाईं
अनइच्छित आवे बरियाईं ॥"

— तुलसीदासजी

अर्थात् भगवान के लिये प्रेम भक्ति परम प्रिय है, इसीलिये भक्त लोग सदा भक्ति करके मुक्त होते आये हैं।

और फिर इस तरह समझिये :—

दोहा

१. अहं ब्रंह्म वृत्ति बढ़ रही,
दुष्मन दलन का साज।
कटक जहाँ तह नस गये,
जीव राम सनाथ भये आज।

— निर्गुण रामायण

और भी :—

२. सत् चित् आनन्द रूप तू,
अज अविनाशी आह।
ज्यों स्पटीक पुष्प संग,
लाली भासत ताह॥

— निर्गुण रामायण

भावार्थ यह है कि ब्रह्म की कटक (सेना) और माया की सेना में परस्पर युद्ध हो रहा है। ब्रह्म की सेना विजयी होगी तो जीव मुक्त माना जाता है।

और यदि माया की सेना विजयी होगी तो चौरासी लाख योनियों से छूटना दुस्तर होगा। ब्रह्म की सेना का स्वरूप है सत्य, सन्तोषमय विचार, सत्संग, सम–दम, श्रद्धा, समाधान, उपरती, तितीक्षा तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि। इन साधनों से परिपक्व होकर आत्मा का साक्षात्कार होता है और फिर जीव मुक्त हो जाता है। जैसे लाल, पीले रंगों की समीपता से दर्पण में भी लाल पीला रंग भास होता है, वास्तव में दर्पण तो शुद्ध सफेद है, उसमें वे रंग वास्तव में नहीं हैं। इसी प्रकार जीवात्मा में संसार की प्रतीति हो रही है। वास्तव में आत्मा सदा मुक्त ही है, इत्यादि।

इसके बाद सभी पण्डा लोग आपके उपदेशामृत से तृप्त होकर दण्डवत्-प्रणाम करके चले गये।

आप वहाँसे चौथे दिन फिर से सभी मन्दिरों में जाकर दर्शन करके, स्टेशन पर पहुँचे। गाडी में बैठते हुए उस भूमिको प्रणाम करके, रेल यात्रा से मदुरा आये। वहाँपर मीनाक्षीदेवी के दर्शन करके जनार्दन पद्मनाभ के दर्शन के लिये रामराज्य देश में (मलबार) चले गये। वहाँ कुछ दिन ठहरकर जनार्दन पद्मनाभजी के दर्शन करके १०-१५ दिन के अनन्तर मैसूर आ पहुँचे। वहाँसे बंगलोर आकर उदासीन मठ में कुछ दिन ठहरकर तत्रस्थ लोगों को दर्शन तथा सदुपदेश से कृतार्थ करते रहे। एक माह के बाद वहाँसे द्वारका यात्रा के निमित्त रमते फिरते पूना आ पहुँचे। यहाँपर श्री सोमनाथजी के मंदिर में तीन दिन तक ठहरे; चौथे दिन एक पूर्बी भैय्या आपको यरवडाके बाबा भारतीजी के आश्रम में दर्शनार्थ ले गया।

*** बाबा भारतीजी के मन्दिर से रामटेकड़ी दिखायी दी ***

वहाँसे श्री रामटेकड़ी स्थान स्पष्ट देखने में आता था। आपका मन इस टेकड़ी की ओर खिंचा। वर्षा के दिन थे। श्रावण का अधिक

मास (मल मास) था। सर्वत्र हरियाली का साम्राज्य और बादलों की छत्र-छाया थी। आप बाबा भारतीजी के आश्रम से जब इस रामटेकड़ी की ओर देखते थे तभी आपका मन लह लहा उठता था तथा प्रसन्न होता था।

आपको ऐसा प्रतीत होता था, मानो गाय हुँकार करके बछड़े को बुला रही हो या माता दोनों हाथ उठाकर बच्चे को गोद में उठाने को बुला रही हो। ऐसी दशा उस समय आपकी और श्री रामटेकड़ी की हो रही थी।

एक बार आप यरवडा से भ्रमणार्थ इस स्थान पर आये और घूम फिर कर सोमनाथजी के मन्दिर में ही चले गये। परन्तु शरीररूपी पतंग को प्रारब्धरूपी डोर से भगवदिच्छारूपी हाथ खिंच कर आपको इस टेकड़ी पर ले आये।

—

साधना प्रकरण

(५)

मंत्र

"ॐ ब्रह्म सोऽहं जाप
शुद्ध ब्रह्म आतम आप।
आदिगुरु हँसावतार
आतममेधावी सनत्कुमार।
ॐ सत् नाम श्रुत
नाम जप जीवनमुक्त॥"

* रामटेकड़ी पूना में आगमन *

सं. १९७७ में आप पूना रामटेकड़ी पहाड़ी पर पहुँचे। यह रामटेकड़ी वही परम पुण्य स्थान है जहाँपर त्रेतायुग में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पञ्चवटी नासिक आदि दण्डक बन में विचरते हुए आये थे, और कुछ समय के लिये ठहरे थे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के टिकने से ही इसका नाम राम-टेकड़ी पड़ गया, और वही प्रसिद्ध हो गया, जो नाम इस कलिकाल तक भी पूर्ववत् प्रचलित है। यहींसे भगवान् रामचन्द्रजीने लंका को प्रस्थान किया था।

तत्पश्चात् इसी कलियुग में उदासीनाचार्य जगद्गुरू श्रीचन्द्र मुनीजी इसी स्थान पर रहकर लोकहितार्थ उपदेश करते रहे।

फिर छत्रपति वीर शिवाजी के गुरु समर्थ स्वामी रामदासजीने इस स्थानपर रहकर तप साधन किया था और भगवान् श्री रामचन्द्रजी के दर्शन प्राप्त किये थे।

इनके बाद यह स्थान कीकर आदि कँटेले वृक्षों के साम्राज्य से छा गया।

पूना शहर से दो या ढाई मील की दूरी पर इस निर्जन स्थान में कोई नहीं पहुँच पाता था। परन्तु बाबा शारदारामजी तो निर्जन बन का ही आश्रय लेते थे। आप जब पूना में आये तो दूर से यह स्थान आपको दिखायी दिया, आपको ऐसा जान पड़ा कि जैसे यहीं आपके पूर्वजों का स्थान हो और यह स्थान टिकने के लिये आपको संकेत कर रहा हो।

आप जब इस टेकड़ी पर पहुँचे तो दैवयोग से आपको प्राचीन घटनाओं की स्मृति जागृत हुई। आपकी पवित्र आत्माने यह संकेत किया कि "शारदाराम, तुम अपने पूर्वजों की कीर्ति को उजागर करो।"

तपबिन तेज की कर बिस्तारा।
जलबिन रस की होय संसारा॥

— तुलसीदासजी

बस, आपके मन में वही ध्यान हो आया। आपने निश्चय किया कि इसी स्थान पर रहकर साधन किया जाय तो मनोरथ तथा परमार्थ साधन सफल होगा।

✳ दैवीशक्ति की प्रेरणा ✳

"विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥"

— गीता, अ. १८, श्लोक ५२

अर्थ :— हे अर्जुन, विशुद्ध बुद्धि से युक्त, एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करनेवाला तथा मिताहारी, जीते हुए मन, वाणी शरीरवाला और दृढ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष, निरंतर ध्यानयोग के परायण हुआ, सात्त्विक धारणा से अंतःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्याग कर और रागद्वेषों को नष्ट करके मेरी परा भक्ति को प्राप्त होता है।

"योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।"

— गीता, अ. ६, श्लोक १०

अर्थ :–इसलिये उचित है कि, जिस का मन और इंद्रियोंसहित शरिर जीता हुआ है, ऐसा वासनारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित हुआ निरंतर आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में लगावे।

आप इस धुन में विचार कर ही रहे थे कि आपकी सत्य आत्मा से ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कोई दैवी शक्ति आपको आग्रह कर रही है : "वत्स, तुम इसी स्थान पर निवास करो, तुम्हारी तपस्या यहाँपर सफल होगी। तुम अपने तपोबल से इस प्राचीन तपोभूमि का जीर्णोद्धार करो। इसमें पंचदेवों का मन्दिर बनाकर इसे 'उदासीनगढ़' नामसे विख्यात करो।"

बस, जिस बात को आपकी भावना चाहती थी वही आपके सन्मुख उपस्थित हुई।

जिस प्रकार तपोमय स्थान आप चाहते थे, अथवा अपने पूर्वजों से परम्परागत स्थान की आपको आवश्यकता थी वही स्थान आपको उपलब्ध हुआ।

* उस समय की रामटेकड़ी की व्यवस्था *

जिस समय आप इस स्थान पर आये उस समय इस स्थान पर कण्टककीर्ण वृक्ष–लताओं से पैर रखने को जगह नहीं थी, परन्तु आकर्षण अवश्य था।

आप एक जगह पर बैठ गये और प्रभुके ध्यान में मग्न हो गये। यदि इस स्थान पर कोई धूना या मठ-मन्दिर या कुटिया या गुफा होती तो आप शायद उसका भी आश्रय न लेते, परन्तु इस स्थान पर था ही कुछ नहीं सिवाय बिकट जंगल के। आप जब प्रभुके ध्यान में समाधिस्थ हुए तो दिनों बीत गये, न भूख, न नीन्द, न शीत, न उष्ण, आदि किसी प्रकार की वेदना आपके सामने नहीं आयी। १५ दिनमें जब आपका ध्यान टूटा तो देखते क्या हैं कि आपके चारों ओर भगवान् भोलेनाथ के आभूषण-सर्प-चक्कर काट रहे हैं। क्षण भर के उपरान्त आप फिर ध्यानस्थ हो गये।

* भगवत् प्रेरणा *

१५ दिनों के बाद निश्चय नहीं है कि आपको भगवत् प्रेरणा किस दिन हुई, किन्तु आपके समाधिस्थ अवस्था में कोई ज्योति आपके सामने चमक रही है और उसमें से आपके गुरुदेव कह रहे हैं कि, " शारदाराम, तू अभी अपने आपको मुक्त करना चाहता है जो कि इतना कठोर व्रत कर रहा है। वत्स, अभी तो तूने बहुत कुछ करना है। शनैः शनैः साधनों की क्रिया कर। "

आपकी समाधि टूटी तो सामने कोई भक्त हाथ जोड़ कर आँखें बंद कर बैठा हुआ है। वह था पटेल मारुती मगर महोदय, हड़पसर ग्राम, पूना निवासी।

* पटेल मारुती मगरजी से भेंट *

हड़पसर ग्राम रामटेकड़ी की उतराई पर एक मील पर बसी हुई है। इसी गाँव में श्री मारुती मगर महोदय रहते थे। यहाँ पटेल उन्हीं लोगों को कहते हैं जो खास ज़मींदार (लगान वसूल करनेवाले) होते हैं। इनका नियम था गाँव से दूर दूर तक भ्रमण करना, नयी नयी जगाओं को देखना। साथ ही वे सनातन धर्मी आस्तिक थे। सन्त–साधु, देवता आदियों पर श्रद्धा–विश्वास रखते थे।

एक दिन 'पटेलजी' अनायास भ्रमण करते हुए रामटेकड़ी झाडी में पहुँच गये। बाहर घूमने की अपेक्षा आपने अन्दर भ्रमण करना उचित समझा। झाडियों के बीच घुस कर अन्दर देखते क्या हैं कि कोई "फक्कड़" वहाँ बैठा हुआ है। "परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि मृतक आत्मा का ढाँचा समाधी में बिठाया हुआ हो। फिर पास ही पहुँचकर पटेलजी को पता चला कि कोई तपस्वी तप–साधन में बैठा हुआ है। पटेल महोदयने

अपने को धन्य समझा और उन्हीं के ध्यान में बैठ गया। सोचा कि शायद अभी कुछ देर से बैठे होंगे स्वामीजी ध्यान में। अभी ध्यान खोलने का समय हो ही रहा होगा परन्तु यह समाधि तो महिनों से चल रही थी। दैवी-प्रेरणा से ध्यान टूट पड़ा तो पटेल महोदय भी निहाल हो गये। पटेलजीने दण्डवत-प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "महाराज, क्या सेवा करूँ?"

परन्तु फक्कड़ तपस्वी को क्या चाहिये यह स्वयं तपस्वी के बस की बात नहीं थी; उनकी बाणी से निकला — "हरीच्छा।"

पटेल महोदय समझ गये कि ये माँगने फिरनेवाला साधु नहीं है। ये तो तपस्वी जान पड़ते हैं। मेरा सौभाग्य है जो कि आज मुझे दर्शन प्राप्त हुआ।

बस, अब क्या था, पटेलजी लग गये सेवा सुश्रूषा में; धूना जम गया, लक्कड़ आने लगे, भोजनादिक व्यवस्था होने लगी। किन्तु आप इस सांसारिक लौकिक व्यवस्था में आसक्त नहीं हुए। केवल यह विचार मन में जागृत होता रहा कि, इस स्थान को 'उदासीन गढ़' नामसे जब गुरू परमात्मा की कृपा होगी तब बन जायगा तथा मुख्य हेतु आपका ईश्वरप्राप्ति रखकर लोकसेवा को स्वीकार करते रहे।

❋ यात्रियों की अपार भीड़ ❋

शनैः शनैः रामटेकड़ी के साधु के समाचार जनता तक पहुँचे तो जनता रामटेकड़ी की ओर उमड़ पड़ी। जनता की अटूट श्रद्धा और अपार भीड़ को देख कर आप उन्हें दर्शन देते थे। यद्यपि आप बिल्कुल कमती बोलते थे किन्तु श्रद्धालु जनता के हितार्थ आप उपदेशामृत से दर्शकों को शान्ति दिया करते थे। जिज्ञासु, श्रद्धालु जनता आपकी अमृतवाणी से अपने को कृतार्थ मानती रही। कुछ ही दिनों में "बाबा शारदारामजी" की ख्याति बहुत दूर दूर तक फैल गयी और दर्शनार्थी तथा यात्रियों का तान्ता सो लगने लगा।

❋ भूमिदान ❋

कुछ समय बीत गया, सेठ पटेल मारुती मगर महोदयने बाबाजी के नाम पर एक एकड़ भूमि उसी पहाड़ी पर दान कर दी। यद्यपि बाबाजी की किसीसे किसी प्रकार भी याचना नहीं थी, किन्तु रामटेकड़ी स्थानने तो "उदासीनगढ़" से विख्यात होना ही था।

"निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।"

अर्थात् आप तो निमित्त मात्र थे, करने कराने वाला कोई और ही था।

"अवश्यं भाविनो भावी यद्भाव्यं तद्भविष्यति" के अनुसार जो कुछ भवितव्यता थी उसने तो समय के अनुसार अवश्यमेव ही होना था। फिर भी सेठ श्रद्धालु भक्तों का दान तो निमित्त मात्र ईश्वरीय प्रेरणा से होना ही था।

ॠ तप-साधन में बढ़ती ॠ

बाबाजी की साधना दिनों दिन बढ़ने लगी। धूना साधन, पञ्चाग्नि साधन, जल समाधि साधन, शीतोष्ण क्रिया साधन, पूरक-कुम्भक-रेचक-प्राणायामादिक क्रियाएँ, आदि आदि ईश्वर योग साधन की क्रियाएँ करते रहें। प्रायः सभी तरह के साधन शनैः शनैः आपने साध्य किये।

ॠ सेठ शिवनारायणजी का दान ॠ

साधना की दिनचर्या चल ही रही थी कि एक दिन पूना निवासी सेठ शिवनारायणजी महाराजजी के पास बैठे हुए, कुछ निवेदन करने को हिचकिचा रहे थे। सेठ शिवनारायणजी नित्य प्रति आपके दर्शनों को आया करते थे। सेठजी की आपसे इतनी श्रद्धा हो गयी कि बिना आपके दर्शन किये अन्न-जल तक ग्रहण नहीं करते थे। सेठजी वैसे भी स्वाभाविक भक्त और उदार एवं

श्रद्धालु थे किन्तु बाबाजी के सत्संगामृत पान से उनकी निष्ठा और भी बढ़ती रहती थी। आखिर भगवान् की सतप्रेरणा थी, सेठजीने निवेदनपूर्वक महाराजजी से अपनी इच्छा प्रगट कर ही दी कि, "महाराज, मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दी जाय।" महाराज बोले :—"हरि इच्छा।"

बस, सहारे मात्र से सेठ शिवनारायणजी भगवान् की इच्छा को समझ गये, और अपनी पवित्र श्रद्धा से उन्होंने "उदासीनगढ़" रचना की प्रारंभ में सब से पहिले भगवान् भूतनाथ कैलासपति शंकरजी का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में विशाल सुन्दर शिवलिंग की स्थापना करवायी तथा साथ में गणेश गौरीमाताजी की मूर्ति और नान्दी गण की भी स्थापना करवायी। मन्दिर की पूर्ति तथा मूर्तियों की स्थापना के पर्वपर सेठजीने बड़ी उदारता और श्रद्धा, प्रेमभाव से यज्ञ करवाया। यज्ञ की समाप्ति पर बड़ा भारी भण्डारा करवाया गया जिस में अनगिनत लोगोंने और साधुसन्तोंने प्रसाद पाया तथा वस्त्र और दक्षणा यथायोग्य दिया गया।

फिर सेठ शिवनारायणजीने ही साधुसन्तों के लिये भोजनालय तथा भण्डारघर के लिये एक मकान बनवा दिया।
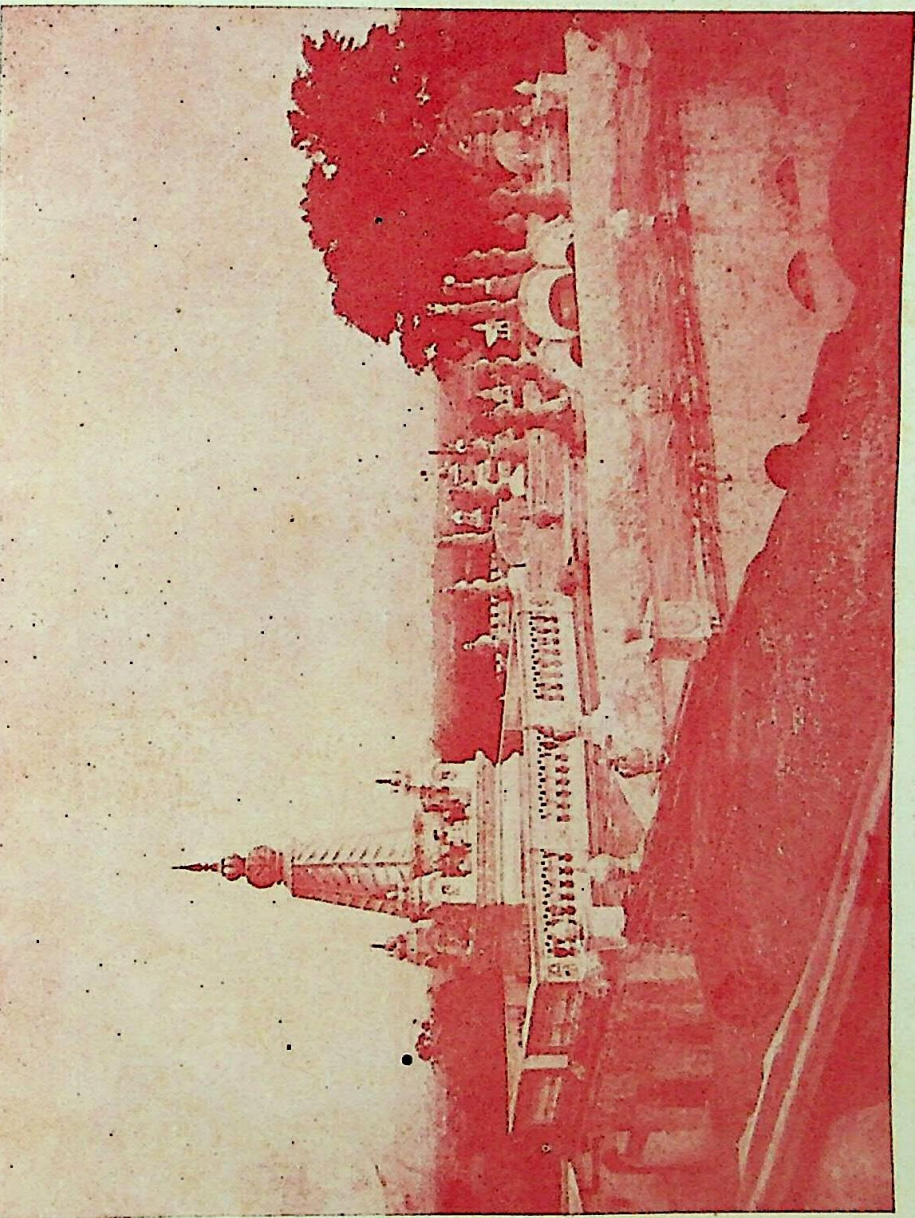
शिव–मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

गुरु नानक उदासीन मंदिर और भगवान् श्रीचंद्र उदासीनाचार्य मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)
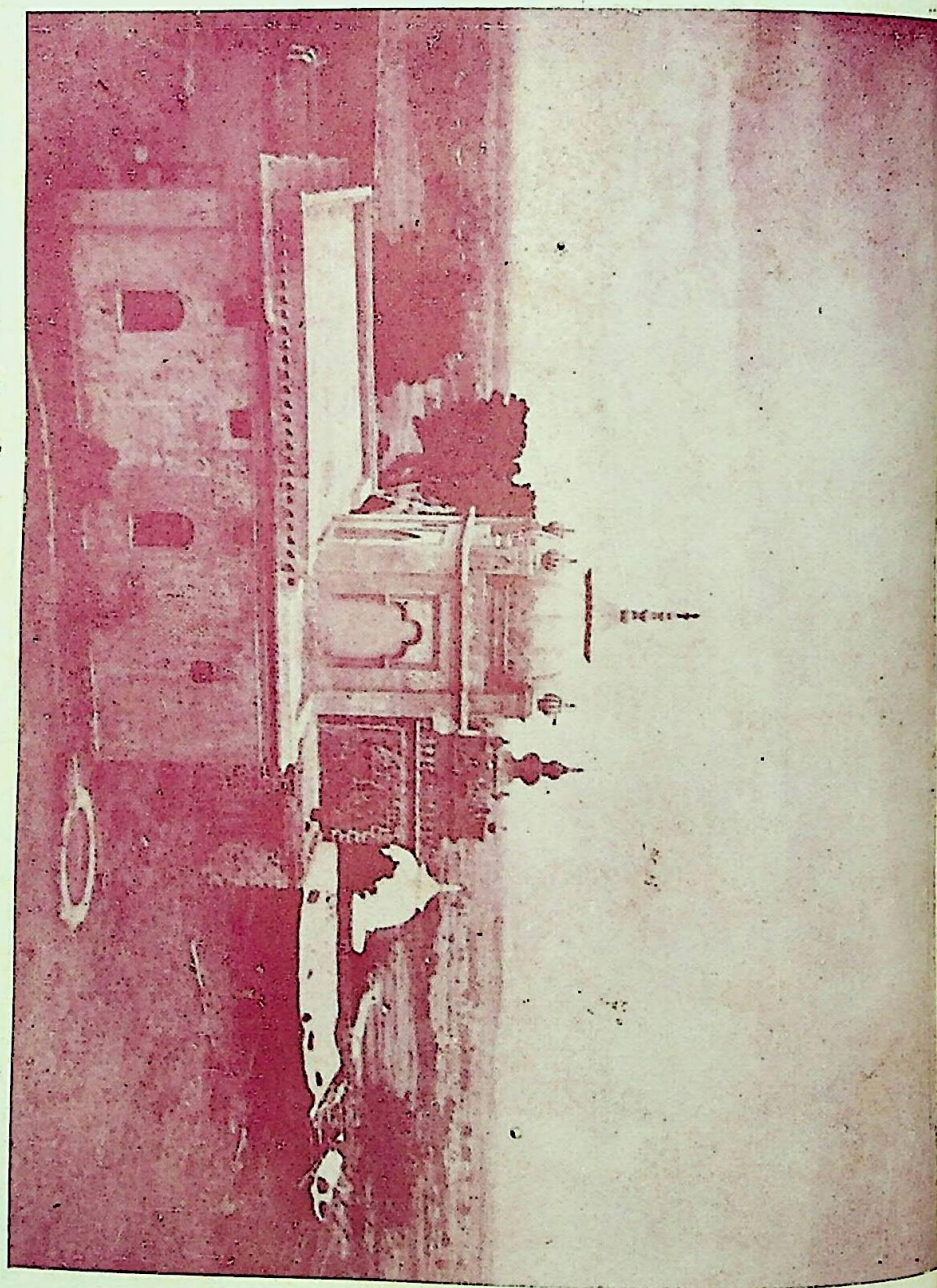
सेठजी के इस धर्म परमार्थ पर समाज आज भी उन्हें धन्यवाद देता हुआ कहता है कि:—

"परोपकाराय सतां विभूतयः।"

※ सुख पन्थ लोक गुफा का निर्माण ※

"अब तो जंगल में हो गया मंगल" ऐसी चर्चा हर एक ही मनुष्य की बाणी पर है।

क्यों न हो? जिस पहाड़ी जंगलको भयावना समझकर कोई मनुष्य वहाँ आनेको भूल से भी विचार नहीं करता था, वही जंगल आज एक तपस्वी के तप–प्रभाव से "मंगलमय" बन रहा था।

अहर्निश साधु, सन्त, अतिथी, फ़कीर, दीन-दुःखी, अमीर–ग़रीब, सभी तरह के लोग दर्शन, सत्संग, प्रसादादिक मनोरथ के लिये रामटेकड़ी पर आते जाते रहते थे। कुछ ही दिनों में बाबाजी के चमत्कारिक प्रभावों का प्रचार दूर दूर तक हो गया। दूर दूर से पहुँचे हुए सन्त–महन्त जन इस स्थान पर आकर ठहरते थे; उनकी सेवा–सुश्रूषा बड़ी श्रद्धा–प्रेम से होती रही (जो कि आज भी होती है)। अतिथी अभ्यागतों को हर समय भोजन–पानी मिलने लगा।

बहुत से गुणी मान्य लोग बाबाजी से बिनय

करने लगे कि, "महाराज, हमें अपनी शरण में लेने की कृपा कीजिये।"

आप "हरि इच्छा" कहकर सबको सन्तुष्ट करते रहे।

* शिष्य मण्डली *

आपके सर्व प्रथम शिष्य बाबा गुरुदासजी श्री मंगलदासजी तथा कुठारी ब्रह्मदासजी और श्री महादेवदासजी आदि हैं।

इस प्रकार शिष्य मण्डली भी आपकी हो गयी थी। अब आप दिनो दिन अपने पास दर्शनार्थी भक्तजनों की भीड़ देखकर अपनी तपस्या में व्यत्यय जान कर कुछ काल के लिये एकान्त निवास का विचार करके अपने ही हाथों से एक "सुख पन्थ लोक गुफा" रचकर उसमें रहने लगे और बड़ी सुख–शान्ति से गुफा में आप भगवत् चिन्तन में लीन होकर रहने लगे।

* कठिन साधना व्रत *

संवत् १९८० में "सुख पन्थ लोक गुफा" का निर्माण हुआ। जबसे बाबाजीने गुफा में प्रवेश किया तो शनैः शनैः अपने उन कठिन साधनों पर जुट गये कि जिन साधनों में पूर्व से ही लगन लगी है।

यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि भक्तियोग की साधनाओं का अभ्यास करने लगे, कठोर से कठोर नियम पालन करते रहे, जैसे कि गीता में उदासीनों के लक्षण बतायें गये हैं। उसी प्रकार आप अपने आपको किसी भी प्रकार असम्बन्ध रखकर आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, त्राटक आदि योग के साधन, तथा पंचधुनि (पञ्चाग्नि) साधन, जलधारा साधन, सूर्य साधन आदि आदि साधनों में रम गये। समय समय पर आप रामनाम जप, ग्रन्थ साहब का पाठ, रहरास, सुखमुनि, भगवान् श्रीचन्द्रजी के मात्राएँ, श्रीमद्भगवद्गीतादिक ग्रन्थों का पाठ किया करते थे। बहुत से पाठ तो आपने कण्ठस्थ ही कर लिये थे।

इस प्रकार आप नित्य नियम पूजापाठ, ध्यानबन्दना करते हुए आत्मचिन्तन करते रहे। आपका साधना, ध्यान परायण तपोमय जीवन गुफा में ही रम गया। भगवत् चिन्तन के रसामृत में आप सभी कुछ सामाजिक जँजाल को भूल-से गये। अपनी निर्गुण रामायण में रचित इन शब्द राग धुन को आप गाया करते थे।

(शब्द, राग पुरबी)

मन हो कबहूँ सत्य सत्य करि हो बिचारा हो॥ टेक॥
धिर्ती किर्ती शान्ति शीलहू, क्षमा विवेक उरधारा हो॥

सम दम संजम उपर्ती, शरधा सुमति करहु बे
सुमारा हो ॥
ज्ञान वैराग्य परमपद मुक्ती, मन तू कर इनका
सनचारा हो ॥
शारदाराम सने सने चलहू, अहै अगम पन्थ
अपारा हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

गुरु दरियाव नहाना हो, जा के दुरलभ भाग ॥ टेक ॥
इंगला पिंगला चबर डोलावै, सुख मन मग चलि
जाना हो ॥
जनम जनम के काई मल लगले, पैठत सब कटि
जाना हो ॥
शारदाराम चेत सुचेत हो के, ज्योत में ज्योति
समाना हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

गुरु सागर चलि आना हो, जा की बहुत कमाई
॥ टेक ॥
गैबी गुरु गैब दर्शावत, साजन मीत कुटुम्ब तराना
हो ॥
पतित पावन सद्गुरु करि दीना, यह अचरज
अनेक परमाना हो ॥
शारदाराम हटकी मन रोकहू, बहुरि जनम नहीं
आना हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

जोगिया हो अविचल नगरिया की कहूँ कहानी ॥टेक॥
जिज्ञासू जन सुनि हैं मुमुक्षु जन सुनि हैं, भावै सो सुनहि मनमानी ॥
उमडि़ घुमडि़ जहाँ निस दिन, गर्जत प्रेमघटा घहरानी ॥
सरवन रंध्र तरजनी लगावो, आसन अचल कर मन ठहरानी ।
शारदाराम अबिचल मन मानी, जा को सद्गुर दिये निशानी ॥

(शब्द, राग बिरह चेतावनी)

जोगिया हो जोग युक्ति से, दिनवाँ काँटो ॥ टेक ॥
हित अनहित कोऊ जग में नाहीं, सब अपना ठाठहि ठाठै ॥
मोह रजनी में उलूक बहु गर्जत, सद्गुर दियना लेसकर ताको ॥
काम क्रोध प्रेत दोउ बिचरत, आशा तृष्णा प्रेतिन ललकारो ॥
लोभ लुकाइन फिरत जैसे डाइन, अहंकार खण्हक खोह अपारो ॥
शारदाराम सभीत रहत नित, कस होई है एक हरि ही अधारो ॥

(शब्द, राग बिरह)

जोगिया हो प्रेम के बाट निहारो ॥ टेक ॥
अगल बगल में बबुरिया के बिरवा, गफलत में काँट लगि जावै हो ॥
सम दम सुन्दर रथ ही बनावो, बिवेक वैराग्य के चाक लगावो ॥
सुरति सुराही सुसोभित बाहन, बिरति लगाम चढावो हो ॥
शारदाराम सुगम से बैठो, सद्गुरू खोले मुक्ति दुवारो हो ॥

(शब्द, राग बिरह चेतावनी)

भोगिया हो एक दिन होई है, सगरे मौज बिराना ॥ टेक ॥
मन के मौजिया में निश दिन, लपटे झपटत काल नहीं जाना ॥
पिता पितामह परपितामह, काल गाल में सब ही समाना ॥
शारदाराम रमों तुम रामहि जो चाहो जीवन कल्याना ॥

॥ दोहा ॥

निर्गुण से सगुण भयो । पुनि निर्गुण रहे समाय ॥
शारदाराम अचल निर्गुण । ज्योंऊ जल तरंग कहाय ॥

महीने में एक बार केवल पौर्णमासी के दिन आप गुफा से बाहर आते रहे और सेवक-भक्तों को दर्शन देते रहे। इसी तरह कई साल बीत जाने पर जनता के आग्रह से आप महीने में दो दिन याने अमावास्या और पौर्णमासी को गुफा से बाहर आकर जनता को दर्शन देने लगे। आप बारह चौदह साल तक गुफा में ही भगवत् चिंतन में रहते रहे।

(आप जब गुफा से बाहर दर्शकों को दर्शन देने निकला करते थे तो बाहर वटवृक्ष की जड़ में आपका धूना रमा हुआ रहता था। आप उस जगह पर एक-आधा घण्टा बैठ जाया करते थे।

आज उस स्थान पर धूना-मन्दिर बना हुआ है जिसमें आप वर्तमान में एक-दो घण्टा सुबह शाम बैठकर जनसमाज, सेवक और भक्तों को दर्शन तथा सदुपदेश से कृतार्थ करते रहते हैं।)

इस तरह दर्शकगण भक्तसमाज की अटूट श्रद्धा-इच्छा को देखकर आपने "हरि-इच्छा" कहकर यह विचार किया कि; आगत जनसमाज को पौर्णमासी के पौर्णमासी दर्शन देने के साथ साथ सदुपदेश भी दे दिया करना अच्छा है। इसीमें इनका कल्याण है। इसलिये आप गुफा से पौर्ण-

मासी को केवल महीने में एक बार एक-आधा दिन के लिये गुफा से बाहर आया करते रहे।

* गुफा में "अजगर" वृत्ति *

बाबाजी जिन दिनों गुफा में रहते थे उन दिनों के चमत्कारिक विशेषताएँ यद्यपि वर्णन करने में लेखक असमर्थता प्रगट करता है; तथापि इतना बता देना आवश्यक समझता है कि, महाराजजी को गुफा में रहते हुए भी ईश्वरीय प्रेरणा से स्वतः ही ज्ञात हो जाता रहा कि, आज पौर्णमासी है या अमुक समय कितना व्यतीत हुआ और बाहर अब क्या हो रहा है आदि सामायिक गति का पूर्ण रूपेण आपको ज्ञान हो गया था।

आप जब प्राणायाम तथा त्राटक साधन करते तो आपकी जटा तथा कन्धों पर सर्प-बिच्छू क्रीडा करते थे या आपकी चौकीदारी करते रहते थे 'भगवान् ही जाने!'

कभी कभी तो वे सर्प-बिच्छू बाबाजी के चरणों पर लिपट जाते थे, मानो वे भी उदासीनता की दीक्षा लेने के लिये आपकी शरण आये हों!

एक फणी (साँप) महाशय तो बिना आपकी आज्ञा से आपके सामने से कभी भी टस से मस नहीं होता था। "कब बाबाजी की समाधि खुले

और कब उसे जाने की आज्ञा मिले।" यही रोज उस का काम था कि फण उठा कर सामने बैठा रहना।

बाबाजी जब उसे हाथ से जाने का इसारा करते तो फण माथा नवाकर सीधा अपना रास्ता पकड़ लेता था।

वर्षा के दिनों में कभी कभी तो गुफा में ऊपर से टपाटप साँप ही साँप टपका करते थे। आप "हरि इच्छा" कहकर मुस्करा जाते थे।

आपको अपनी दिनचर्या में न भोजन की ही सुद रहती थी, न प्यास ही कभी आपको सताती थी। भूख और प्यास तो आपके तपसाधन म ही उदासीन होकर माथा टेककर चली गयी थी। जैसे संत तुकाराम महाराजने कहा है कि,

"पांडुरंग ध्यानीं पांडुरंग मनीं।
जागृतीं स्वप्नीं पांडुरंग ॥"

अर्थात् ध्यान में, मन में और जागृत स्वप्न अवस्था में एक भगवान् का ही ध्यान। वैसे ही आप भगवत् चिंतन में इतना तन्मय या तल्लीन हो गये कि आपको स्वप्न में भी हर हमेशा भगवान् प्रभु रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, शिवजी और गुरुदेवजी का दर्शन होता था।

बस, आप तो अजगरों (साँपों) के साथ "अजगर वृत्ति" से ही रमा करते थे।

चाणक्य मुनि लिखते हैं :—

सर्पाः पिबन्ति पवनं नच दुर्बलास्ते,
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैर्फलैर्मुनिवराः गमयन्ति कालं
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥

— सुभाषित

इधर आपकी तपश्चर्या का नित्यकर्म होता रहता था और दूसरी तरफ मन्दिरों का निर्माण-कार्य होता रहता था। इस समय भगवान् श्री चन्द्रजी का मन्दिर बना। इनकी मूर्तिस्थापना के दिन यज्ञादिक विशेष समारोह किया गया। साधुजनों को भोजन-प्रसाद जिमाया गया। यह कार्यक्रम श्रीत्रिभुवन किराड और दत्तुसिंग परदेसी इन्होंने पूर्ति किया।

*** " पूज्यपाद गुरुदेव १०८ श्री मौजीरामजी महाराज का इस स्थानपर प्रथम आगमन ***

इस तरह "उदासीनगढ़" का निर्माणकार्य चल ही रहा था और बाबा श्री शारदारामजी की साधना का कार्यक्रम दिनो दिन बढ़ता ही रहता था।

बड़ी सुख शान्ति से आठ नौ वर्ष व्यतीत हो गये। "दिवस जात नहिं लागत वारा।"

समय बीतने में क्या देर लगती है। इसके पश्चात् नौ वर्ष के बाद सं. १९८६ में पूज्यपाद गुरुदेव श्री १०८ बाबा मौजीरामजी महाराज इस रामटेकड़ी स्थान पर पधारे। गुरुदेवजी के शुभ दर्शनों से बाबा शारदारामजी कृतार्थ हुए। अत्यन्त सुख-शान्ति प्राप्त हुई; ऐसा प्रतीत हुआ जैसे "तपस्यारूपी" वृक्ष से "शान्तिरूपी" फल प्राप्त हुआ हो।

श्री गुरुदेवजी के शुभागमन और दर्शनों के प्रभाव से यशःकीर्ति का दिनों दिन विकास होता गया।

जिन दिनों गुरु महाराज इस स्थान पर पधारे थे उन दिनों आप "पञ्चाग्नि" साधन में लगे हुए थे।

गुरुदेव चार महीने तक यहाँपर रहे। इसी बीच में ज्येष्ठ पूर्णिमा को "पंचधुनी" साधन की शान्ति का भण्डारा बड़े समारोह के साथ किया गया। गुरु महाराज इससे बहुत ही प्रसन्न हुए।

आप प्रतिदिन गुफा से चार बजे निकल कर गुरुदेवजी की "नित्य-क्रिया, सेवा-सुश्रूषा" स्वतः

करवाते रहते थे। गुरु महाराज नित्य क्रियाकर्म से निवृत्त होने के अनन्तर शान्त चित्त से आसन पर जब बैठ जाते थे तब गुरु-शिष्यों के सम्बन्ध पर तथा भक्ति-ज्ञानादिक गूढ विषयों पर कथा सुनाया करते थे। कभी कभी उद्दालक प्रचेता का संवाद है तो कभी अष्टावक्र और जनक का संवाद; और कभी नचिकेता और यमराज का संवाद तथा सत्यवान और सत्यवान के गुरु का संवाद; तथा भगवान श्रीचन्द्रजी का और भक्त भगवान दत्ता, फूलसाहेब, गोविंदसाहेब, बालहसन साहेब, अलमस्थ साहेब, इत्यादि गुरु-शिष्यों का संवाद सुनाया करते थे। गुरु महाराज के कथामृत का पान करने के अनन्तर आप कभी जल्दी ही गुफा में चले जाया करते थे।

जब गुरुदेवजी की इच्छा होती तो बाबा शारदारामजी को गुफा से ही बुला लिया करते थे और उनमें नित्य नयी नयी कथादि भगवच्चर्चा हुआ करती थी। ठीक ही तो कहा है :—

'धर्मशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।'

कितना सुख और आनन्द का समय था। ऐसे शुभ समय को बीतने में देरी नहीं लगती, चार मास तो यों ही चले गये, कुछ पता ही नहीं चला।

* गुरुपूर्णिमा उत्सव *

आषाढ़ का महीना था, गुरुपर्व (गुरुपूर्णिमा) आनेवाला था। बाबा शारदारामजी के लिये यह पर्व एक महान् पुण्यफलदायक था। कुछ दिन पहिले से ही रामटेकड़ी की सजावट की गयी, पर्व के आने पर बड़ी धूमधाम से गुरुपूर्णिमा मनायी गयी। गुरुजी की पूजा का शुभावसर पा कर आप कृतार्थ हो गये। इस पर्व पर जो कुछ आनन्द और उत्साह था उसका वर्णन करने में लेखक असमर्थ है। कुछ दिनों से सेठ रामप्रसाद मथुरावाले की हार्दिक इच्छा थी कि गुरुदेवजी के चरण उनके घर में भी पडे। और इस निश्चय का कार्यक्रम भी बना लिया था कि इसी शुभ पर्व (गुरुपूर्णिमा) पर गुरुदेवजी को घर पर ले चलने का आग्रह करे।

महाराजजीने गुरुदेवजी से अनुनय विनय की तो गुरुदेवने स्वीकार कीये।

बस, तुरन्त साज वाज सज गये, बैण्डबाजा-बिगुल तथा शँखध्वनि, रणसिंहादिक बाजों के साथ गुरुमहाराजजी की सवारी मोटर में सजावट के साथ निकाली गयी। रामटेकड़ी से पूना शहर तक बड़े भारी जुलूस के साथ सेठ रामप्रसादजी के घर पर सवारी पहुँची।

इस शुभ अवसरपर सेठजीने अधिक से अधिक श्रद्धाभाव से गुरुदेवजी की सेवा की। सोने की मोहरें और कुछ रुपयें, तथा एक जरीदार दुशाला और पितांबरी गुरुमहाराज के चरणों में भेंट किये। फिर मध्यान्होत्तर सेठजीने गुरुमहाराजजी को रामटेकड़ी पर पहुँचा दिया।

इस पर्व के बाद गुरुदेव रामटेकड़ी स्थान पर चार दिन और रहे; पाँचवें दिन (चार महीने के बाद) गुरुमहाराजने पूना से अपने स्थान को प्रस्थान किया।

प्रस्थान के दिन आप सहित बहुत से सन्त, भक्त और शिष्यों की संगत गुरुदेवजी को पूना स्टेशन तक पहुँचाने गये। गुरुदेवजी को गाड़ी में बिठा कर सबने दण्डवत–प्रणाम करके गुरुदेवजी को बिदा किया और अपने अपने स्थान को लौट आये।

* गुरुदेवजी के प्रस्थान पर *

गुरुमहाराज के स्वस्थान चले जाने के बाद आपने (बाबा शारदारामजीने) जवाबी पत्र भेजकर गुरुमहाराज की पहुँच कुशल माँगी। गुरुदेवजी ने भी तुरन्त ही अपने पहुँचने का समाचार भेज दिया। फिर आपके मन को शान्ति हुई। परन्तु

गुरुमहाराज के गुणानुवाद का चिन्तन आपको एक अगाध विरह सागर में ले जाता रहा। कुछ दिन तक आप विरह व्यथा से ब्याकुल रहे। परन्तु फिर आप अपने नित्य के अभ्यास में परायण हो गये।

यात्रा प्रकरण (२)

(६)

मंत्र

"ॐ ब्रह्म सोऽहं जाप
शुद्ध ब्रह्म आतम आप।
आदि गुरू हंसावतार
आतममेधावी सनत्कुमार।
ॐ सत् नाम श्रुत
नाम जप जीवनमुक्त॥"

* आजा गुरुजी का अवसान *

संवत् १९८८ में गुरुमहाराजने तार भेजा कि बाबा श्री सुद्धरामजी ब्रह्मलीन हो गये। यह दुःखद समाचार पा कर आपको बड़ा दुःख हुआ। तार पढ़ते ही आप गुरुस्थान पर जाने की तैयारी करने लगे।

पूना के नेमी प्रेमियों, भक्तों और शिष्यों को जब इस समाचार का पता चला कि बाबाजी अयोध्या जा रहे हैं, तो बात की बात में सभी बिदाई के दर्शन–मेला के लिये उपस्थित हो गये।

साथ में सेठ रामप्रसादजी तथा दो शिष्य—ईश्वरदासजी और सन्तचरणदासजी—भी महाराजजी के साथ जाने को तैयार हुए। स्टेशन तक महाराजजी को पहुँचाने सभी सेवक गये। सेवकों की बहुत भीड़ हो गयी थी। कोई कोई सेवक तो महाराजजी की बिदाई में आँसू बहा रहे थे। कितने ही महाराजजी से प्रार्थना करने लगे कि "महाराज, तुरन्त ही लौटकर दर्शनों से कृतार्थ करना।" कितने ही तो फल, फूल, द्रव्यादिक वस्तुओं को महाराजजी के चरणों में भेंट कर रहे थे। इस तरह उस दिन अनाश्रुत ही अनेक प्रकार की वस्तुएँ महाराजजी के चरणों में भेंट हुई। जब आप गाड़ी में बैठे तो भक्त और दर्शकों की इतनी अधिक भीड़ थी कि स्टेशन मास्टर को भी गाड़ी छोड़ने में ५–७ मिनट की देरी करनी पड़ी।

गाड़ी छूटने के बाद भक्त-सेवक जन अपने स्थान को लौटे; महाराजजी यात्रा में गये।

* मथुरा में ठहरे *

गाड़ी में चलते हुए आपका ध्यान गुरुस्थान पर ही है कि तुरन्त ही वहाँ पहुँचा जाय। गाड़ी में आपको अपने नित्य नैमित्तिक क्रिया के लिये कोई सुभीता नहीं मिला। अतः जब गाड़ी मथुरा पहुँची तो

आप वहाँ ही स्टेशन पर उतर पड़े। सेठ रामप्रसादजी तो साथ ही थे; उन्होंने महाराजजी की सेवा का पूर्ण प्रबन्ध किया। आप रात में मथुरा उतरे थे इसलिये सुबह नित्य क्रिया करके और यमुना माता के दर्शन कर, स्नान करके श्रीद्वारकाधीशजी के दर्शनों का लाभ प्राप्त किया। पुनः बारह बजे दुपहर भोजनोपरान्त आप फिर गाड़ी में बैठ गये। लखनऊ होते हुए चौथे दिन "गुरुधाम" अयोध्या-पुरी में आप पहुँच गये।

सन्त महन्तों की भीड़ लगी हुई थी उस समय गुरुद्वार में। आप सीधे महन्त बाबा महादेवदासजी के पास पहुँचे। आपने उनके दर्शन किये, प्रणाम किया। उस समय आपकी आँखों में आजा गुरुजी के विरह से आँसूओं की झड़ी बह रही थी। आप खड़े ही थे कि तब तक किसी व्यक्तिने आकर कह दिया कि आपके गुरुदेव बाबा मौजी-रामजी मन्दिर के पीछे विराजमान हैं। बाबाजी बड़ी उतावली से महन्त बाबा महादेवदासजी को दण्डवत प्रणाम करके वहाँसे उस मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर के दर्शन करते हुए गुरुदेव बाबा मौजीरामजी की सेवा में अग्रसर हुए। दर्शन पाते ही आपका मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया। उस समय मानो आजा गुरु श्री सुध्दरामजी ही बैठे हुए

हो। आपने दण्डवत प्रणाम किया और इसारा मिलने पर बाँये तरफ़ बैठ गये। महाराजजीने कुशल प्रश्न पूछें।

उस समय बाबा शारदारामजी के मुखारविन्द से निकलाः—

" नाथ कुशल यही भान्ति हमारा
व्याप्त अखिल तन विरह तुम्हारा।

अर्थात्ः— महाराज, मन में तो आपका वियोग छाया हुआ है, परन्तु अब आपके दर्शन पा कर सब कुशल ही कुशल है। "

* गुरुदेवजी का उपदेश *

" वत्स, तुम तो सत्य के सेवक हो जिसमें शोक और वियोग का लेशमात्र भी नहीं है और फिर तुम तो स्वतः जानते ही हो कि :—

' गतासूनगतासूँश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। '
— गीता, अ. २, श्लोक ११

अर्थात् :— मरे हुए और पैदा हुए के लिये पण्डित जन कुछ भी शोक नहीं करते। यह शरीर तो एक वस्त्र की तरह हैः—

'वासाँसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
नन्यानि संयाति नवानि देही ॥ "
— गीता, अ. २, श्लोक २२

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोडकर नये धारण कर लेता है उसी प्रकार यह आत्मा एक चोले को छोडकर दूसरे चोले को धारण कर लेता है। ज्ञानी जन इसके लिये किसी प्रकार शोक नहीं करते। शरीर कोई भी क्यों न हो, सभी नाशवान है, केवल शुद्धात्मा अजर, अमर, अविनासी है।

'देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसी ॥'
— गीता, अ. २, श्लोक ३०

अर्थात :– इस नाशवान शरीर के अन्दर जो देही (आत्मा) है वह अबाध्य यानी अमर है।

और फिर सन्त साधुओं को तो इस विषय पर शोक ही करना नहीं चाहिए।

'सन्त मुये क्या रोइये, वह अपने घर जाय ।
रोवे साकत बापूरे जो हाठहि हाठ विकाय ॥'
— श्रीगुरु नानकदेव

* पुतली (चित्र) रथ *

गुरुदेव इस प्रकार उपदेश कर ही रहे थे कि इतने में महन्त बाबा महादेवदासजीने सन्देसा भेजा और आपके गुरुदेव तुरन्त ही उनके पास पहुँच गये। पहुँचने पर रानोपालि के महंत केशवरामजी वगैरे सब महंत मिलकर परामर्श कर निश्चय किये कि, "कल बाबा सुद्धरामजी का 'चित्र विमान' सजधज से निकाला जायेगा और उसपर बाबा शारदारामजी बिठाये जायेंगे। वे बाबा सुद्धरामजी के पुतली चित्र की सम्भाल करेंगे"।

इतना निश्चय होनेपर दूसरे दिन चित्ररथ बडे सजधज से निकाला गया। हजारों लोग रथ के आगे पीछे चल रहे थे। साथ में तरह तरह के बाजा बाजान्तर बज रहे थे। रथ हनुमानगढ़ी (अयोध्या) तथा बडी बाज़ार होते हुए रामघाट सरयूजी के दर्शन करके टेढ़ी बाज़ार से होते हुए चार घण्टे में स्थान पर वापस आया।

पाठकगण को तो याद ही होगा कि एक दिन वह था जिस दिन कई साधु लोग बाबा शारदारामजी के तरफ तिरस्कार और उपेक्षाबुद्धि से देखते रहे और बोलते रहे कि, "बामन छत्रियों का काम एक बैश्य वर्णी कोईरी का बालक कर रहा है।"

अब आज वह दिन है कि समग्र साधु लोग

बाबा शारदारामजी के तरफ बडे श्रद्धाभाव से तपोमय मूर्तिरूप में देख रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जैसा कहा गया है कि, "नर करनी करे तो नर का नारायण बन जाय।" सन्त तुलसीदासजीने ही कहा हैः—

'एक दिन तुलसी वह थे।
जैसे बन की घाँस ॥
कृपा भयी रघुनाथ की।
हो गये तुलसीदास ॥'

— तुलसीदासजी

* आजा गुरुजी का सत्रहवाँ *

इस प्रकार चित्र रथ की विश्रान्ति कर आजा गुरु का सत्रहवाँ दिन का भण्डारा करके स्थान की ओरसे हजारों मूर्तियों को भोजन पदार्थों से तृप्त किया गया। और फिर बड़े सम्मान के साथ बिदा करते समय उन्हें वस्त्र, द्रव्यादि से बाबा महादेवदासजीने सन्तुष्ट किया।

उसी रोज सभी महन्तों का गुरुदेवजी के साथ परामर्श तथा यह निश्चय हुआ कि, कल का भण्डारा बाबा शारदारामजी के तरफ से होगा।

इस परामर्श को सुनते ही आपने बड़ी प्रसन्नता से सन्तों का बचन शिरोधार्य किया।

* बाबा शारदारामजी के तरफ से भण्डारा *

सेठ रामप्रसादजी मथुरावाले बाबाजी के साथ सेवा में तो गये ही हुए थे; महाराजजी का इसारा पाते ही भण्डारे की पूर्ण रूप से तैयारी करने में जुट गये। बात की बात में दूसरे दिन बड़ी धूमधाम से भण्डारा हुआ। सैंकड़ों सन्त महन्तों को द्रव्य, वस्त्रादि द्वारा यथायोग्य सम्मान किया गया।

इस भण्डारे पर अयोध्या मण्डल के १५ महन्त जन उपस्थित थे। उनके सम्मान में एक एक अलवान और ग्यारह ग्यारह रुपये भेंट के रूप में दिये गये।

इस भण्डारे की चहल पहल और सम्मान-दान को देखकर सभी लोग प्रसन्न चित्त से बाबा शारदारामजी की कीर्ति गा रहे थे।

भण्डारा-कार्य समाप्त हुआ; सभी सन्त साधुजन अपने अपने स्थान को चले गये। तब बाबा शारदारामजी अपने पूज्य गुरुदेवजी से आज्ञा-आशीर्वाद लेकर कानपुर आ गये।

सेठ रामप्रसादजी सीधा पूना आ गये। बाबा जी कानपूर में १५ दिन तक रहे। वहाँपर आपके दर्शनार्थ जनता की बहुत भीड़ लगी रहती थी। आप उन्हें अपने उपदेशामृत से सन्तुष्ट किया करते थे।

फिर आपका विचार भारतभूमि के तीर्थादिक भ्रमण का हुआ। कुछ दिन तो आप उसी प्रान्त में भ्रमण करते रहे। फिर विचार हुआ कि नेपाल प्रदेश में "पशुपतिनाथजी" का दर्शन करे। शिवरात्री महोत्सव पर आप दुबारा "पशुपतिनाथजी" के दर्शनार्थ चले गये। वहाँ की यात्रा

सक्कर की यात्रा में चले गये। वहाँ अनेक भक्त सेवकों को दर्शन देते हुए, जहाँ ठहरते वहाँ सत्-संग उपदेशामृत से तृप्त करते रहे। इस प्रकार सिन्ध का भ्रमण करके सिन्ध "रोडी सक्कर" आ पहुँचे। यहाँपर श्री तीर्थ साधु बेला उदासीन आश्रम में पधारे और इस स्थान पर आपने कुछ दिन ठहरकर विश्राम किया। वहाँके महंत १०८ स्वामी हरिनामदासजी थे। यहाँसे आपने अपनी यात्रा के कुशल समाचार पूना के भक्त सेवक शिष्यों को भेजे; साथ ही द्वारिका की यात्रा में पधारने का विचार उस पत्र में आपने लिख दिया।

* श्रीतीर्थ साधुबेला *

यह श्री तीर्थ साधुबेला वह स्थान है जहाँ-पर सात नदियों के बीच में एक टेकड़ी (टापु) पर सद्गुरु बाबा "बनखण्डी" महाराजजीने अपना उदासीन झण्डा गाड़कर उदासीन आश्रम की नींव डाली थी और अपने चरणों से इस आश्रम को पवित्र तथा प्रसिद्ध किया था। जिन दिनों बाबा शारदारामजी इस आश्रम पर पहुँचे उन दिनों वहाँ की शोभा महन्त १०८ स्वामी हरिनामदासजी बढ़ा रहे थे। स्वामी हरिनामदासजी के जितने भी शिष्य-गण वहाँपर थे प्रायः सभी वेद–वेदाङ्ग महाभाष्या-

–दिक धर्मशास्त्र और षड्दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। रातदिन इस आश्रम में सरस्वती खेला करती थी और विद्यामाता मनोविनोद किया करती थी।

"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।"

अर्थात्, इस आश्रम के महात्मा जनों का समय काव्यादिक धर्मशास्त्रों की चर्चा में ही बीतता था।

श्रीमान् स्वामी हरिनामदासजी अपने विद्वान् शिष्यों से इस प्रकार प्रसन्न रहते थे जैसे माता-पिता अपने गुणवान्-विद्वान् पुत्रों से मुग्ध रहते हैं।

स्वामीजी से ही इस आश्रम की अधिक से अधिक उन्नति हुई है। इन्हीं के प्रभाव और उन्नति के कारण हजारों यात्री इस आश्रम पर दर्शनार्थ आया करते थे। हमेशा यहाँपर कथा वार्तादिक सत्संग हुआ करता था। यात्रीगण दर्शन, प्रसाद, उपदेश लेकर अपने को कृतार्थ समझते हुए धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते थे। प्रसन्नता से लौटते थे।

※ पूना में पत्र पहुँचा ※

श्री तीर्थ साधु बेला से जो पत्र पूना को शिष्यों के पास भेजा था वह पत्र उन्हें मिलने पर वे प्रसन्न हुए। हृदय से गुरु महाराज का ध्यान किये। इधर के सभी भक्त–सेवक–शिष्य जन महाराजजी

के विरह में ब्याकुल-से थे, परन्तु पत्र मिलने से सभी के मन को शान्ति प्राप्त हुई।

महाराजजी की यात्रा में कोई विघ्न न हो इसलिये किसीने भी अपने विरह ब्याकुलता के समाचार महाराजजी को नहीं भेजे। केवल प्रसन्नता के साथ यात्रा के लिये खर्चा भेज दिये।

* नगरठट्टा में *

श्री तीर्थ साधुबेला में १५ दिन निवास करने के पश्चात् आप "नगरठट्टा" चले गये जहाँ कि शंकरावतार भगवान् श्रीचन्द्र उदासीन मुनीजीने प्राचीन काल में अधर्मीयों को अपने प्रभाव से प्रभावित किया था। और उन्हें सदुपदेश-ज्ञान का मार्ग बताकर अधर्म से बचाया था। इतना ही नहीं बल्कि आपने वहाँ ही धूना लगाकर वहाँ की जनता को सद्धर्म पर उत्साहित कर दिया तथा सत्यधर्म पर दृढ कर दिया। तभीसे यह स्थान परम पवित्र तीर्थस्थान बन गया है। बाबाजी (शारदारामजी) भी जब इस स्थान पर पहुँचे तो उदासीनाचार्य जगद्गुरु भगवान् श्री चन्द्राचार्यजी के धूना साहब एवं भगवान्जी की प्रतिमा के दर्शन किये। अपनी यथाशक्ति से

आपने वहाँ पत्र-पुष्प-द्रव्यादि भेंट चढ़ाई और कड़ा प्रसाद का भोग लगाये।

वहाँ के दर्शनों से आपके चित्त को अधिक से अधिक शान्ति प्राप्त हुई।

तीन रोज़ के बाद "नगरठट्टा" से आप कराची आ गये। वहाँ भी आपने उदासीन आश्रमों के दर्शन किये। प्रायः सभी उदासीन स्थानों के दर्शन करके दो दिन के बाद आपने द्वारिका धाम की यात्रा को प्रस्थान किया।

* द्वारिकापुरी में *

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्द कन्द की राजधानी द्वारिकापुरी में पहुँच कर आप शंख तलाई उदासीन आश्रम में ठहरे। इस आश्रम की नींव उदासीन मुनि भगवान् श्रीचन्द्रजीने डाली थी। इसपर उदासीन पन्थ का झण्डा उन्हीं का गढ़ा हुआ है।

यहाँपर बाबाजी पाँच दिन रहे। भगवान् श्रीकृष्णजी की मूर्ति के दर्शन और तीर्थ स्नान से आप कृतार्थ होते रहे। आश्रम में आपने कड़ा प्रसाद का भोग लगवाये। फिर पाँच दिन के बाद आप गोमती द्वारिका पहुँचे। वहाँ भगवान् के दर्शन करके आप जूनागढ़ के रास्ते से गिरनार

तथा गोरख टेकड़ी, श्री दत्त टेकड़ी तथा श्री अम्बाजी आदि समस्त तीर्थ देव-मूर्तियोंका दर्शन पूजन करते हुए आप पाँच दिन तक यहाँ रहे।

* अहमदाबाद में *

गिरनार से पाँच दिन के बाद बाबाजी अहमदाबाद को वापस आये। यहाँ पहुँचकर कंकरिया तालाब पर उदासीन आश्रम में ठहरे।

* स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी *

अहमदाबाद के उदासीन आश्रम पर वेद-दर्शनाचार्य, महा मण्डलेश्वर, स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी महाराजजीने एक विशाल वेदमन्दिर स्थापित किया है। वर्तमान समय में इस स्थान पर बड़े बड़े प्रकाण्ड विद्वान् लोग धर्मप्रचारार्थ भाषण, प्रवचन करते रहते हैं।

स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी के इस उपकार कार्य से देश तथा समाज का निरन्तर कल्याण होता रहता है और भविष्य में भी होता रहेगा।

* सुरत पहुँचे *

इस प्रकार आप तमाम यात्रा करके सं, १९८८ में अहमदाबाद से डाकोर श्रीरणछोड़जी के दर्शनों में पहुँचे। वहाँसे आप सूरत आये।

उस समय पूनानिवासी आपके परमप्रिय उदार सेवक सेठ शिवनारायणजी सूरत में ही निवास कर रहे थे। आपका आगमन सुनकर आपकी सेवा में सूरत स्टेशन पर ही उपस्थित हो गये। सेठजीने वहाँपर बाबाजी की सेवा सुश्रूषा बहुत तल्लीनता से की है।

* नासिक कुम्भ के मेले में *

सूरत के विश्राम के बाद आप नासिक कुम्भ के मेले पर आ पहुँचे। उस समय कुम्भ पर जाने का खर्चा आपको सेठ शिवनारायणजीने ही दिया। नाशिक त्र्यम्बक में पहुँचकर आपने स्नान दर्शन किये और विचार करने लगे कि इस समय इस महा पर्व पर क्या दान किया जाय!

* अन्नक्षेत्र लगाया *

जैसे संत तुकराम महाराजजीने कहा है :—

"सत्य संकल्पाचा दाता नारायण"

अर्थात् संत तुकाराम महाराज कहते हैं कि प्रभु परमात्मा भक्तों के सत्य संकल्प कि पूर्ति करता है। इस प्रकार विचार सिद्ध हुआ कि अन्न क्षेत्र (सदावर्त) लगाया जाय। "भगवान् भक्तों की इच्छा पूर्ण करते रहते हैं"। बस, अन्नक्षेत्र

का प्रबन्ध भी हो गया। पूना निवासी सेठ शिवनारायणजी, सेठ रामप्रसाद मथुराभुवनवाले और ठाणा के सेठ चंद्रभान सिंधीने अन्नक्षेत्र का भार सम्भाला। एक माह तक सुरक्षित और स्वच्छता से सैकडों मूर्ति का अन्नक्षेत्र उस पर्व पर नासिक में लगा रहा।

* पूना पहुँचे *

कुम्भ का मेला समाप्त हुआ और आप अपने शिष्य–सेवक–भक्त तथा संत मण्डली सहित पूना आ पहुँचे। और फिर पूर्ववत् अपनी योग-क्रियादिक वृत्ति के अनुसार एकान्त निवास करने लगे अर्थात् गुफा में ही रहने लगे।

इस यात्रा की समाप्ति पर श्रीरामटेकड़ी पर बृहत् रूप से भण्डारा किया गया। हजारों लोगोंने प्रसाद पाया और धन्यवाद दिया।

* मन्दिरों के निर्माण के बारे में *

मन्दिरों के निर्माण के बारे में मैं पहिले भी लिख चुका हूँ। यहाँपर विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि, "उदासीनगढ़" निर्माणार्थ भूमिदान तो सेठ मारुती मगर पटेल कर ही चुके थे। फिर कैलासनाथ जी का मन्दिर सेठ शिवनारायणजीने बनवाया

और साथ में साधुओं के लिये भोजनालय, भंडार घर भी बनवायें। भगवान् श्रीचन्द्र मुनिजी का मन्दिर तथा मूर्ति-स्थापना सेठ बाबू दत्तूसिंग और त्रिभुवनसिंगजी परदेसी इन्होंने किये। फिर सेठ रामप्रसाद मथुरा-भुवनवाले और पूना निवासी श्री गंगाराम माली इन्होंने सन्त महात्माओं के निवास के लिये एक धर्मशाला बनवा दी। उसका नाम "सन्त-निवास" रखा गया।

* पञ्च परमेश्वर की जमात *

"उदासीनगढ़" निर्माण का कार्य भी चल ही रहा था और बाबाजी यात्रा समाप्ति के आनन्द में अपनी साधना पर जुटे हुए थे। तब तक कुछ दिनों में उदासीन पञ्चायती आखाड़े के श्रीपंचपरमेश्वरजी की जमात "सेतुबन्ध रामेश्वर" से लौटती हुई नासिक जाने के लिये पूना श्रीरामटेकड़ी स्थान पर पधारी। जमात के साथ उस समय महन्त श्री आदिरामजी तथा महन्त दर्शनदासजी, जमुनादास-जी आदि बहुत से उदासीन सन्त-महन्त थे। श्री पंचपरमेश्वरजी इस स्थान पर पाँच रोज़ तक रहे। यह समय तीर्थस्वरूप सुखदायक रहा। पंचपरमेश्वरजी के पधारते समय बाबा शारदारामजीने पहिले गोला साहेब का पूजन किये जो कि

बाबा बनखंडी साहेब से निर्वाणदेव प्रीतमदासजी को मिले थे तथा तप के प्रभाव से पाये थे। आज तक पंचपरमेश्वर में गोला साहब का पूजन प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् यथायोग्य सन्त–महंतों की भेंट–पूजा किये और बिदाई की। आपको जमातने बड़े प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद दिया और आजा गुरु की जय जयकार करते हुए नासिक जाने के लिये पधारे।

* पूना में पुनः गुरुजी का आगमन *

तत्पश्चात् दूसरी वार बाबाजी के पूज्यपाद गुरुदेव बाबा मौजीरामजी उदासीन पूना रामटेकड़ी स्थान पर पधारे। बाबा शारदारामजी की दर्शन अभिलाषा पूर्ण हुई। गुरुदेवजी के चरण इस स्थान पर पडने से ही बाबाजी कृतकृत्य होकर स्थान पवित्रता की प्रशंसा करने लगे। गुरुदेवजीने स्थान पवित्र करते हुए चातुर्मास पूना रामटेकड़ी पर ही बिताया।

जब तक गुरुदेवजी इस स्थान पर रहे तब तक अहर्निश वेदान्तादिक धर्मशास्त्रों का प्रवचन सत्संग होता रहा। जनसमाज तथा भक्त सेवक दर्शक गणों की दिनों दिन भीड लगी रहती थी। सत्संगामृत लाभ से अपने को धन्य समझते थे।
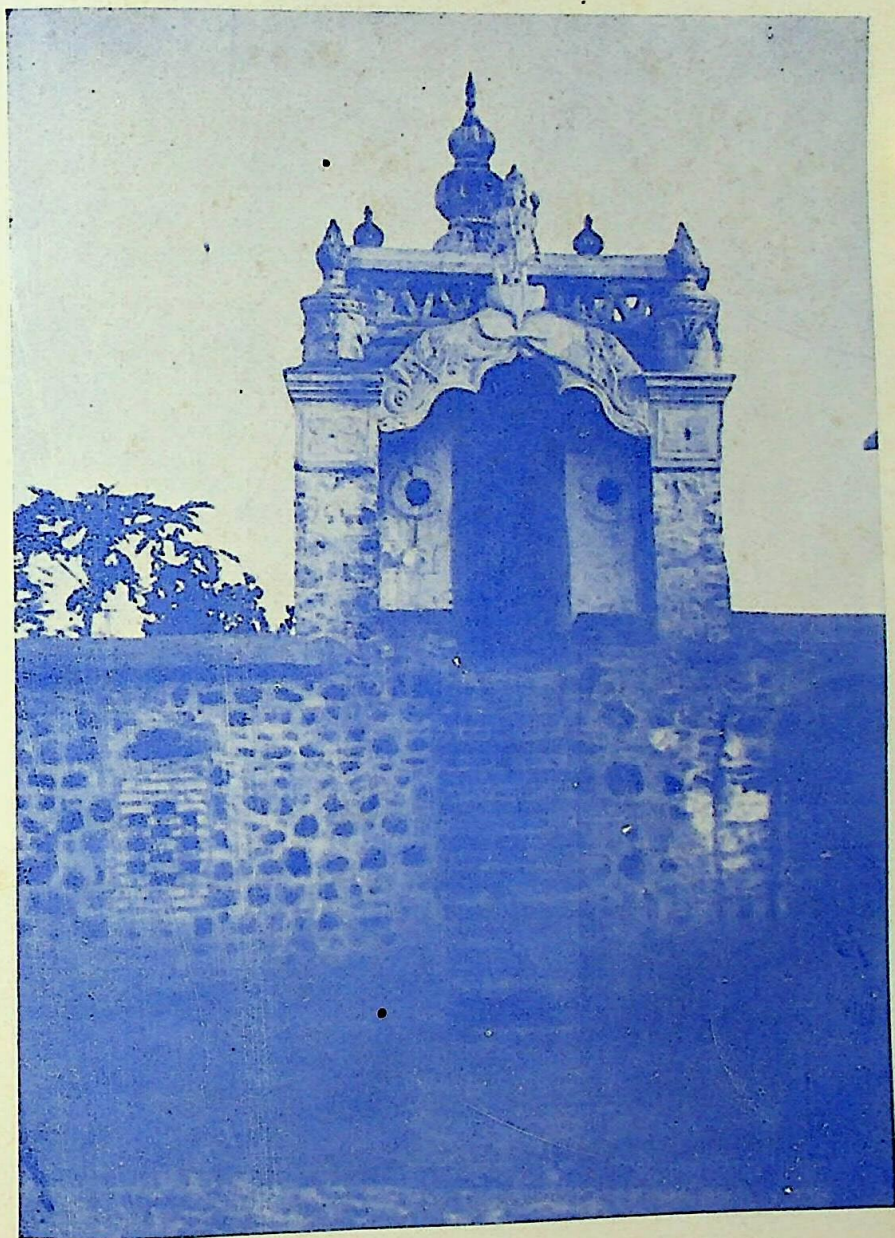
१ १०८ भगवान् श्रीचंद्र उदासीनाचार्यजी का मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

गुरू बचनी बाहर घर एको । नानक भया उदासी ॥

श्रीगुरु नानकदेव उदासीन मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

रामटेकड़ी स्थान का दिनों दिन अधिकाधिक प्रचार तीर्थरूप हो रहा था।

* मातृ भूमि को प्रस्थान *

चातुर्मास समाप्त होने बाद गुरुदेवजीने अपने स्थान को पधारने का विचार किया। साथ में अपने प्रिय शिष्य बाबा "शारदारामजी" को भी चलने के लिये कहा। बाबा शारदारामजीने गुरुदेवजी की आज्ञा शिरोधारण कर साथ में चल पडे। पूना से गुरुदेव अपने आश्रम कर्णपुर इटौरा में बाबा शारदारामजी को ले गये। जाते समय यहाँ की व्यवस्था कोठारी ब्रह्मदासजी, ईश्वरदास, गोविंद-दास, सन्त चरणदास इन लोगों की देखरेख में थी।

गुरु आश्रम को प्रणाम कर दर्शन करने के अनन्तर आप वहाँपर पाँच दिन तक रहे।

* बड़े भाईजी का दर्शन *

आपके गुरु आश्रम पर रहने की ख़बर तमाम आसपास के गाँवों में पहुँच गयी। लोग बड़े कुतूहलता के साथ देखने–दर्शन करने को आये।

आपके बड़े भाई साहब श्री अलगुरामजी भी माताजी की आज्ञा लेकर दर्शनों को आ पहुँचे।

जिस महात्मा की वर्षों से प्रशंसा सुनते सुनते

कान पवित्र होते जा रहे थे आज उसीके दर्शन करके आँखें भी तृप्त हो गयीं।

✻ कप्तानगंज में माताजी का दर्शन ✻

भाईजीने बाबा शारदारामजी से जन्म भूमि में चलने के लिये माताजी का आग्रह निवेदन किया। बाबाजीने गुरुदेव से बड़े भाई की आज्ञा निवेदन की; गुरुदेवजीने अनुमति दी।

आपने अपने ज्येष्ठ भ्राताजी का सादर सत्कार करते हुए निवेदन किया कि, माताजी के दर्शन अवश्य करूँगा और जन्म भूमि (कप्तानगंज) में ही करूँगा।

बस, गुरुदेवजी की आज्ञा प्राप्त कर बाबा शारदारामजीने अपने बड़े भाई के साथ जन्म भूमि कप्तानगंज की सरहद पर पहुँच कर उस भूमाता को प्रणाम किया। फिर आप अपने नये घर पर पहुँचे जहाँ कि पूज्य माता शची देवीजी साधुपुत्र दर्शनों की घड़ियाँ गिन रही थी। आपने पहुँचते ही माताजी के चरणों में प्रणाम किया; चरणों की धूल लेकर मस्तक पर लगायी।

माताजीने अपने प्रिय पुत्र के हाथ और मस्तक को चूम कर आशीर्वाद दिया। सारे शरीर पर हाथ फिराते हुए कहने लगी, "वत्स,

बहुत देर से दर्शन दिये तुमने! जब तुम गुरुजी के पास रहा करते थे तब तो कभी कभी दर्शन तुम्हारे हो भी जाते थे। अब तो तुम निर्मोही हो गये हो! अज्ञान रहित शुद्ध पवित्र निर्मल हो गये हो। बहुत दूर चले गये हो। अब तो तुम्हारे लिये घर बन सभी एक जैसा है।

वत्स, पंद्रह वर्षों से अनेकों साधुसन्तों को तुम्हारे बारे में पूछती रहती थी, किन्तु किसी से भी तुम्हारा पता नहीं लगा। फिर आज से दो बरस पहिले तुम्हारे गुरुदेवजीने आकर दर्शन दिये। उनके दर्शनों से मेरे सूखे हुए प्राण हरे हो गये। उन्होंने ही तुम्हारा भेद पता बताया कि :— 'शची! तुम्हारा पुत्र तो बहुत बड़ा तपस्वी है और बहुत भारी तप-साधन कर रहा है। दाक्षिण दिशा पूना शहर के पूर्व किनारे एक ऊंची पहाड़ी पर पञ्चाग्निरूप आदि अनेकानेक साधन कर रहा है। अब उसको १२ बरस हो गये हैं उस स्थान पर। अपनी तपोमय कीर्ति को फैला रहा है। मैं भी चार महीने उस स्थान पर रहकर आया हूँ। उस स्थान पर सन्त-साधुओं का मेला-सा लगा रहता है।'

बस बेटा, गुरुदेवजी के मुखारविन्द से तेरी प्रशंसा सुन कर मैं तो शिवजी के दिये हुए

आशीर्वाद को स्मरण करने लगी और प्रेममग्न हो गयी थी। फिर गुरुदेवजीने यह भी कह दिया था कि, "शचीमाता, तुम व्याकुल न होना। मैं तुम्हारे जलेश को तुम्हारे पास ला कर तुम्हें उसका दर्शन कराऊँगा। मैं तुम्हें यह कह देता हूँ —

'पुत्रवती युवती जग सोई
रघुवर भक्त जासु सुत होई॥'

— तुलसीदासजी

आज मैं तुम्हारे गुरुदेवजी के उपकार से तृप्त हो गयी हूँ, क्योंकि उन्होंने अपने वचनामृत से मेरे विरह संतप्त हृदय को सीतल सुखमय बना दिया है। उस समय मेरी शरीररूपी नय्या तुम्हारे विरहरूपी सागर के भँवर में चक्कर लगा रही थी परन्तु गुरुदेवजी के वचनरूपी पवन के झकोरे से धैर्यरूपी तट पर स्थित हो गयी।

अब आज मैं तुम्हारे दर्शनों से परिवार सहित कृतार्थ हो गयी हूँ। सारे पुरवासी जन भी तुम्हारे दर्शनों से कृतार्थ हो गये हैं।"

* माताजी की भविष्यवाणी *

"सुमिरो सुमिर सुमिर सुख पाओ।
आप जपो औरा नाम जपाओ॥"

— श्री गुरुनानक देव

प्रिय बेटा, अब मैं थोड़े ही दिनों की मेहमान हूँ। यह मिट्टी तो एक दिन छोड़नी ही है। जब तक हूँ दर्शन देते रहना। अपनी मातृभूमि को भी सुरक्षित रखना। भगवत्परायण रहते हुए जन्मभूमि के लोगों को सुरक्षित रखकर जैसा हो सके वैसा ही उपाय या विधान रच के उनको भगवत्परायण करना।"

* पुरवासियों की अपार भीड़ *

बाबा शारदारामजी माता के वचनामृत का पान करने में आनन्दमग्न थे। माताजीने अपनी भविष्यवाणी समाप्त करके आपको शुभ आशीर्वाद दिया।

अपने माताजी के आशीर्वाद को पा कर सानन्द वचनों से माताजी से कहा, "माताजी, आपके आशीर्वाद वचन दासानुदास को सफल हों।"

इसके बाद माताजी पुराने घर पर चली गयी। पुरवासी जन दण्डवत प्रणाम करके लौट गये। बड़े भाई भी भोजन करा कर आराम करने की आज्ञा दिये। आपने शान्ति से रात्री में वहाँ आराम किया। सुबह पाँच बजे पूर्व नियमित रूप

से अपनी नित्य क्रिया के बाद बाबा बन्हुदासजी के स्थान में पाठपूजा कर ही रहे थे कि फिर पुरवासियों की भीड़ विस्तार रूप से हो गयी। माताजी भी दस बजे आयी क्यों कि माताजी का मन तो पाठपूजा हरिचर्चा में ही लगता था।

※ कप्तानगंज में विश्राम ※

कप्तानगंज गाँव में ही एक महात्मा बाबा बन्हुदास का आश्रम था, आप उसीमें ठहर गये। यद्यपि आपका व्रत गाँवों में ठहरने का नहीं था किन्तु आपकी वृद्धा मातेश्वरीजी के आग्रह से आप माताजी की आज्ञा को भी भंग न कर सके क्यों कि माताजी दूर दर्शनों को नहीं आ सकती थी।

अब अपनी माताजी के दर्शन पा कर आपके सभी तीर्थ सफल हो गये। यह मातृतीर्थ बड़े सौभाग्य का था उस समय। बहुत दिनों से तमाम स्त्री पुरुषों में आपके ही गुणचर्चा चली रहती थी। स्थान स्थान और गाँव गाँव में आपकी तपश्चर्या और शुभ कीर्ति का बखान हो रहा था।

अतएव आप गाँव के ही साधुआश्रम में ठहरे। तीन दिन तक आप उस स्थान पर ठहरे। माताजी के दर्शन और हरिचर्चा में ही समय

व्यतीत हुआ करता था। दूर दूर से भी ग्रामीण लोग लुगाइयों आ आकर दर्शन सत्संग करते और आप उन्हें सत्संग महिमा और निर्गुण–सगुण भक्ति का महत्त्व बतलाया करते थे।

" निर्गुण सगुण नहिं कुछ भेदा।
बार बीच यों गावे बेदा ॥ "

—तुलसीदासजी

प्रभुभक्त सत्संग प्रेमी श्रीरामजतनजी, गोरख-प्रसादजी तथा सन्तप्रसादजी आदि भक्त मण्डली का अनुराग आपकी ओर अधिक हो गया था।

इस अमूल्य सत्संगति से सभी लोग अपने को भाग्यशाली समझते रहे।

* श्रीचन्द्र महाविद्यालय काशीजी में *

तीन रोज कप्तानगंज में रह कर बडे भाईजी के साथ गुरु आश्रम कर्णपुर इटौरा में लौट कर दस दिन गुरुदेवजी की सेवा में बितायें। पुनः गुरु-देवजी की आज्ञा पा कर काशीजी लौट आये। वहाँ श्रीचन्द्र महाविद्यालय (उदासीन महाविद्यालय) में आप ठहरे। उन दिनों इस विद्यालय के अध्यक्ष श्रीमान् पं· स्वामी दर्शनानन्दजी उदासीन थे।

आप काशीजी में रह कर नित्य प्रति विश्वनाथजी तथा अन्नपूर्णा माता और उदासीन

बड़ा आखाडा, सुमेर घाट और अस्सी घाट के सन्त महात्माओं के दर्शन करते रहे।

※ तीर्थराज प्रयाग में ※

काशी से आप विन्ध्याचल अष्टभुजा माता के दर्शन करते हुए प्रयागराज पहुँच कर कीट गंज बड़ा आखाड़ा में उतरे।

वहाँ आपने त्रिवेणी में स्नान करने के पश्चात् अछैवट (अक्षय वृक्ष) के दर्शन किये।

※ पूना पहुँचे ※

प्रयागराज से जबलपुर, खण्डवा, बऱ्हानपुर, भुसावल, कल्याण आदि स्थानों के उदासीन आश्रमों के दर्शन करते हुए तथा श्रौतमुनि (वेद) महात्माओं के दर्शन करते हुए पूना "श्रीराम-टेकड़ी उदासीनगढ़" पहुँचे।

यहाँ पहुँचकर आप पूर्ववत् नियमानुसार शान्त-चित से एकान्त निवास करने लगे।

※ मन्दिरों का पुनर्निर्माण ※

कुछ समय पश्चात् श्रीकैलासनाथजी के सामने श्रीपंचदेव मन्दिर तथा श्रीसनकादि ऋषियों का मन्दिर और साथ ही दक्षिण भाग में विठ्ठल

भगवान् और श्रीराम मंदिर और अवतारों का चित्रखचित् मण्डप (बड़ा हॉल) बड़े कमरे के रूप में बनाया गया।

इन सभी स्थान और मूर्तियों के बनाने में जो भी कुछ खर्चा हुआ सो सभी बाबा श्री शारदारामजी के चरणों की भेंट पूजा से हुआ।

* सेठ शिवनारायणजी का दान *

इसके पश्चात् प्रभुप्रेमी सेठ शिवनारायणजीने तीन एकड़ ज़मीन खरीद कर शंकर भोलेनाथ-जी के नाम पर दान कर दी। सेठजीने पहिले ही भोलेनाथजी का मन्दिर निर्माण करवाया था।

* श्रीमती चन्द्राबाई का दान *

श्रीमती बाई चन्द्रादेवीजीने भी दो एकड़ ज़मीन खरीद कर आपके नाम पर दान पत्र कर दी।

* सेठ शंकरलाल मुल्तानीजी *

श्रीमान् सेठ शंकरलाल मुल्ताजीने गौओं के रहने के लिये एक सुन्दर गोशाला निर्माण करवाया।

* उदासीनगढ़ की पूर्ति *

उदासीनगढ़ निर्माण का रचनाकार्य तो

सन १९२१ ई. से ही शुरू हो कर सुचारु रूप से चल रहा था किन्तु उदासीनगढ़ की बौंडरी की नींव सन १९३५ में पड़ी।

इस किले के निर्माणकार्य में सेठ शिवनारायणजीने चूना का सारा खर्चा दिया। बाकी खर्चा महाराजजी के चरणों की भेंट पूजा में से हुआ। इस प्रकार सन १९३६ ई., बिक्रम् संवत् १९९३, शके १८५८ में "उदासीनगढ़" की पूर्ति हुई।

आपकी यह प्रथम दैवी शक्ति का चमत्कार था जिसने कि पूना रामटेकड़ी पर पाँव रखते ही कह दिया था कि, "वत्स, तुम इसी स्थान पर रह कर उदासीनगढ़ की रचना रचो।"

बस, आपका यह संकल्प पूर्ण हुआ। अब श्रीतीर्थ रामटेकड़ी "उदासीनगढ़" नामसे प्रचलित तथा लोकप्रसिद्ध हुआ।

"जबसे मुनिजी गिरिमाँह बिराजे।
तबसे सकल सुमंगल प्रभु की इच्छा साजे॥
"उदासीनगढ़" सुन्दर रचन रचाई।
होत मुदित दर्शक जन दर्शन पाई॥
रामटेकड़ी सुंदर गिर नामा।
संवत् उनइससो सतहत्तर में किये ठामा॥

रामसंदिर और कृष्णमंदिर (रामटेकड़ी, पूना)
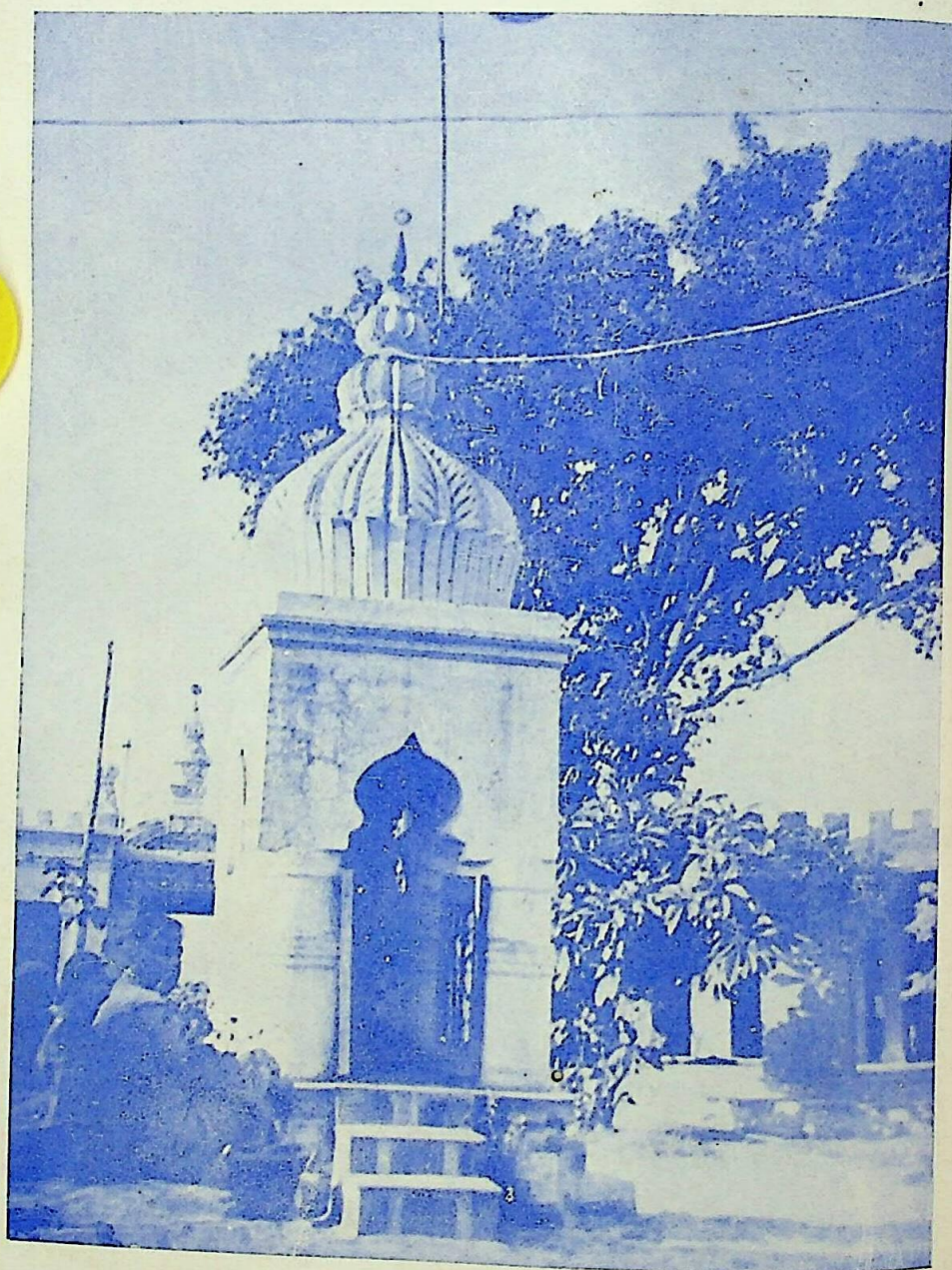
महावीर हनुमानजी का मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

ईश्वरकृपा अधिक अधिकाई।
उदासीनगढ़ सुंदर रचन रचाई॥
गढ़ अंदर दार्शिक दर्शन पाई।
होत मुदित अधिक अधिकाई॥
किंचित पुरुषार्थ अधिक फल पाई।
शारदाराम भयो ईश सहाई॥
शारदाराम पतितन पतिपाई।
जपन द्वार दर्शों ॐ प्रभुताई॥

— निर्गुण रामायण

※ उदासीनगढ़ के यात्री ※

श्रीमान् महन्त बाबा शारदारामजी के इस रामटेकड़ी स्थान पर आने पर से ही दर्शनार्थी सत्संगी भक्तजन लोगों की भीड़ रामटेकड़ी पर लगी रहती थी और भक्तजन सत्संग तथा सदुपदेश श्रवणलाभ से कृतार्थ हुआ करते थे। इसमें अनेकानेक वर्णधर्मावलम्बी गृहस्थ, साधुजन अतिथी अमीर–फ़कीर सभी आते रहते थे (और आते रहते हैं)। किन्तु उदासीनगढ़ के सम्पूर्ण निर्माणता से जनता आश्चर्यान्वित हो कर एक न एक बार उदासीनगढ़ के महाराजजी के दर्शनार्थ अवश्य आती थी। बस, एक बार जिसने इस दिव्य विभूति तथा साधु के दर्शन कर

लिया वह कई बार आ आकर भी दर्शनों से तृप्त नहीं होता रहा और हमेशा दर्शन की इच्छा करता रहा।

* अच्छा अब जाइए *

जब महाराजजीने देखा अपनेको तो गुफा से बाहर एक दो ही घण्टा रहना होता है और दर्शक-गण अधिकाधिक बढ़ते ही जा रहे हैं। और जो बैठ जाता था उसका उठने का जी नहीं चाहता था। किसीको दर्शन होते किसीको नहीं होते। ऐसी अवस्था में क्या किया जाय? इस विचार से महाराज बाबाजीने स्वयं इसका भार अपने ही ऊपर लिया कि जो कोई कुछ देर बैठ गया उसको कहा कि, "अच्छा अब आप जाइए।" इससे सभी लोग दर्शन पा सकते रहे। नहीं तो अधिक संख्या में लोग दर्शनों के बिना रह जाते थे।

यद्यपि इस उक्ति को बहुत से परीक्षक लोग नहीं समझ सके किन्तु महाराजजी तो अन्तर्यामी थे और सबके हृदयों को जानते थे। हर एक अमीर, ग़रीब सभी किस्म के लोगों को दर्शन का मौक़ा मिल सके, इसलिये आपने यह सिद्धान्त प्रगट किया।
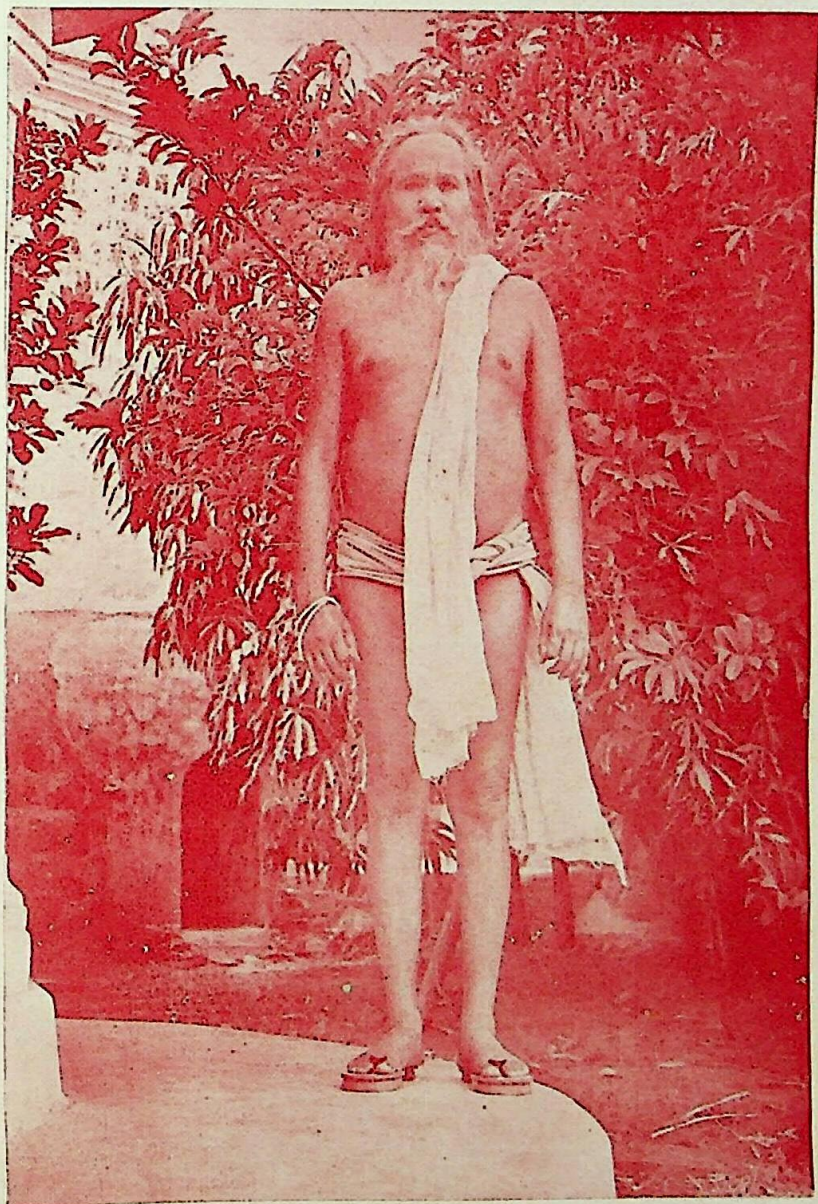
जनता को दर्शन देने के लिये बाबाजी गुफा में से बाहर निकलते समय।

बाबाजी गुफा में से बाहर निकलकर मंदिरों के दर्शन करते हुए आसन पर जाते समय।

* अंग्रेज़ लोग भी दर्शनों के लिये आये *

इस तरह उदासीनगढ़ के साधु के दर्शनों में सिक्ख, पारसी, ईसाई, हिन्दु, मुसलमान, अंग्रेज़ आदि सभी जाति-वर्ण के लोग नित्य प्रति आया करते रहे। सन १९३९ ई. में जो महासंग्राम शुरू आ तो रामटेकड़ी पहाड़ी की उतराई पर मिलिटरी के सैनिकों के लिये बड़ा भारी कैंप बनाया गया। हजारों की संख्या में सैनिक जन लड़ाई में जाने के निमित्त उस कैंप में आया जाया करते थे। जब किसी भी सैनिक को (अफ़सर हो या सिपाही) पता चलते ही साथ में पच्चीसों बाबाजी के दर्शनों को उदासीनगढ़ पर पहुँचते थे। उन लोगोंने जहाँ गये वहाँ बाबाजी की प्रशंसा-प्रचार किया। अंग्रेज़ अफ़सरों को बाबाजी के चमत्कारों के बारे में जब पता चला तो उनसे भी देखे बिना न रहा गया। चले आते थे कभी दो कभी चार-पाँच कभी अधिक। उनकी भी आपके प्रति इतनी श्रद्धा बढ़ गयी कि बहुतों का तो रोज़ महाराजजी के दर्शन करनेका नियम-सा बन गया। एक अंग्रेज़ अफ़सर (मेजर) की बाबाजी के प्रति इतनी श्रद्धा हो गयी कि उन्होंने श्रीरामटेकड़ी उदासीन-गढ़ के पहाडी के नीचे पानी का कनेक्शन दिलवाया।

* मनवाँच्छित फल प्राप्त *

जो जिस उद्देश्य और शुभ भावना से बाबाजी के चरणों में दर्शनों को आता तो महाराजजी का ध्यान यदि किसीकी ओर गया तो जान लेते थे कि यह व्यक्ति पवित्र भावना से अमुक फल को चाहती है। बस, उसीको धूना की चुंगटीभर राख दे दी कि उसका कल्याण हो गया। (वैसे आपका ध्यान अपने भजन में ही रहता था।)

कितनों की तरक्की हुई, कितने ही सन्तान इच्छुकों को सन्तानें हो गयीं, बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण घटनात्मक फल लोगों को मिले। जिसके द्वारा फल प्राप्त लोग जहाँ गये वहाँ अधिकाधिक प्रचार कर दिया और कितने ही सैनिक अफ़सर जन आपके शिष्य बन गये। आज भी आपके दर्शनों में जगह जगह से आकर उपस्थित होते हैं।

* राजा महाराजाओं का आगमन *

आपके दर्शनों और तपस्या के प्रभाव का पता कई प्रांतों और शहरों में पहुँच गया।

महाराजा ग्वालियर के नरेश, रानी तथा कोल्हापुर के महाराजा और सांगली स्टेट के महाराजा वैसे ही ईदर स्टेट के महाराजा हिंमत-

सिंग, औंध और लिमडी स्टेट की रानियाँ कई बार पूज्यपाद बाबा शारदारामजी के दर्शनार्थ श्रीरामटेकड़ी उदासीनगढ़ पर आये। अब भी जब कभी आते रहते हैं और बाबाजी से सेवा करने की आज्ञा चाहते हैं।

* प्रयागराज का कुम्भ मेला *

अब आपकी चौथी यात्रा प्रयागराज कुम्भ के मेले की हुई। साथ में आपकी सेवा में कोठारी ब्रह्मदासजी के शिष्य सन्तकुमार मुनि थे। आपने प्रयागराज पहुँचने पर अपने भेष मर्यादा के अनुसार सन्त महन्त और विद्वानों के दर्शन किये। तथा आदर्श मर्यादा के अनुसार पंचपरमेश्वर की पूजा करने के पश्चात्, आपने रामटेकड़ी उदासीनगढ़ की ओरसे महन्त जमनादासजी के संमति से " चाय " का क्षेत्र लगा दिया। यह क्षेत्र करीबन बसि दिन तक अखण्ड रहा।

* श्रौतमुनि श्रीमान् कर्तारदासजी से भेंट *

इस कुम्भ के महा पर्व पर पञ्जाब प्रान्त से लुधियाना सत्नाम टीला उदासीन आश्रम के महन्त श्रौतमुनि श्रीमान् बाबा कर्तारदासजी भी आये हुए थे। महन्तजी के साथ बाबाजी का घनिष्ठ

सम्बन्ध था इसलिये बाबाजी के लगाये हुए क्षेत्र में उन्होंने बहुत कुछ देखरेख की साहायता की। साथ ही रहने से वहाँ सत्संग के साथ नित्य प्रति ज्ञानचर्चा होती रहती थी।

श्रीमान् बाबा शारदारामजी के मुखारविन्द से उस समय की ज्ञानात्मक चर्चा का सार इस प्रकार है :— "सन्तों की सत्संग की महिमा बड़ा अगाध है। प्रारब्धबस ही किसी किसीको सन्तों का संग प्राप्त होता है।

"भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन।
सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै।"

अर्थात् बहुत जन्मों के जब भाग्य उदय होते हैं तभी मनुष्य सत्संगति को प्राप्त करता है। साधु संगति के बारे में जगद्गुरु शंकराचार्यजीने यहाँ तक कह दिया कि :—

"क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका।
भवति भवार्णवतरणे नौका॥"

एक क्षण भर की सज्जनों की संगति संसार सागर से तराने के लिये नौका का काम कर देती है।

गुरु नानक साहब अपनी बाणी में लिखते हैं कि:—

" सन्त कृपाल कृपा जे करे।
नानक संत संग निन्दक भी तरे॥
कोट अपराध साधसंग मिटे।
संत कृपा से जम से छुटे॥
साध की महिमा वेद न जाने।
जेता सुने तेता बखाने॥
सन्त तुलसीदासजी भी लिखते हैं :—
" विधि हरि हर कबि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥ "

अर्थात् सन्तों की महिमा अपार है। उनकी महिमा का कोई भी वर्णन नहीं कर पाया है। सन्त सनातन धर्म के रक्षक, दीन जन परिपालक होते हैं। सन्तों की संगति से पापी भी तर जाते हैं। " इत्यादि प्रवचन आपके मुखारविन्द से होता रहा।

इस प्रकार सन्तों की महिमा पर आपका प्रवचन होता रहा। भक्तगण, तथा सन्तजन आपके मधुर भाषण से गदगद हो जाते थे। आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे और साथ ही " धन्य है! धन्य है! " कहा करते थे। अन्त में " जय हो श्रीबाबा शारदारामजी की " ऐसा जय जयकार करते रहते थे।

* लखनऊ में *

प्रयागराज कुम्भ मेला समाप्त होने पर आप लखनऊ पधारे। कोठारी ब्रह्मदासजी के शिष्य सन्तकुमार मुनि तो आपकी सेवा में थे ही। अब साथ में सुबेदार चन्द्रसिंहजी, सेठ सूरजबलीजी, सेठ रामबलीजी आदि प्रेमीजन भी आपकी सेवा में लखनऊ उपस्थित हुए। वहाँ आप भक्त प्रेमियों के आग्रह से पाँच रोज़ तक रहे।

* हरिद्वार में *

लखनऊ से आप हरिद्वार पधारे। वहाँ गङ्गास्नान तथा दर्शन करके कनखल में उदासीन पंचायती आखाड़े में ठहरे और तीन रोज़ तक वहाँ आपने निवास किया।

* रूड़की में *

हरिद्वार से आप रूड़की आ पहुँचे, क्योंकि रूड़की में उस समय पूना से बम्बई सैपर्स, माइनर्स की पलटन पहुँची हुई थी। उसमें सुबेदार मेजर भुमजसिंह, जमादार हरिसिंह आदि अनेकों अफ़सर, सिपाही जो कि बाबाजी को जानते थे सभी आये हुए थे। उन्हींके आग्रह से आप वहाँ पहुँचे। आप नहर के किनारे धूना जमाकर बैठ

गये। सेवकोंने पलटनकी कैंप में चलने के लिये बड़ा आग्रह किया किन्तु आप अपने व्रत के दृढ़ थे। जंगल और मठों के सिवाय गाँवों–बस्तियों में नहीं ठहरते थे। रूड़की शहर की जनता को आपकी यात्रा का पता चला तो वहाँकी जनता बड़े भक्तिभाव से आपके दर्शनार्थ उमड़ पडी।

वहाँपर आपने जो प्रवचन–धर्मोपदेश किये वे समाज की इच्छानुसार, वेद–वेदान्त, उपनिषद् आदि धर्मशास्त्रों से हुआ करते थे। आपके धर्मोपदेशामृत से भक्तजन अपनी भक्ति में स्थिरता प्राप्त करते थे।

* नास्तिक से पल्ला पड़ा *

बाबाजी में दैवी शक्ति का महान् चमत्कार तो सर्वप्रथम यह है कि जो कोई भी मनुष्य आपसे कुछ भी किसी शास्त्र का प्रश्न करता तो आप बड़े शान्त चित्त से, स्पष्टता तथा अनेक प्रमाणों से शंका का निवारण करते थे। (यह सिद्धि आज भी प्रत्यक्ष है)।

एक दिन एक नास्तिक महोदयने बाबाजी से सनातन धर्म के विरोध में तथा साधु–सन्तों के विरोध में तरह तरह के प्रश्न किये। वह स्वतः कहता था और स्वतः समाधान करता था। फिर

उसने बाबाजी से इस बात को सिद्ध करने लगा कि, "सृष्टि आप ही बनती है, आप ही नाश हो जाती है। इसका बनाने बिगाड़ने वाला कोई नहीं है" आदि।

बाबाजीने हँसते हुए उसे उत्तर में तरह तरह से समझाया, परन्तु वह तो पण्डित मानी था। अन्त में बाबाजीने कहा:—

"भाई, घड़े को बनानेवाला कौन है?"

नास्तिक बोला:—कुम्हार।

बाबाजी बोले:—वस्त्रों को बनानेवाला कौन है?

नास्तिक बोला:—जुलाह।

बाबाजी:—तो ये घड़ा और वस्त्र आप ही क्यों नहीं बन जाते? और संसार के हर एक विधान को आप ही बन जाना चाहिये। कुम्हार और जुलाह की क्या आवश्यकता है? संसार की अनेक यंत्र या भवन आदि बनाने की क्या आवश्यकता है? इन्हें तो आप हीं बन जाना चाहिये।

नास्तिक:—ऐसा कैसा हो सकता है?

बाबाजी:—फिर ऐसा नहीं हो सकता तो सृष्टि भी आप ही नहीं बन सकती। उसका बनाने बिगाड़ने वाला कोई न कोई अवश्य है।

नास्तिकः—तो फिर कौन है इसका बनानेवाला?

बाबाजीः— जिसे नास्तिक जन नहीं पहिचानते हैं।

नास्तिकः—आखिर वह है कौन?

बाबाजीः—सर्वव्यापी, अखण्ड ब्रह्म, सच्चिदानन्द परमात्मा।

नास्तिकः—तो वह दिखायी क्यों नहीं देता?

बाबाजीः—अज्ञानी नास्तिकों को कैसे दिखायी देगा? ज्ञानी उसे सर्वव्यापी देखते हैं। भक्त जहाँ चाहे वहाँ देख सकता है।

नास्तिकः—उसका रूप क्या है?

बाबाजीः— उसका रूप सारा संसार है— आप हैं हम हैं, परन्तु वह इतना सूक्ष्म है कि वायु जिस तरह सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी देखने में नहीं आता परन्तु स्पर्शता से वह सर्वत्र विद्यमान है। इसी प्रकार ईश्वर भी सर्वत्र विद्यमान है। नास्तिकने जब तरह तरह के प्रमाण सुने तो शर्मिन्दा होकर महाराजजी के चरणों में पड़ कर क्षमा प्रार्थना करने लगा।

उसके नास्तिकता के सारे बिचार बदल कर आस्तिकता में समागये।

* सत्नाम टीला *

एक महीना रूड़की रहने के पश्चात् बाबाजी अमरनाथ की यात्रा के निमित्त पञ्जाब की ओर चल दिये। बर्नाला स्टेशन पर उतर कर "सत्नाम टीला" उदासीन आश्रम पर बाबा कर्तारदासजी के यहाँ ठहरे। बाबा कर्तारदासजीने आपका विशेष स्वागत सम्मान किया और कुछ दिन ठहरने के लिये बड़ा आग्रह किया।

आप सत्संग दिनचर्या में वहाँ बीस रोज़ तक रहे। यहाँकी जनता भी बाबा शारदारामजी के आगमन सुनकर आपके दर्शन-प्रवचनादि से विशेष प्रभावित हुई। महाराजजी के दर्शनों से कृतार्थ हुई।

जब आपने प्रस्थान किया उस समय जनता बार बार विनय प्रार्थना करने लगी कि, "महाराज, आप यहाँपर बार बार आने की कृपा करें। अपने उपदेशामृत से हमारा उद्धार करते रहिए। जनता की तीव्र इच्छा और प्रार्थना को मान कर सत्नाम टीला पर तीन बार आप पधारे हैं।

जनता के अथाह प्रेम से आपकी बड़ी प्रसन्नता हुई।

चलते समय बाबा कर्तारदासजीने रथ की

सवारी सजा कर महाराजजी को उसमें बिठा कर मोटर अड्डे तक पहुँचा दिया।

* अमृतसर पधारे *

आप वहाँसे मोटर में बैठकर मोगामण्डी गये। वहाँसे रेलद्वारा फिरोजपुर होते हुए अमृतसर पहुँचे। अमृतसर की यह यात्रा आपकी तीसरी थी। वहाँ उदासीन सिंघल वाले आखाड़े में तीसरी बार जाकर ठहरे। वहाँके श्रीमान् महन्त सन्तरामजी बड़ी शान्त मूर्ति, दयालु स्वभाव के हैं। बाबाजी से बहुत प्रेम रखते थे। इसलिये आपने वहाँ चार रोज़ निवास किया।

वहाँ रह कर आपने प्रत्येक मन्दिर, गुरुद्वारा तथा दरबार साहब आदि के दर्शन किये।

* सियालकोट में *

अमृतसर से आप सियालकोट पधारे। वहाँ सुबेदार त्रिलोकसिंहजी डोगरा महाशय के आग्रह से आपने पंद्रह दिन उनके बंगले पर विश्राम किया। वहाँ रह कर आपने "बेर साहब" (जहाँ गुरु नानकदेवने तप किये हैं)। और "पूरणभक्त" (जहाँ पूरणभक्त कुवे में रहे)

इन स्थानों के दर्शन किये। वर्तमान समय वहाँपर नाथसम्प्रदाय के सन्त रहते हैं।

सियालकोट में सिक्खों की पलटन थी। उसमें बाबाजी के भक्त, प्रेमी, अफ़सर, सिपाही आदि भी थे। उन्होंने जब आपका आगमन सुना तो जमादार सन्तसिंहजी को भेजकर पलटन में चलने के लिये विशेष आग्रह पूर्वक विनय की।

वे लोग बड़े स्वागत सम्मान के साथ बाबाजी को अपनी पलटन में ले गये। वहाँ आपके दर्शनों के लिये सैनिकों की बड़ी भीड लग गयी। बाबाजीने अपने प्रवचन से उन्हें शान्ति दी और कहा कि, "आप लोग तो देश के हितैशी हो। सच्चे राष्ट्रसेवक, धर्मसेवक, जनसेवक आप ही तो हैं"।

यहाँपर महाराजजी का विशेष सम्मान हुआ। वहाँ पास में ही सरदार लोगों का छन्नी गाँव था। वहाँ सरदार कैप्टन भगतसिंहजी बाबाजी के सेवक थे। उन्होंने आपके आनेका समाचार सुना तो बडी विनय से महाराजजी को अपने स्थान छन्नी गाँव में ले गये।

वहाँ आपके ठहरने के लिये गाँव से दूर बहुत बड़े बगीचे में प्रबन्ध कर दिया गया। दर्शनार्थियों की अपार भीडने महाराजजी को पंद्रह

दिन उस स्थान पर रोक दिया। महाराज बाबाजी उन्हें दर्शनामृत और सदुपदेशामृत से तृप्त करते रहे।

* कोटली टाँडा में *

छन्नी गाँव से " कोटली टाँडा " गाँव पास में ही था। वहाँके यात्री भी आपकी यात्रा में आते थे। एक दिन उन्होंने आपसे अपने गाँव में चलने के लिये आग्रह किया। महाराजजी एक रोज़ वहाँ भी पधारे। वहाँ भी एक जमादार साहब महाराजजी के सेवक थे। उन्होंने आपका ठहरने का प्रबन्ध किया।

* कश्मीर यात्रा में चले *

वहाँसे आप जम्मू पहुँचे। वहाँपर श्रीरघु-नाथजी के दर्शन करके मोटर गाडी द्वारा आप कश्मीर की यात्रा में चल दिये। जम्मु में आप आठ दिन तक रहकर नित्य मंदिरों का दर्शन करते रहे। जम्मु में एकीस मंदिर के शिखर हैं, लाखों शालीग्राम की प्रतिमाओं का दर्शन मिलता हैं। यहाँपर प्रत्येक अवतार का एक एक मंदिर ऐसा दशावतार का सुंदर दर्शनीय मंदिर है।

जम्मू से कश्मीर जाते समय मोटर की खराबी से आधे रास्ते में ही रात हो गयी। "अब आप ठहरें कहाँ ?" यह विचार मन में आया ही था कि पता चला कि कुछ दूरी पर श्रौतमुनि का उदासीन आश्रम है।

बस आप वहाँ पहुँचे, विश्राम किया। अन्य यात्री और भी जो साथ में थे वे भी वहीं ठहरे। उस आश्रम पर ठहरने से सबको बडी शान्ति मिली। आश्रम बहुत ही रमणीय और चित्ताकर्षक था। उसमें रहने ठहरने का अच्छा प्रबन्ध था।

* स्मशान घाट पर *

जब आप प्रातःकाल उठे तो अपनी नित्य-क्रिया करने के बाद मोटर द्वारा आगे रवाना हुए। बहुत दूर चलने पर रास्ते में पुलिस चौकी पर मोटर रोक दी गयी। क्यों कि यहाँपर पुलिस द्वारा यात्रियों की तलाशी होती थी। इसीलिये सब यात्री मोटर से उतर पडे। पता चला कि यहाँ-पर मोटर एक घण्टा ठहरती है। इसलिए लिए बाबाजी मोटर में से उतर कर "अब एक घण्टा कहाँ ठहरे" ऐसा विचार कर रहे थे, तो कुछ दूरी पर देखा तो एक पुल दिखा दिया। उसके नीचे

छोटी-सी नदी थी। बस, आप वहींपर पुलके पास चल कर ठहर गये।

कुछ दूरी पर गाँव था। उधर से लोग आया जाया करते थे। बाबाजी के सामने एक खाशा भीड़ लग गयी। लोग सोचने लगे कि इस स्मशान में यह विचित्र योगी कौन ठहर गया। लोगोंने गाँव में चलने का आग्रह किया, किन्तु बाबाजी के साथ वाले साधुने बता दिया कि "हम तो उस मोटर से यात्रा में जा रहे हैं। हम ठहरने वाले नहीं हैं।"

* ग्रामीणों को आदेश *

ग्रामीण लोगोंने उस साधु से कहा, "महाराज, आप लोगों को तो मोटर में नहीं चलना चाहिये; अगर आप पैदल यात्रा करेंगे तो हम ग्रामीण लोग आप सन्त-साधुओं के दर्शनों से कृतार्थ होते रहेंगे।

ग्रामीण जनों की श्रद्धा भक्ति को देखकर बाबाजी बोले, "भक्तों! अगर आप लोगों की इसी प्रकार सन्त-साधुओं पर श्रद्धा भक्ति रहेगी तो आप लोगों का कल्याण होने में कोई सन्देह नहीं है। आप लोग प्रभु परमात्मा के प्यारे हैं। उसी के नाम को जपते रहिये। अतिथी-अभ्यागत सन्त-

साधुओं की सेवा–सुश्रूषा में ध्यान रखिये। सत्यता और परोपकार में ध्यान देते हुए देश धर्म की रक्षा में तत्पर रहें।

* कश्मीर पहुँच गये *

उस ग्रामीण जनता के लाये हुए फल–मेवा आदि प्रसाद पाकर आप मोटर में बैठ गये। जनता-ने वहाँ तक जय जयकार करते हुए आपको मोटर से बिदा किया।

अब आप करीब शाम के पाँच बजे कश्मीर पहुँचे। वहाँपर " श्रीचन्द्र चुनार " एक प्रसिद्ध स्थान है। बड़ी ही रमणीय जगह है। आप वहाँपर भगवान् श्रीचन्द्रजी का धूना साहब, बैठने का चबूतरा तथा भगवान् की प्रतिमा के दर्शन और " कल्पवृक्ष " के दर्शन करके गदगद हो गये।

* कल्पवृक्ष *

यह कल्पवृक्ष वही है जब कि प्राचीन काल में भगवान् श्रीचन्द्रमुनिजीने अपनी धूना से एक जलती हुई लकड़ी निकालकर ज़मीन में गाढ़ दी तो वह तुरन्त ही एक हरा भरा वृक्ष के रूप में शोभा देने लगा। वहाँ वृक्ष के अग्रभाग में जली

हुई लकड़ी अभी भी विद्यमान है। भगवान् श्रीचन्द्रमुनिजीने यहाँपर संस्कृत विद्या की अध्ययन की थी। भगवान् श्रीचन्द्रमुनिजी अधिकतर इसी स्थान पर रहे। उन्होंने अपने तपोबल, तेज, शक्ति से हजारों जनों का उद्धार किया था। भारतवर्ष की व्यवस्था उन दिनों बड़ी ही डामाँडोल थी। आपने उस समय बहुत तरह के प्रयत्नों से देश धर्म की रक्षा की थी। उस समय आपने देश, धर्म, समाज के हितार्थ में जो जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये वे आज भी इतिहास के पन्नों में अङ्कित हैं।

आज भी इस स्थान के दर्शन करने से जीवन में नया उत्साह उत्पन्न होता है तथा सत्य की ओर विचार दृढ़ होते हैं। उस समय इस स्थान की शोभा महन्त बाबा हरनामदासजी बढ़ा रहे थे।

महन्त हरनामदासजी अयोध्या निवासी रानूपाली श्रीमान् महन्त बाबा माधोरामजी के शिष्य थे। बाबा शारदारामजी के आप आजा गुरु लगते थे। आपके दर्शनों से बाबाजी को अधिक प्रसन्नता हुई। कुशल समाचार होने के बाद आपने यथाशक्ति भेंट (द्रव्य), रोट प्रसाद का

भोग भगवान् को लगाने के लिये निवेदन की। महन्त हरनामदासजीने भेंट स्वीकृत कर, अपने शिष्य गोविन्दराम से बाबाजी का धूना आसन लगाने को कहा। आपने वहाँ तीन दिन निवास किया।

* रबेलसिंहजी को कृतार्थ किया *

दो मील की दूरी पर एक गाँव में सुबेदार त्रिलोकसिंहजी का भाई रबेलसिंहजी रहते थे। उन्होंने बाबाजी का आगमन सुना तो चरणों आकर प्रणाम किया और गाँव में सम्मानपूर्वक बाबाजी को ले जाकर एक सुन्दर बगीचे में ठहरा दिया। बस, महाराजजी का धूना जम गया। दर्शनार्थियों का ताँता बन्ध गया। राजकर्मचारियों से लेकर अमीर-ग़रीब फ़कीर सभी तरह के लोग आपके दर्शनार्थ आकर कृतार्थ हुए। रबेलसिंहजी सत्संगप्रेमी थे इसलिये उन्होंने महाराजजी से उपदेशामृत सुनाने की प्रार्थना की। महाराजजी का स्वभाव तो हरिचर्चा-सत्संग का था ही। बस होने लगी अमृतवाणी की बर्षा। श्रोतागण अपने को धन्य समझते थे और बाबाजी की जय जयकार करते थे।

इस स्थान पर कभी कभी वेददर्शनाचार्य स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी भी पहुँच कर प्रवचन करते रहते हैं। उनकी चर्चा भी लोगों के मुख पर थी।

* हिन्दु धर्म ही सनातन धर्म है *

स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी वेदवेदान्ताचार्य दर्शनाचार्य ब्रह्मवेत्ता तपोनिष्ठ हैं। सनातन हिन्दु धर्म पर आप अटल विश्वास रखते हैं। आपका कहना है कि, "हमारा हिन्दु धर्म ही एक ऐसा सनातन धर्म है जिसमें भगवान् भी अवतार धारण करने की शक्ति रखते हैं।

इस सनातन धर्म में समय समय पर भगवान् अवतार लेकर दुष्ट और अत्याचारियों का संहार करते रहते हैं और साधुजन–भक्तजनों की रक्षा करते हुए पृथ्वी का भार उतारते हैं।

हिन्दु धर्मावलम्बियों के सिवाय अन्य धर्मा-वलम्बी कभी भी ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते कि हमारे धर्म में भी भगवान् अवतार धारण कर सकते हैं!"

इस प्रकार स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी के कहे हुए वचनों को वहाँके अफ़सर लोग महाराज बाबाजी से कह सुनाते थे। महाराजजी को सुन कर बड़ी ही प्रसन्नता होती थी।

* हमारा धर्म *

लोगों की निष्ठा को स्थिर रखने के लिये सद्गुरु बाबा शारदारामजी भी अपने गीतादि धर्मशास्त्रों के प्रवचनों के साथ साथ "हमारा क्या धर्म है" इस विषय पर कहते थे कि, "हम मनुष्य हैं। संसार में चौरासी लाख योनियों में से मनुष्ययोनि ही श्रेष्ठ है। यद्यपि पशु चलता, फिरता, खाता, सोता, रहता है; परन्तु उसे अपने धर्म का ज्ञान नहीं है कि, 'मैं कौन हूँ, मुझे क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये' आदि। पशु तो तीन ही बातें जानता है—खाना, सोना, विषयभोग। इन तीनों में भी उसे ज्ञान नहीं रहता कि, किसके साथ विषयभोग करना चाहिये, किसके साथ नहीं करना चाहिये। वह जिस मातासे पैदा होता है, जवानी में उसीसे विषयभोग कर लेता है। इसी प्रकार उससे अनेक घृणित और निन्दनीय कर्म होते रहते हैं। इसीलिये तो उसे "पशु" कहा गया है।

यदि पशु की तरह मनुष्य भी पशुवत् व्यवहार करने लगे तो उसे तो पशु से भी गया-गुजरा नीच कहना चाहिये। क्यों कि पशु तो पशुयोनि में होकर अज्ञानता से निन्दनीय दुर्व्यवहार करता है। परन्तु मनुष्य तो शुद्ध ज्ञानात्मक

मनुष्ययोनि है। मनुष्य होकर भी निन्दनीय कर्म करे तो उसे पशु से भी अधिकतर जड़ समझना चाहिये।

परमात्माने हमें मनुष्ययोनि अच्छे ही कर्म करने के लिये दी है। हमें "मानवता" प्रदान की है न कि "पशुता"। पशु में पशुता होती है और मनुष्य में मानवता; परन्तु जो अज्ञानी अपनी मानवता को खो बैठता है वह जन्म जन्मान्तरों के चक्करों में भटकता रहता है। परन्तु जिसके पास "मानवता" है वह उसका उपयोग देश, धर्म, राष्ट्र, समाज, आदि के सेवा में करता है।

इसलिये जो मनुष्य मानवता का सदुपयोग करना जानता है वही "मानव धर्म" को जानता है। क्यों कि "सत्य" सनातन धर्म है।"

सद्गुरु बाबा शारदारामजी के सदुपदेशों से वहाँकी जनता कृतार्थ हुई। वहाँकी जनता तो स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी के प्रवचनों से प्रभावित थी ही। उन्हें तो यह पूरा विश्वास था कि हिन्दु धर्म ही आदि धर्म है, अन्य धर्म तो इस सनातन धर्म से निकली हुई शाखाएँ हैं।

परन्तु बाबाजी के उपदेशों से और भी वहाँ

के लोग प्रभावित हुए, और आपकी भूरि भूरि प्रशंसा करते रहे।

आज भी वहाँकी जनता अपने धर्म में स्थिर रहकर साधु-सन्तों पर श्रद्धा विश्वास रखती है।

* अमरनाथ पहुँचे *

इस प्रकार कश्मीर में आपका समय अच्छी ज्ञानचर्चा में समाप्त हुआ।

आपको पता चला कि अब शीघ्र ही आषाढ़ी पौर्णिमा को ही अमरनाथ की यात्रा लगनेवाली है। आपके साथ उन्नाव ज़िले के यात्री थे। आप उनके साथ ही अमरनाथ की ओर चल पडे। कश्मीर से रवेलसिंहजी के स्थान से मोटर में चल कर पहलगाँव पहुँचे। वहाँसे पैदल ही चन्द्रागढ़ी की चढ़ाई चढ़े। वहाँसे शेष तालाब होते हुए आप पंचतरणी पहुँचे। इससे आगे बर्फ की अधिकता के कारण आप आगे नहीं पहुँच सके। पंचतरणी में आप आषाढ़ शुक्ल चौदस को तीन बजे पहुँचे और घोडे की सवारी करके उसी रोज़ गुरु शिष्य दोनों अमरनाथजी का दर्शन करके वापस आ गये। पौर्णमासी को भक्तप्रेमी जनाने आपको सवारी का प्रबन्ध कर दिया। फिर आप ठीक पर्व पर अमरनाथजी के

दर्शनों में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर आपने भगवान् भूतनाथजी के लिङ्गदर्शन किये। भेंट-पूजा कर आरती प्रार्थना की। चौदस और पौर्णमासी दोनो दिन भगवान के दर्शन का लाभ आपने प्राप्त किये।

* अमरनाथ की विशेषता *

इस अमर भूमिं में एक गुफा है। उसमें भगवान् शंकरजी का लिङ्ग है। उस लिङ्ग कि रचना आप ही होती है और आप ही फिर जल स्वरूप हो जाती है। शुक्ल पक्ष में शिवलिङ्ग पूर्ण दिखायी देता है और कृष्ण पक्ष में जलरूप हो जाता हैं। इस कलिकाल में भी भगवान् शंकरजी का यह विशेष चमत्कार अमरनाथ में देखने को मिलता है। यहाँपर बाबाजी को अनेकों विचित्र से विचित्र प्रभाव देखने को मिले।

अमरनाथ से आप लौट कर शेष तालाब होते हुए क्रमशः पहलगाँव होकर कश्मीर पहुँचे। वहाँसे रबेलसिंहजी के भाई गंगासिंहजीने आपको मोटर सवारी में बिठा दिया। आप रास्ते में दो एक स्थानों में विश्राम करते हुए "पञ्जा" साहेब के दर्शनार्थ चले आये।

* पञ्जा साहेब *

प्राचीन समय उदासीन गुरु नानकदेवजी इस स्थान पर निवास करते थे। और इसी पहाडी के ऊपर

के लोग प्रभावित हुए, और आपकी भूरि भूरि प्रशंसा करते रहे।

आज भी वहाँकी जनता अपने धर्म में स्थिर रहकर साधु-सन्तों पर श्रद्धा विश्वास रखती है।

* अमरनाथ पहुँचे *

इस प्रकार कश्मीर में आपका समय अच्छी ज्ञानचर्चा में समाप्त हुआ।

आपको पता चला कि अब शीघ्र ही आषाढ़ी पौर्णिमा को ही अमरनाथ की यात्रा लगनेवाली है। आपके साथ उन्नाव ज़िले के यात्री थे। आप उनके साथ ही अमरनाथ की ओर चल पडे। कश्मीर से रवेलसिंहजी के स्थान से मोटर में चल कर पहलगाँव पहुँचे। वहाँसे पैदल ही चन्द्रागढ़ी की चढ़ाई चढ़े। वहाँसे शेष तालाब होते हुए आप पंचतरणी पहुँचे। इससे आगे बर्फ की अधिकता के कारण आप आगे नहीं पहुँच सके। पंचतरणी में आप आषाढ़ शुक्ल चौदस को तीन बजे पहुँचे और घोडे की सवारी करके उसी रोज़ गुरु शिष्य दोनों अमरनाथजी का दर्शन करके वापस आ गये। पौर्णमासी को भक्तप्रेमी जनाने आपको सवारी का प्रबन्ध कर दिया। फिर आप ठीक पर्व पर अमरनाथजी के

दर्शनों में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर आपने भगवान् भूतनाथजी के लिङ्गदर्शन किये। भेंट–पूजा कर आरती प्रार्थना की। चौदस और पौर्णमासी दोनो दिन भगवान के दर्शन का लाभ आपने प्राप्त किये।

* अमरनाथ की विशेषता *

इस अमर भूमि में एक गुफा है। उसमें भगवान् शंकरजी का लिङ्ग है। उस लिङ्ग कि रचना आप ही होती है और आप ही फिर जल स्वरूप हो जाती है। शुक्ल पक्ष में शिवलिङ्ग पूर्ण दिखायी देता है और कृष्ण पक्ष में जलरूप हो जाता हैं। इस कलिकाल में भी भगवान् शंकरजी का यह विशेष चमत्कार अमरनाथ में देखने को मिलता है। यहाँपर बाबाजी को अनेकों विचित्र से विचित्र प्रभाव देखने को मिले।

अमरनाथ से आप लौट कर शेष तालाब होते हुए क्रमशः पहलगाँव होकर कश्मीर पहुँचे। वहाँसे रवेलसिंहजी के भाई गंगासिंहजीने आपको मोटर सवारी में बिठा दिया। आप रास्ते में दो एक स्थानों में विश्राम करते हुए " पञ्जा " साहेब के दर्शनार्थ चले आये।

* पञ्जा साहेब *

प्राचीन समय उदासीन गुरु नानकदेवजी इस स्थान पर निवास करते थे। और इसी पहाडी के ऊपर

एक अद्भुत चमत्कारी मुसलमान फ़कीर भी रहता था। और पहाड़ी के ऊपर ही पानी का तालाब़ था। एक दिन गुरुजी के सेवक बालामरदाना पानी के लिये पहाड़ी के ऊपर तालाब़ पर गया तो मुसलमान फ़कीरने पानी के बारे में बाद-बिवाद करना शुरू कर दिया। पानी नहीं मिला। सेवकने आकर गुरुदेवजी से सारा किस्सा कह सुनाया। गुरुजीने झट अपनी योगशक्ति से पानी का झरा अपने पास खींच लिया।

मुसलमान फ़कीर को बड़ा क्रोध चढ़ा। उसने पहाड़ ही नीचे ढकेल दिया। अब क्या था। गुरु नानकदेवजीने अपने हाथ के पञ्जे से पहाड़ को रोक कर वहींपर स्थापित कर दिया। बस, पहाड़ पर गुरुजी का पञ्जा लगने से उस पहाड़ का नाम "पञ्जा साहब" पड गया। पत्थर पर पञ्जा के जो चिन्ह पड गये तो उस पत्थर को ही सिक्ख लोग मूर्तिवत् पूजा करते हैं।

यदि नवीन मत-प्रणाली के सिक्ख लोग इस बात को नहीं मानते हों परन्तु उस ज़माने में सिक्ख लोग उस पहाड़ को मूर्तिवत् मानते रहे। आज भी बहुत से मानते ही हैं।

पञ्जा साहब की देव प्रतिमा के दर्शन करने

के अनन्तर बाबाजीने गुरु नानक तालाब़ के दर्शन किये।

* रावलपिण्डी पहुँचे *

रावलपिण्डी में सिक्ख रिजमेंट (पलटन) पहुँची हुई थी जिसमें कि अधिकतर बाबाजी के ही सेवक थे। उनका आग्रह बहुत दिनों से बाबाजी को रावलपिण्डी आने का था। इस हेतु आप (बाबाजी) पञ्जा साहब से सीधे रावलपिण्डी आ गये। सर्वप्रथम जमादार सन्तासिंहजीने आपकी सेवा में भाग लिया। फिर सैनिकों का आग्रह तो आपको पूरा करना ही था, इसलिये आपको सिक्ख पलटन के सरदार (अफ़सर) लोग अपने गुरुद्वारा में ले गये। वहाँ तमाम सैनिकोंने अपनी सेवा का परिचय दिया। महाराजजीने उन लोगों को ग्रन्थसाहब की गुरुबाणी से मुग्ध और कृतार्थ किया। पास ही में मिलिटरी का एक दूसरा कैंप था, वहाँके अफ़सर तथा सैनिकों को पता चला कि, "पूना रामटेकड़ी उदासीनगढ़" के महन्त बाबा शारदारामजी यहाँ पधारे हैं तो वे भी दर्शनार्थ आये। उन्होंने बड़ी विनय की कि, "महाराज, हमारे कैंप में भी चरण रखने की

कृपा करें।" महाराजजी मुस्कराये और उन्हें स्वीकृति दे दी। आप तीन रोज़ के बाद उनके कैंप में पहुँचे; फिर वहाँसे कैप्टन गाज़ीरामजीने आपको अपने बंगले के पास बगीचे में मण्डप और धूना लगाकर ठहराया।

बस, जंगल में मंगल होने लगा। वहीं कथा-वार्तादि सत्संग होता रहा। सैंकड़ों की संख्या में दर्शनार्थी आकर कृतार्थ हुये। पूना से गये हुए जो भी सैनिक आपका नाम सुनते तो तुरन्त ही दर्शनों में आते।

* दमियाल गाँव में *

मिलिटरी कैम्प से कुछ दूरी पर दमियाल गाँव में बाबाजी के सेवक सरदार लोगों को बाबाजी के आगमन का पता चला तो वे भी चले आये। आपको गाँव में ले चलने को उन लोगों के आग्रह को भी आप टाल नहीं सके। अतः अब आप मिलिटरी कैम्प से दमियाल गाँव पहुँचे।

वहाँ भी एक सुन्दर उदासीन आश्रम था। उसमें ही आपको ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। अब क्या था, लोगों का ताँता-सा बन्ध गया दर्शनों के लिये। रोज़ मेला लगा रहता था। नित्य एक घण्टा सत्संग कथामृत की बर्षा होती

थी। जनसमाज का आग्रह और यात्री गणों की भीड़ देखकर आप भी उन्हें निरास न कर सके। अतः दस दिन तक अप अपने प्रवचनादि सदुपदेश से उन्हें तृप्त करते रहे। दस दिन के बाद आप फिर उस गाँव से रावलपिण्डी ही आ गये।

※ कटाक्षराज में ※

रावलपिण्डी से जब आप चले तो बहुत से सेवक भी आपके साथ बहुत दूर तक गाडी में पहुँचाने गये। उन लोगोंने बड़े स्वागत सम्मान के साथ आपको वहाँसे बिदा किया।

आप वहाँसे कटाक्षराज आ पहुँचे। वहाँ एक तालाब के किनारे सुन्दर रमणीय उदासीन आश्रम था। आप वहीं ठहर गये। वहाँके महन्तजी बड़े शान्त और उदार थे। उनका अतिथी सत्कार का नियम विशेष प्रशंसनीय था। आपके आश्रम में पुकार होती थी कि, " कोई भी भूखा प्यासा हो वह तृप्ति से भोजन कर सकता है। " इससे मालूम होता है की, " उदासीन साम्प्रदायिक " लोग उदारात्मा होते हैं। कथा सत्संग ज्ञानोपदेश में बड़े निपुण होते हैं। आज भी उदासीनों का पूर्ववत् संस्कार चल ही रहा है।

आप जब महन्तजी से मिले तो उन्होंने आपका विशेष आदर सत्कार किया। कुशल समाचार होने के अतन्तर एकान्त स्थान आपको ठहरने के लिये दिया।

* पृथ्वी का नेत्र *

आपने थोडी विश्रान्ति के अनन्तर भगवान् शेषनाग तथा पाण्डव और देवमूर्तियों के दर्शन किये। उस आश्रम में जो तालाब है उसे विष्णु भगवान् विराटरूप के या पृथ्वी का पहला नेत्र मानते हैं। कटाक्षराज में बायाँ नेत्र और पुष्कर क्षेत्र में दाहिना नेत्र। पुराणों में इनका विषद रूप से वर्णन मिलता है।

आपने सब स्थानों के दर्शन करने के पश्चात् वहाँ कड़ा प्रसाद का भोग लगाया और भेंट–पुष्प अर्पण किये।

* मुल्तान पहुँचे *

कटाक्षराज से आप मुल्तान पहुँचे। वहाँ एक वैष्णव सम्प्रदाय का आश्रम था। यह भक्त प्रल्हाद की जन्मभूमि करके प्रसिद्ध है। आश्रम के महन्तजी से मिलने पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने आपको ठहरने का विशेष आग्रह किया।

आप वहाँ रहकर नृसिंह भगवानादिक देव-मूर्तियों और सन्त–साधुओं के दर्शनों के अनन्तर चौथे दिन सिन्ध की तरफ़ सिधारे।

* पुनः श्रीतीर्थ साधुबेलाश्रम में *

इस प्रकार सिन्ध का भी भ्रमण करते हुए श्रीतीर्थ साधुबेला आश्रम में आ पहुँचे। यहाँ आप चार दिन तक रहे। वहाँसे आप शिकारपुर चले गये।

* सेठ जगुमलसे भेंट *

जब आप शिकारपुर पहुँचे तो बधाते के महन्त श्री कर्तारदासजी से अनायास भेंट हो गयी। महन्तजी भी यात्रा करते हुए साधुबेला आश्रम जा रहे थे। महन्तजी के दर्शनों से बाबाजी को बड़ी ही प्रसन्नता हुई। इतने में अनायास रास्ते में सेठ थारूमलजी के सुपुत्र जगुमलजी से भेंट हो गयी। सेठजी प्रायः पूना में आया करते थे इसलिये आपको पहिचान गये। सेठजी आपके अनाश्रुत दर्शनों से अपना सौभाग्य समझकर आपको बड़े स्वागत सम्मान से अपने बंगले पर ले गये। वहाँ वाटिका में आपका धूना जमा दिया।

बात की बात में शहरवासियों को पता चला तो लोगों की भीड़ लगने लगी। आपने

उनको अपने सदुपदेशामृत से तृप्त किया। लोग आपके मधुर स्वभाव और प्रवचन पर मुग्ध हो गये। बहुत से आपके शिष्य बने बिना न रहे।

* पुष्कर क्षेत्र में *

वहाँसे आप सिन्ध हैद्राबाद होते हुए पुष्कर क्षेत्र में चौथे दिन पहुँचे। लम्बा सफर होने के कारण आप बीच में कहीं कहीं पर अपना नित्य कर्म कर लिया करते थे।

जब आप पुष्करराज पहुँचे तो उस समय वहाँकी बड़ी ही विचित्र शोभा थी। तालाबों में कमल खिल रहे थे। मन्द मन्द सुगन्धयुक्त वायु बह रही थी। पहाड़ों की छटा अतीव अलौकिक शोभा दे रही थी। उनपर लतायें अपने यौवनभार से सकुचाई हुई झुकी हुई थी। वृक्ष अपने फलों के भार से लदे हुए थे। सर्वत्र हरियाली और आनन्ददायिनी छटा छा रही थी।

आप वहाँकी शोभा को निहार कर प्रफुल्लित हुए और एक मन्दिर में जाकर ठहर गये। उस मन्दिर में ठहरने का सारा प्रबन्ध सन्त कुमारदासजीने ही किया। आपका आसन लगा दिया और आपको सभी सुविधाएँ बता दीं। आपने अपना नित्यकर्म किया और फिर

वहाँके तालाब और ब्रह्माजी की मूर्ति के दर्शन और परिक्रमा की। तीन रोज़ वहाँ रहकर ब्रह्मानन्दाश्रम और लक्ष्मीनारायणजी के दर्शन किये। भगवान् की मूर्ति पाँच फूट ऊंची है; सुवर्ण और मोतियों से जड़ा हुआ माथे पर मुकुट है। ऐसी शोभा थी मानो साक्षात् भगवान् लक्ष्मी-नारायणजी ही विराजमान हो। आपने वहाँपर कड़ा प्रसाद का भोग लगाया। भेंट पूजा की और तीन दिन के बाद आप वहाँसे पूना स्वस्थान को रवाना हुए। उज्जैन और अहमदनगर होते हुऐ पूना 'रामटेकड़ी उदासीन गढ़' में आ बिराजे। आपकी यह यात्रा आठ महीने की रही।

यहाँ पहुँच कर आप फिर अपने नित्य नैमित्तिक तपोसाधन में लग गये।

* सेठ गणेशलालजी का दान *

तदनन्तर सेठ गणेशलालजी सराफ़ पूनावाले महोदयने 'राम. लक्ष्मण सीताजी' का मन्दिर बनवाया, तथा मूर्तिस्थापना-यज्ञ और बृहद्भण्डारा करवाया। तदनन्तर आपके बैठने की जगह पर धूना साहब का मन्दिर, नया भंडार—घर, नयी गौशाला, सत्संगभवन (बारा दरी) एवं यज्ञभवन, (हवन कुण्ड) उदासीन बडा गुफा और उदासीन

कूप (बड़ा) बना। ये सभी स्थान बाबाजी के चरणों की भेट पूजा से बने हैं।

कुँवे के बनाने के लिये बड़ा परिश्रम करना पडा। बोरिंग मशीन लगायी गयी और करीब ३५० फुट नीचे तक खोदा गया, परन्तु हरि-इच्छा से पहाड़ की ऊँचाई अधिक होने से कुवे में पानी नहीं निकला। कुँवा तयार हुआ। बरसात का पानी उसमें कुछ दिनों जमा रहता है। इसके खर्चेमें गणेश-लालजी के बड़े भाई श्रीमान् सेठ वन्नाजी पूना लष्कर वालेने एक हजार रुपये दिये, परन्तु कुँवे पर आठ हजार रुपये खर्चा हुए।

❋ अन्य भद्र पुरुषों का दान ❋

तदनन्तर प्रभुप्रेमी सेठ राधाकृष्णजी सिन्धी महोदयने हनुमानजी का मन्दिर बनवाया और सेठ राम गोपाल अग्रवालजीने राधाकृष्ण भगवान् का मन्दिर बनवा कर मूर्तिस्थापना तथा यज्ञ-भण्डारादि करवाया।

फिर गुरु नानकदेव उदासीन मन्दिर बनाने में बम्बई सैपर्स माइनर्स के कैप्टन कृपालसिंहजी तथा सुबेदार मेजर जोतसिंहजी इत्यादि अनेक सिपाही सरदारोंने भाग लिया। गुरुनानक देवजी के मन्दिर, बारा दरी तथा हवन कुण्ड के लोहे का
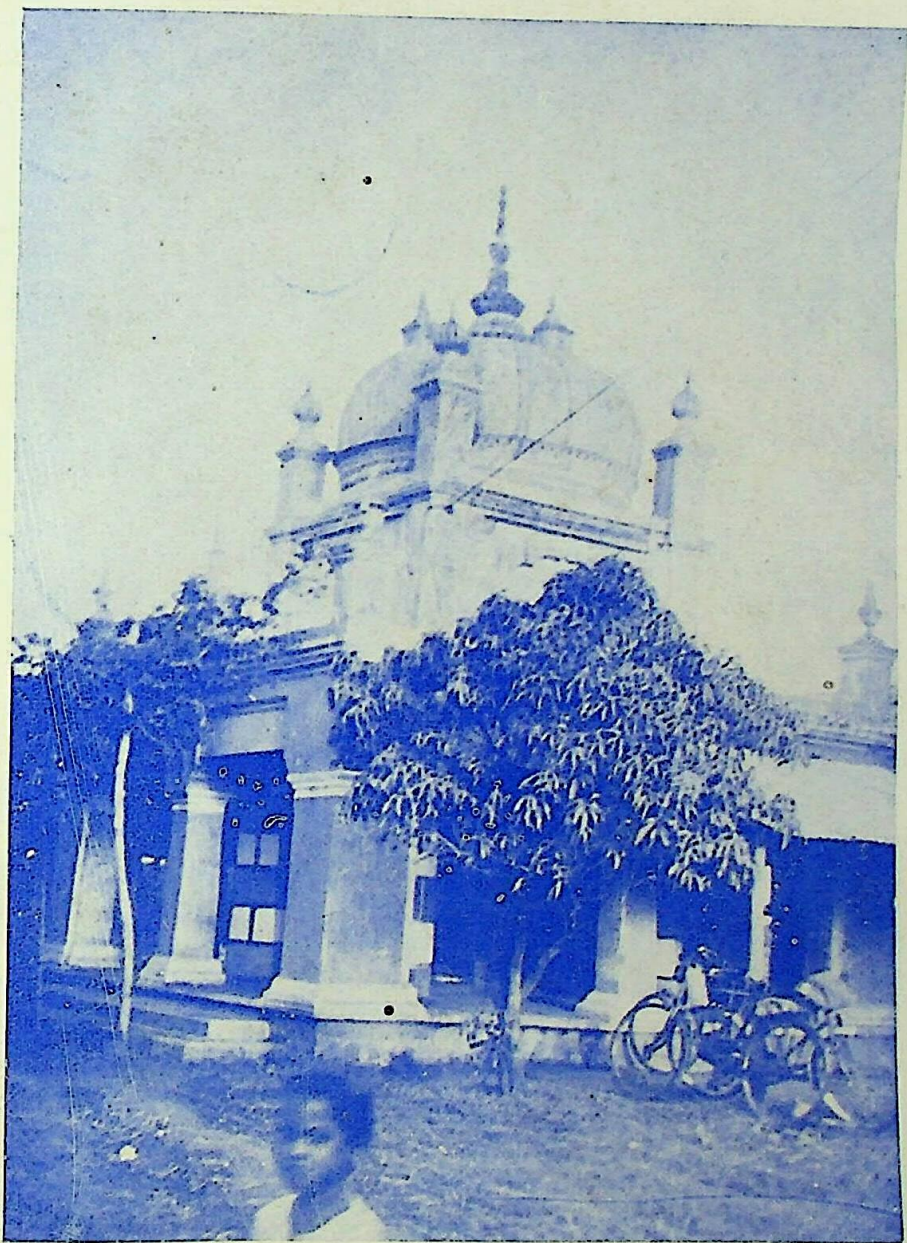
यज्ञ-मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

" सत्संग-भवन " (रामटेकड़ी, पूना)
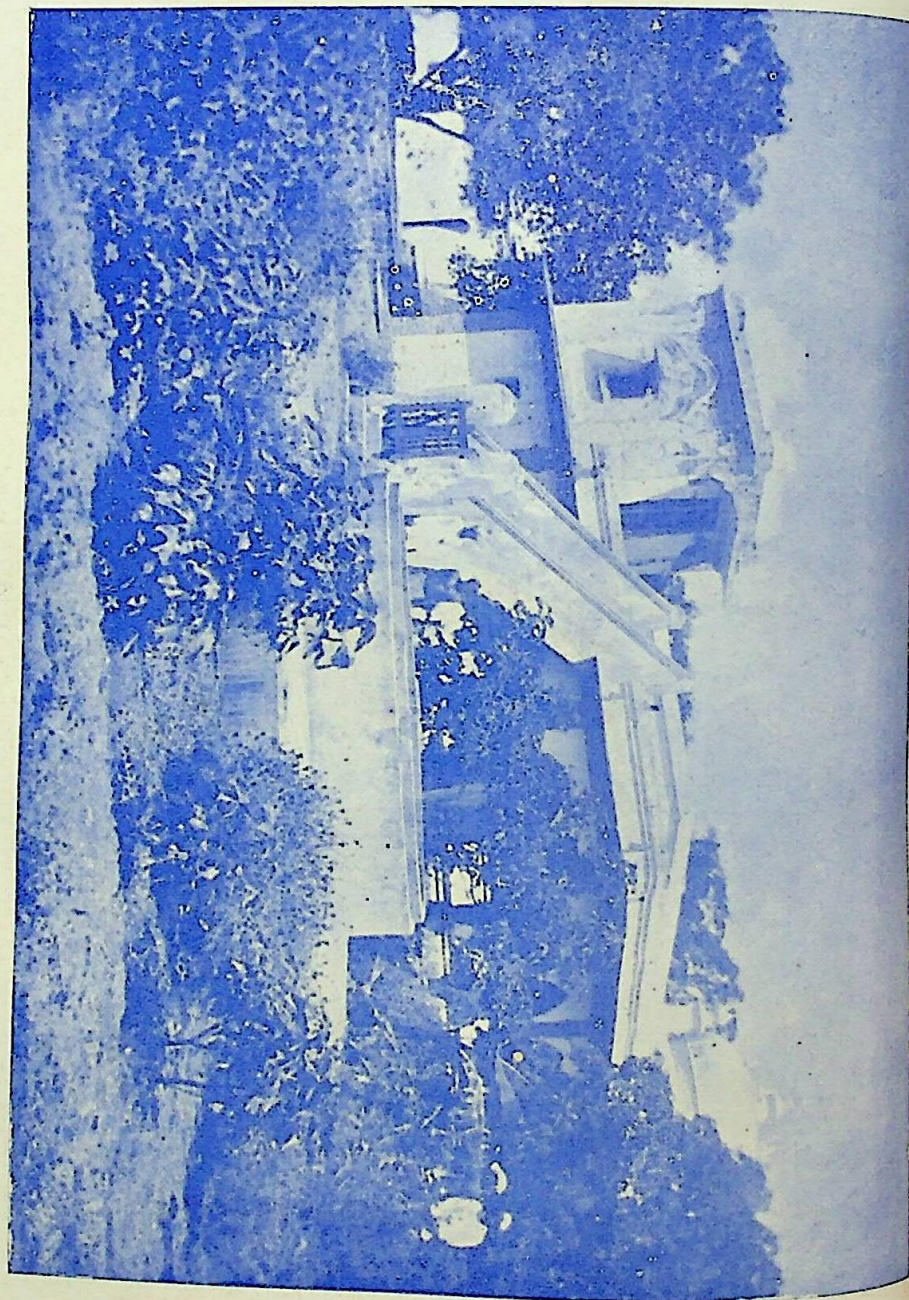
खर्चा सेठ कालूराम अग्रवाल, खड़की पूना निवासीने दिया।

इस तरह जब अनेक सुखशान्ति के साधन इस उदासीनगढ़ पर प्रभुप्रेमियोंने हरि–इच्छा से कर दिये तो फिर पानी और प्रकाश (बिजली) की कमी रह गयी थी। वह भी पूर्ण हुई।

* सेठ मक्खनलाल सेक्सरियाजी का दान *

श्रीमान् सेठ सेक्सरिया बम्बईवाले महोदयने इस स्थान पर बिज़ली लगवा दी। और फिर पूना के सेठ फग्गुमल सिन्धीजीने तथा सेठ नैवन्तरामजी सिन्धी बम्बई निवासीने टेकड़ी की उतराई पर पानी का हौद (टँकी) बनवा दी और बिज़ली मशीनद्वारा पाइप लाइन से पानी ऊपर गढ़ पर पहुँच जाता है। (अबतक पानी यहाँ पर बैलगाड़ी-द्वारा आता रहा।) अब फिर प्रभुप्रेमी बाबू राम-सिंहजी पूना डेरी.फार्म के महोदयने, और सेठ सेवारामजी सिन्धी पूना निवासीने और श्रीमान् ललिताप्रसाद ठेकेदार (मीरत वाले) इन सब प्रेमियोंने डामर की नयी सड़क नीचे से ऊपर तक बनवा दी है। तत्पश्चात् साधुजनता के बैठने के लिये एक निर्वाण (कोठारीजी की गद्दी)

आखाड़ा तथा तपस्वियों के लिये उदासीन बैठक और सन्तनिवास बनाएँ गयें।

" बैकुंठनगर जहाँ सन्त बासा
प्रभुचरण कमल हृदमाहीं निवासा "

—गुरु नानकदेवजी

प्रभु परमपिता परब्रह्म की कृपा से अब यह स्थान वैकुंठ भवनसा बहुत सुन्दर शोभा दे रहा है।

श्रीमान् बाबाजी अब गुफासे रोज़ दिन में दो घण्टे जनता को दर्शन देने बाहर निकला करते हैं जैसे सुबह ग्यारह बजे और शाम को पाँच बजे। बस एक घण्टा धूना साहब के मन्दिर में बैठकर सत्संग हरिकथा होती रहती है। दर्शक यात्रियों की अपार भीड़ अहर्निश लगी ही रहती है। दूर दूर से सन्त-साधु महन्त जन भी आया करते रहते हैं।

*** अद्‌भुत चमत्कार ***

हजारों सैंकड़ों लोग बाबाजी की सेवा में उपस्थित होते हैं। अपनी अपनी भावना के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। किन्तु विशेषता तो यह है कि, बाबाजी अपने हाथों से अपने धूना साहब से एक " चुंगटी राख " जिसकी तरफ फ़ेंक देते हैं या अपने हाथों दे देते हैं उसका कल्याण अवश्य होता है।
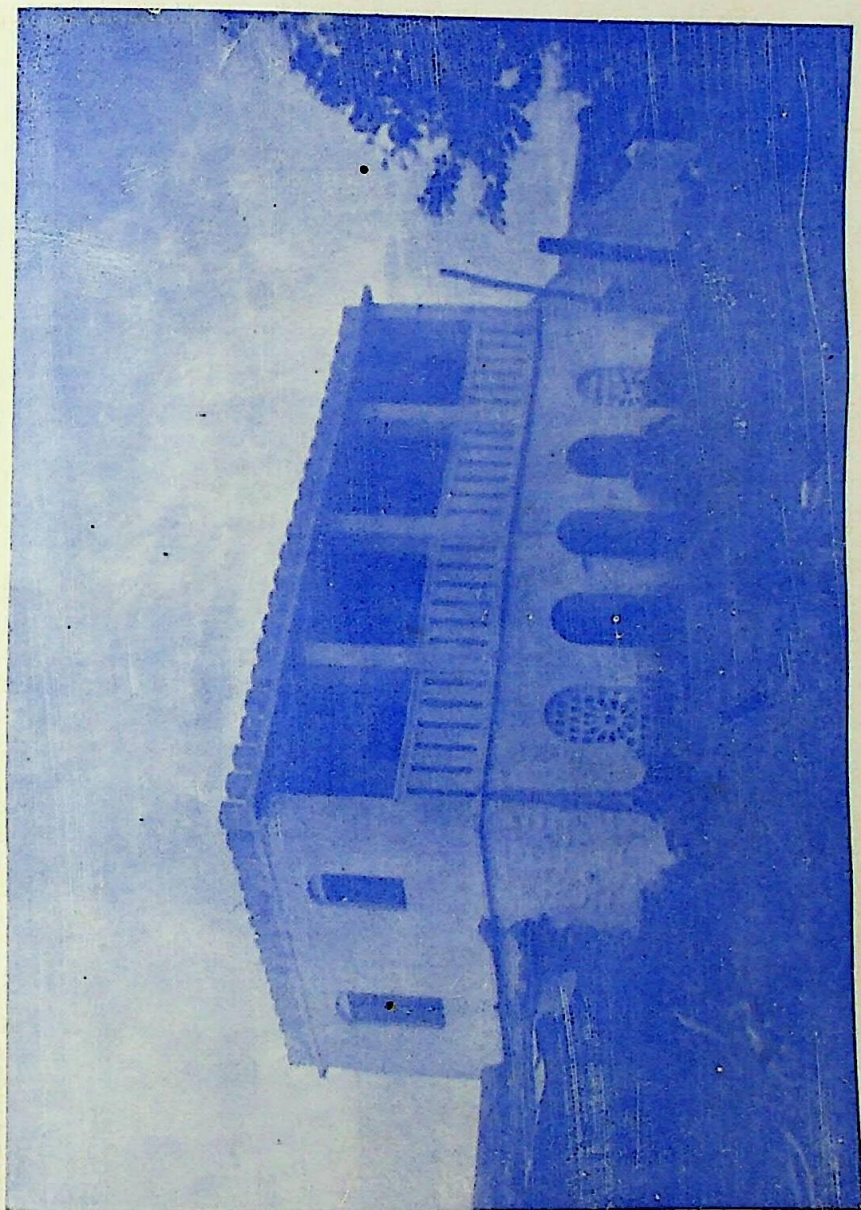
धर्मशाला (रामटेकडी, पूना)

गौशाला (रामटेकड़ी, पूना)
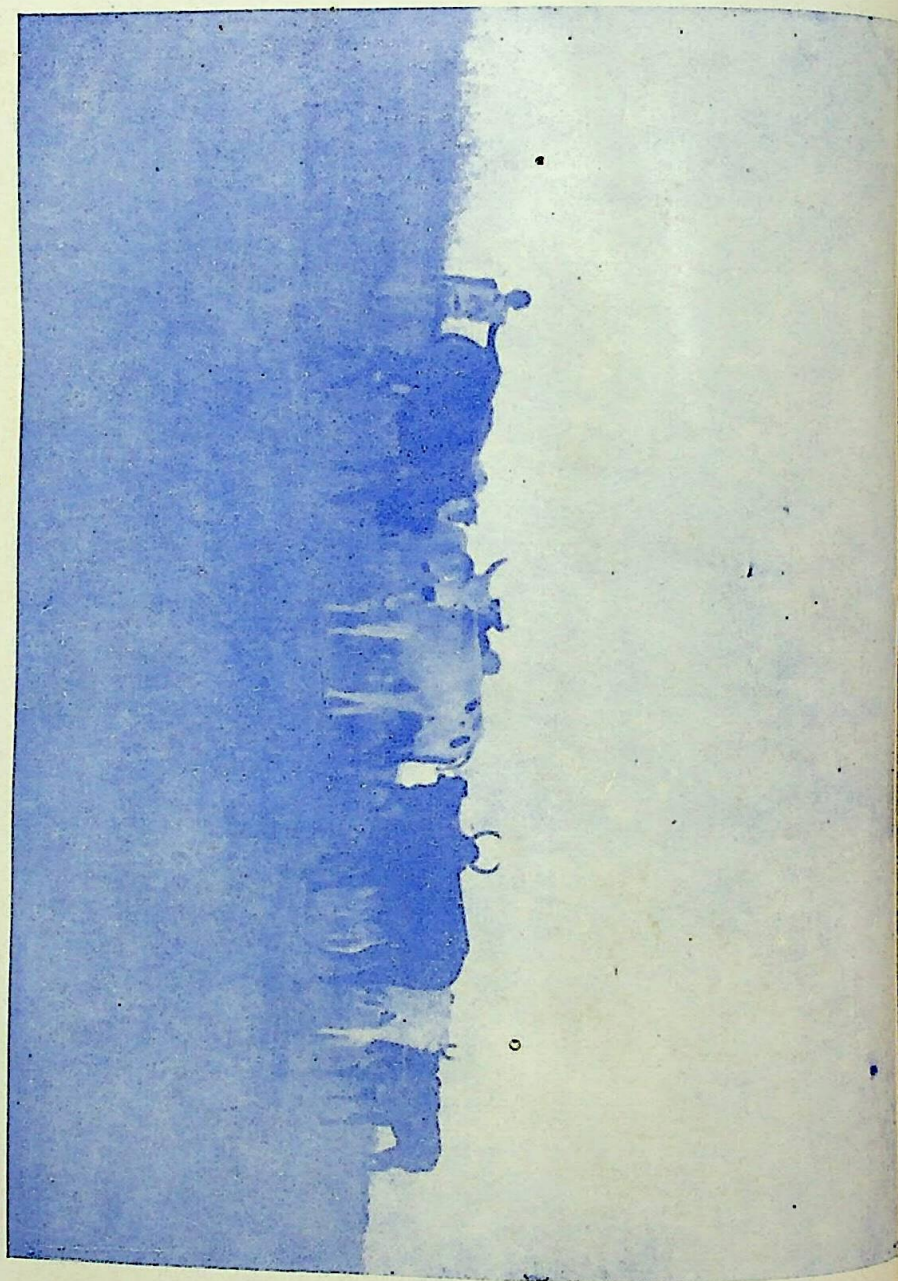
उसमें भी भावना पर ही निर्भरता है। जो जिस भाव से उस राख का उपयोग करता है उसी भाव से उसे अवश्य फल प्राप्त होता है। जिस जिसको फल प्रत्यक्ष मिले हैं, सैंकड़ों में से कुछ एक के नाम और अनुभव " विभूति चमत्कार " प्रकरण में दिये गये हैं।

लेखक भी इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है, इसलिये लेखकने " बाबाजी की राख " नाम की कविता बृहद्रूप से बनायी है। यह कविता " विभूति चमत्कार " प्रकरण में आयी हुई है। वैसे ही बाबाजी का लघुजीवन चरित्र जो सेवकों के द्वारा प्रकाशित हुआ है उसमें भी इस कविता का वर्णन मिलता है।

———

अवशिष्ट प्रकरण

—∞—

(७)

मंत्र

"ॐ ब्रह्म सोऽहं जाप
शुद्ध ब्रह्म आतम आप ।
आदि गुरू हँसावतार
आतममेधावी सनत्कुमार ।
ॐ सत नाम श्रुत
नाम जप जीवनमुक्त ॥ "

* तीसरी बार गुरुदेवजी का शुभागमन *

श्रीमान् बाबा शारदारामजी अपनी चौथी तर्थियात्रा समाप्ति से अपने उदासीनगढ़ आश्रम (पूना) में विश्रान्ति के साथ तपश्चर्या में लगे रहे। साथ ही जनसमाज को अपने सदुपदेशामृत से कृतार्थ करते रहते थे।

सहसा एक दिन आपका विचार हुआ कि, "गुरुदेवजी के दर्शन दो तीन वर्षों से नहीं हुए इस लिये मातृतीर्थ गुरुतीर्थ दोनों कर आऊं तो अच्छा रहेगा।" बस इतना सोच ही रहे थे कि

अनायास गुरुदेवजी श्रीमान् १०८ बाबा मौजीरामजी उदासीनगढ़ स्थान पर ही आ पहुँचे।

सच ही तो है—

"जाको जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।"

— तुलसीदासजी

भगवान् भी तो भक्तों के बस है। इसी प्रकार गुरुभक्त जो शिष्य होगा उसकी इच्छा घर बैठे गुरुदेव पूर्ण करते रहते हैं। अब क्या था, बाबा शारदारामजी तो दर्शनामृत अभिलाषा को तृप्त करते हुए कृतकृत्य हो गये।

कुशल समाचार होने के अनन्तर बाबाजी गुरुदेवजी की सेवा में लग गये।

भक्त सेवकों को पता चला तो सैंकड़ों दर्शनार्थी आकर रोज़ गुरुदेवजी के मुखारविन्द से निकले हुए उपदेश-कथादि से कृतार्थ होते रहे। गुरुदेवजी का यह तीसरा समय था इस स्थान को पवित्र करने का।

इस बार आपने सिर्फ़ दो ही महीना यहाँ विश्राम किया। दो महीने के बाद आप (गुरुदेवजी) अपने स्थान को चले गये। बाबाजी को

उदासी हो गयी, परन्तु फिर गुरुदेवजी का शान्त्वना का पत्र आने से बाबाजी शान्ति से अपनी नित्य क्रिया में लग गये।

* माताजी का स्वर्गवास *

सन १९४३ ई. में बाबाजी की माताजी का अवसान हुआ। आप उस समय मातृभूमि से कुछ ही दिन पहिले पूना स्थान को लौटे हुए थे तब तक माताजी के स्वर्गवास का समाचार मिल गया। आप फिर अन्त्येष्टि संस्कार में शामिल नहीं हो सके। इसलिये साल भर में "बर्षी" में जाने का आपका विचार हुआ।

* माताजी की बर्षी में मातृभूमि की यात्रा *

आपने पूना से प्रस्थान करने के पहिले ही अपने भाई साहब को पत्र भेज दिया था कि, "हम आ रहे हैं सो भण्डारा का बन्दोबस्त करके रखना" आदि।

आप प्रयागराज और काशीजी होते हुए मातृभूमि कसान-गंज पहुँचे तो वहाँ भण्डारे का सारा प्रबन्ध ठीक था। आपने फिर साधु–ब्राह्मणों को निमंत्रण भेजा। नियत समय बर्षी के दिन सौ से अधिक साधुजन और सैंकड़ों ब्राह्मणजन आ पहुँचे।

पूज्यपाद श्रीमान् गुरुदेव बाबा मौजीरामजी भी समय पर आ पहुँचे।

भण्डारे का भोजनप्रसाद पाने के पश्चात् आपने साधुजनों को एक एक अचला (वस्त्र) और यथायोग्य दक्षिणा और आने जाने का खर्चा भी दिया। ब्राह्मण लोगों को भी श्रद्धापूर्वक दक्षिणा दे कर बिदा किया। उस दिन महन्त रामरतनदासजी गौरी घाट अयोध्या की जमात भी थी तथा गोविन्द साहब की जमात आदि बहुत से सन्त–महन्त इकट्ठे हुए थे।

बाबाजी को सबके दर्शनों से प्रसन्नता हुई। सभी सन्त–महन्त–ब्राह्मणोंने शुभाशीर्वाद देते हुए आपको धन्यवाद दिया और यश गाया।

महन्तों को तो बाबाजीने किसीको दस-दस – किसीको ग्यारह–ग्यारह रुपये भेंट किये। गुरुदेवजी के चरणों में एक सौ एक रुपये तथा अचला (वस्त्र) अर्पण किये। पूज्यपाद गुरुदेवजीने कृपा कर स्वीकार किये। बाबाजी के भाई साहबने भी अपने जात बिरादरी का आदर सत्कार किया।

जब सभी लोग चले गये तो गुरुदेवजी के लिये पालकी का बन्दोबस्त किया। पालकी में गुरुदेवजी को बिठा कर बाबाजी भी दो फर्लांग तक पालकी

के साथ साथ गये। रास्ते में बार बार गुरुदेवजी को दण्डवत करते रहे।

(गुरुदेवजी के भौतिक शरीर के यह अन्तिम दर्शन थे।) गुरुदेवजी गये और आप अपने आसन पर आ कर गुरुदेवजी के विरह में डूबे रहे। इतनेमें कुछ प्रेमियोंने निवेदन किया कि, " महाराज, अपनी मातृभूमि में भी कुछ कीर्ति-चिन्ह स्थापित करने की कृपा कीजिये ! "

मातृभूमि की सेवा के बारे में लाला गोरखलालजी तथा केशवपण्डितजीने नीचे लिखी हुओ कविता सुनाई और भी सेवकोंने आपको इस विषय पर विशेष उत्साहित किया और बचन-बद्ध कर दिया।

" जिन मातापिता गुरुसेवा कियो।
तिन तीरथ बरत कियो ना कियो॥ "

—तुलसीदासजी

इस संत तुलसीदासजी की बाणी को सुनकर आपको अपनी पूज्य माताजी के आशीर्वाद रूपी बचनों की—(" भगवत् परायण रहते हुए जन्मभूमि के लोगों को सुरक्षित रखकर जैसा हो सके वैसा ही उपाय या विधान रचे के उनको भगवत् परायण करना। ") स्मृति जागृत हुई और

आपने कहा, "अच्छा, हरि-इच्छा। तुम लोग ज़मीन का तजवीज करो।" इतना कह कर आप पूना के लिये दूसरे दिन ही रवाना हो गये।

* पूना आगमन *

काशी-प्रयागराज होते हुए आप पूना अपने उदासीनगढ़ स्थान पर आ पहुँचे। सेवक-शिष्य-भक्तजन आपके दर्शनों से कृतार्थ हुए। फिर आप अपनी एकान्त गुफा सेवन तपश्चर्या में लग गये जो कि आपका स्वाभाविक नियम था।

गुफा से आप सुबह ग्यारह बजे जब बाहर आते हैं तो सर्वप्रथम सभी मन्दिर की मूर्तियों के दर्शन करते हैं। फिर आप धूना मन्दिर में एक दो घण्टा यात्रियों को दर्शन-उपदेशामृत से कृतार्थ करते हैं। एवं शाम को भी पांच बजे यही क्रिया होती है।

* गुरुदेवजी ब्रह्मलीन हुए *

ईश्वर की कृपा से आपकी दिनचर्या-तपश्चर्या अच्छी तरह से चलने लगी। तब तक सन १९४४ में तारद्वारा समाचार मिला कि गुरुदेव बीमार हैं। फिर दूसरे ही दिन दूसरा तार आया की गुरुदेव जी ब्रह्मलीन (स्वर्गवास) हो गये।

आपने तुरन्त ही महादेवदासजी को भेजकर समाचार मँगवाया तो पता लगा कि, गुरुदेवजी के शरीर का हरिश्चन्द्र घाट काशीजी में दाहसंस्कार किया गया है।

आपको गुरुदेवजी के दर्शनों से वञ्चित रहने का शोक तथा गुरु-उपदेशामृत-का चिंतवन करके शोक अधिक से अधिक बना रहा। थोडी–सी प्रसन्नता केवल इस बात की हुई कि श्रीकाशीजी में गुरुदेवजी के शरीर का दाह किया गया।

* गुरुस्थान में गये *

श्रीमान् बाबाजीने कुछ खर्चा महादेवदासजी के नाम से भण्डारे के लिये भेज दिया और लिख दिया कि, " भण्डारे का सारा इन्तज़ाम करके रखो अगर तुमसे न हो सके तो चौधरी से करवा लो। "

महादेवदासजीने चौधरी से सब कुछ कह दिया। सामान इकट्ठा करते करते महीना गुज़र गया। इतनेमें बाबाजी भी पूना से जाकर स्थान में उपस्थित हुए। आपने अयोध्याजी तथा प्रयागराज आदि सभी स्थानों के महन्तों को निमंत्रण भेज दिया।

ग्रंथसाहब का पाठ गुरुदेवजी के नाम से ही करवाया गया। कच्चा पक्का भण्डारा सौ सौ मूर्तियों को चलता.रहा।

सत्रहवाँ दिन हजारों साधु ब्राह्मण इकट्ठे हो गये। गुरु कृपासे अन्न की पूर्ति अच्छी तरह से हुई। सबकी बिदाई में श्रद्धा भक्ति से दक्षिणा दी गयी। महन्तों को अचला (वस्त्र) और ग्यारह ग्यारह रुपया दक्षिणा में दिये गये।

रानोपाली के श्रीमान् महन्तजी को एक सौ एक रुपया और मलमल एक थान दिया गया। अयोध्या दामोदरदास महन्तजी को इक्यावन रुपया, दो अचला-लंगोट भेंट दी गयी। इस प्रकार गुरुदेव की कृपा से बाबाजी को भी यश की प्राप्ति हुई।

* फ़कीरे राम को अधिकारी बनाया *

अब आप गुरु आश्रम की रक्षा की चिन्ता करने लगे तब तक "शहज़ादी", दुर्बलसिंह, मथुरा लुनिया, सन्तप्रसाद हलवाई आदि जनों की रुचि से 'फ़क़ीरे राम' वहाँके अधिकारी चुने गये।

महन्त केशवरामजी, रामजी रामरतनदास आदि संत सज्जनोंने भी अपनी अनुमति दी कि फ़क़ीरे राम को गुरुस्थान का अधिकारी बनाया

जाय। बाबाजीने सर्व सम्मति से स्वीकृत प्रस्ताव को स्वीकार किया, और गुरु आश्रम की सेवा अधिकार श्री फ़क़ीरे राम को सौंप दिया।

फिर सभी सन्त-महन्तों के बिदा होने के पश्चात् आप भी अपनी जन्मभूमि कसानगंज आ पहुँचे।

* ज़मीन खरीदी *

जन्मभूमी में आकर भी आपने एक छोटा-सा भण्डारा माताजी के नाम से किया।

ज़मीनस्थान के लिये पाँच सौ रुपये अपने सेवक लोगों को दिये जो कि आपका स्मारक बनाने का वचन था उसकी पूर्ति तो करनी ही थी।

फिर आप तो पूना अपने स्थान पर आ पहुँचे और अपने नित्य की दिनचर्या मे लग गये।

* गुरुदेवजी की बर्षी में *

सन १९४५ में जन्मभूमि से समाचार मिला कि एक बीघा ज़मीन बाबू दयारामजी बेच रहे हैं। आपने रुपये भेज दिये और लिख दिया कि, " ज़मीन खरीद लो। "

फिर आप गुरुदेवजी की बर्षी पर पहुँचे। पूर्ववत् आपने बड़े समारोह के साथ बर्षी का

काय समाप्त किया। इस समय के भण्डारे पर ज़िला हज़ारी बाग़ के महन्त सरूपदासजी भी आये थे। बाबा शारदारामजीने सबका यथायोग्य सादर सम्मान किया। और पश्चात् आप अपनी मातृभूमि कप्तानगंज में आ गये। सेवक लोगोंने तबतक ज़मीन नहीं खरीदी थी सो बाबाजी के जाने पर ही सब फ़ैसला हुआ। फिर वहाँका मन्दिर धर्मशाला निर्माण का कार्य शुरू करके आप पूना अपने आश्रम पर लौट आये।

✻ कप्तानगंज में धर्मशाला बनवायी ✻

सन १९४६ में एक इनारा (बावला) बन गया था। धर्मशाला का कार्य भी शुरू हो गया था तथा पँचमन्दिरों की नींव भी पड गयी थी।

सन १९४७ में जब आप फिर मातृभूमि कप्तानगंज को गये तो फिर पँचमन्दिरों का निर्माण कार्य शुरू करवाया। आप वहाँ चार महीने रहे और अपने सामने सात मन्दिर, दो बराण्डा (परिक्रमासहित) और छत के बराबर दीवार आदि बनवाकर वापस पूना आ गये और वहाँका कार्य झुन्नु मिस्त्री और श्रीअलगुराम चौधरीजी की निग़रानी में छोड आये।

* मूर्तिस्थापना और प्राणप्रतिष्ठा *

सन १९४९ ई. में "कप्तानगंज" का कार्य समाप्त हुआ। तमाम-सन्तनिवास, धर्मशाला, पँचदेवों का मन्दिर तथा ठाकुरजी का स्थान-इमारतें बन गयीं तो बाबाजी स्वयं जयपुर गये और वहाँ-से पाँच हजार रुपयों में उदासीनाचार्य हँसावतार, सनकादि मुनियों की चार मूर्तियाँ और एक भगवान् श्रीचंद्रजी की मूर्ति तथा श्रीरामलक्ष्मण-सीताजी की मूर्तियाँ, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्द कन्द की युगुलमूर्ति, तथा श्रीगौरीशंकरजी की मूर्ति, श्रीगणेशजी, श्रीनान्दीजी, आदिशक्ति दुर्गाजी और श्रीमान् १०८ गुरुदेवजी बाबा मौजीरामजी की दो मूर्तियाँ बनवाकर (एक गुरु महाराजजी की तपोभूमि के लिये और दूसरी उदासीनपुरी के लिये) आप कप्तानगंज मातृभूमि को ले गये। मूर्तियों का खर्चा कुल रुपये छः हजार हुआ। उसमें से बम्बई निवासी प्रसिद्ध सेठ मक्खनलाल सेक्सरियाजीने पाँच हजार रुपयों की सेवा की है।

* प्राणप्रतिष्ठा का खर्चा *

जब मूर्तियाँ सुरक्षित कप्तानगंज पहुँच गयीं तो प्राणप्रतिष्ठा के लिये चार हजार रुपये सेठ

नारायणदास सिन्धी बंबई निवासी महोदयने दान दिये। एक हजार रुपये बंबई निवासी श्रीमान् सेठ ईश्वरदास नैवन्तुरामजीने दिये। सन १९५१ इ. (माघ शुक्ला एकादशी) में सभी मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा की गयीं। मन्दिरों का पूजन, यज्ञ करवाया गया।

इस महोत्सव में पाच दिन तक ग्यारह वेदपाठी ब्राह्मण यज्ञमण्डप में वेदादि पाठों के साथ हवन यज्ञ करते रहे। श्रीमान् बाबा शारदा-रामजीने विधि तथा मर्यादा के अनुकूल बड़े समारोह के साथ कार्य सम्पन्न किया।

* उच्चकोटि के सन्तों का दर्शन *

इस प्राणप्रतिष्ठा महायज्ञ में श्रीमान् बाबा शारदारामजीनें बड़े बडे आखाड़ो और उदासीन आश्रमों के सन्त–महन्तों को निमन्त्रित किया। निमन्त्रण भेजनें का कार्य महन्त दामोदरदासजी को सौंपा गया था।

जहाँ जहाँ निमन्त्रण भेजे गये उनमें प्रमुख स्थानों के नाम इस प्रकार हैंः—रानोपाली अयोध्या, प्रयागराज के सभी उदासीन आश्रम, पंचपरमेश्वर

बलिया तराई, बेला प्रतापगढ़, फ़ैज़ाबाद, बाराबँकी, गोंडा, अकबरपुर, अज़मगढ़ आदि आदि स्थानों के महन्तों का जमावट तीन दिन तक उदासीनपुरी कसानगंज में बना रहा, और आसपास के सैंकड़ों सन्त महन्त लोगों को भी निमन्त्रित किया गया था। ब्राह्मण जनों की संख्या की भी गिनती नहीं थी। इस प्रकार हजारों की संख्या में सन्त-महन्त, साधु, ब्राह्मण, आतिथी, फ़कीर, ग़रीब, अमीर सभी उस महायज्ञ में भण्डारे के दिन उपस्थित हुए।

भीड़ इतनी अधिक हुई कि सेवकगण सम्भालते सम्भालते हार गये। भीड़ को सम्भालने का कार्य पासीपुर के पारससिंह, अवधुसिंह, अछैलाल, सेठ जालीराम, चौधरी अलगुरामजी, पलटूराम आदि बहुत से लोगोंने किया।

* अपूर्व भण्डारा *

तीन दिन तक तो महन्तों का कच्चा पक्का भण्डारा चलता रहा। पाँच दिन तक ब्राह्मणों का भण्डारा चलता रहा। अन्तिम दिन की जो भीड़ थी उसका वर्णन करना उतना ही असम्भव है जितनी कि वहाँ भीड़ थी। परन्तु सेवकोंने भीड़ सम्भालने का जो कार्य किया वह प्रशंसनीय था। उन्होंने भोजन व्यवस्था में भी हात बँटाया और

श्री उदासीनपुरी मंदिर की स्थापना और मंदिरके देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा समारोह के समय जुलूस का दृश्य।
(कप्तानगंज, जि. अजमगढ़)

श्री " उदासीनपुरी " मंदिर (कप्तानगंज, ज़िला अज़मगढ़)
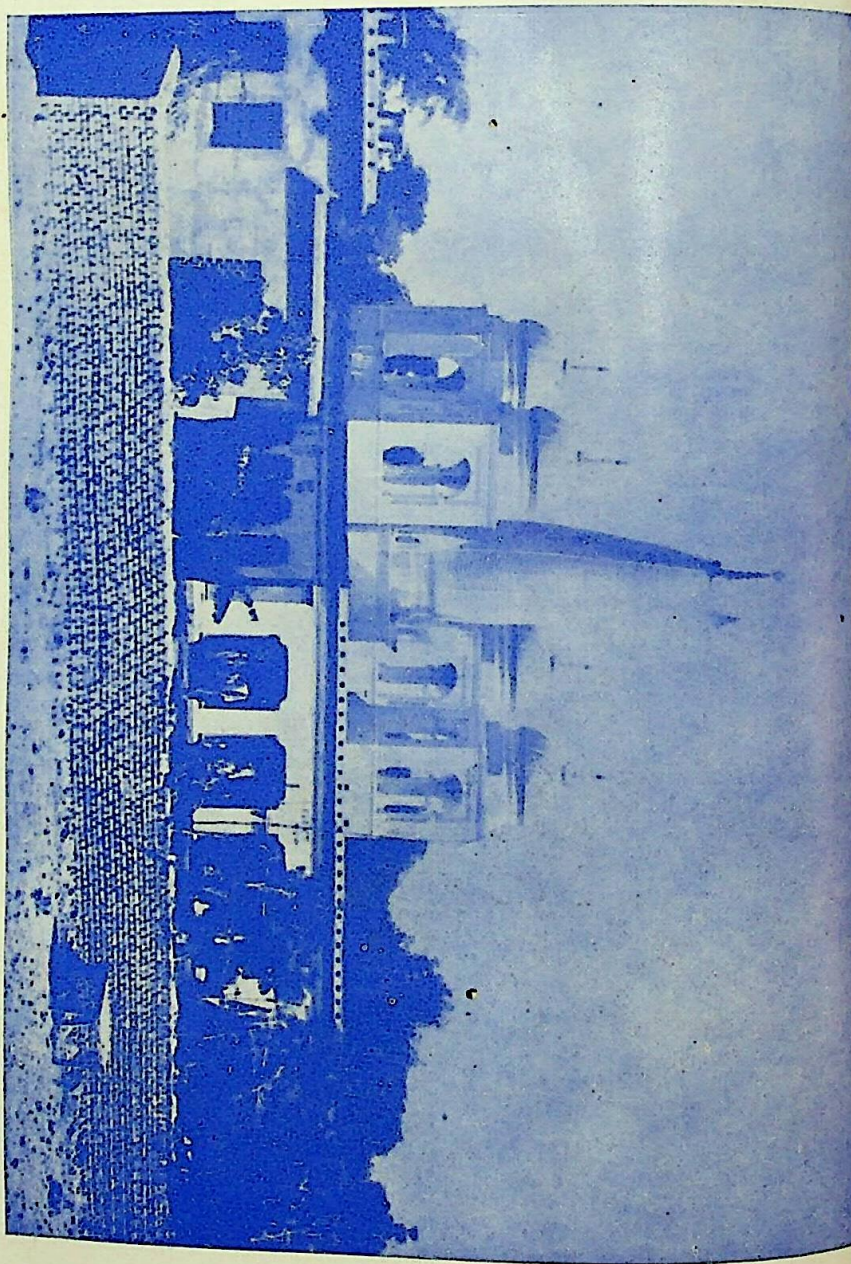
कोई भोजन बिना बाकी नहीं रहा। उन दिनों तो सबके मुख से, " बाबा शारदारामजी की जय " का नारा लगता था, और सभी कहते रहे कि, " भाई ऐसा भनारा हमहु कबहु नहिं देखत रही " आदि तरह तरह की प्रशंसा होती रही।

* दक्षिणा क्या दी *

इस महायज्ञ में बाबू सुखदेवराय का सेवा कार्य बड़ा ही प्रशंसनीय रहा। यज्ञ के आचार्य पं. रामेश्वरजी थे। अन्तिम दिन भोजनोपरान्त सभी साधु-ब्राह्मणों को दो हजार रुपये दक्षिणा देकर बिदा किया गया। वे लोग बड़े प्रसन्नता से आशीर्वाद देकर बिदा हुए।

और महन्तजनों को ग्यारह ग्यारह रुपये तथा आने जाने का खर्चा दिया गया। रानोपाली के महन्तजी को एक सौ एक रुपये तथा महन्त दामोदरदासजी को इक्यावन रुपये और एक एक अलवान दिये गये। सभी महन्तजन जय जयकार करते हुए आशीर्वाद देकर चले गये। अन्य ब्राह्मण तथा अतिथी अभ्यागतों को दो दो रुपये और एक एक अचला दिया गया। इस दिन से यह स्थान " उदासीनपुरी " नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सारा कार्य गुरुदेवजी की असीम कृपा तथा प्रभुकृपा से परिपूर्ण हुआ। इस महायज्ञ में सोलह हजार रुपया खर्चा हुआ।

* रामनवमी का मेला *

यज्ञसमाप्ती के अनन्तर उदासीन आश्रम का कार्य भी उसी तरह चलाने का नियम बनाया गया जैसे कि "उदासीनगढ़" पूना का चलता है।

अब आपका विचार पूना आनेका हो रहा था कि बाबू दयारामजी कहने लगे कि, "महाराज, यहाँपर श्रीरामनवमी का मेला बहुत बड़े रूप में लगना चाहिए। यह सब आप ही के द्वारा हो सकता है।"

आपने पूना आनेका मुहूर्त स्थगित किया और इस्तिहार छपवा कर बँटवाये गये। बैण्ड बाजा, बिगुल, रणसिंहा, शंख आदि बाजा बाजान्तरों का प्रबन्ध करवाया गया। शामियाने तम्बू तिरपाल आदि ताने गये। हाथी, बैल-गाड़ियाँ सब सजाये गयें। और बड़ी धूम धाम से जुलूस निकाला गया।

* ग्यारह हाथियो का साज *

इस जुलूस में ग्यारह हाथी थे। जुलूस नयी बाज़ार होते हुए नये पोखरे पर शिवदर्शनार्थ

(पूजन परिक्रमा करके) चलकर पुराने बाज़ार होते हुए क़रीबन तीन घण्टे में जुलूस वापस आश्रम पर आया। फिर पूजा परिक्रमा करके जुलूस का सत्कार और राम लक्ष्मण सीताजी की मूर्तियों की आरती की गयी। दूसरे दिन उत्सव का भण्डारा भी हुआ।

असंख्य यात्री इस रामनवमी मेले में उपस्थित हुए थे। अब भी हरवर्ष वहाँपर रामनवमी का मेला लगता रहता है। आपके कीर्ति के प्रभाव से ज़िला अज़मगढ़ कप्तानगंज, उदासीनपुरी में सन १९५१ से यह रामनवमी का मेला बृहद्रूप से मनाया जाता है जैसे कि आपके तपप्रभाव से मार्गशीर्ष शुद्ध दशमी के रोज़ पूना रामटेकड़ी उदासिनगढ़ पर " शिवगोविंद–दशमी " उत्सव (मेला) बृद्रूहप से मनाया जाता है।

* काशी में ब्रह्मचारियों को उपदेश *

उदासीन आश्रम कप्तानगंज में रामनवमी का मेला समाप्त कर आप काशीजी आ पहुँचे। वहाँ श्रीविश्वनाथजी तथा अन्नपूर्णा माताजी, कालीमाता तथा अन्य देवताओं के दर्शन करके ब्राह्मण–साधुओं को दान–दक्षिणा देने लगे और एक दूकान से मिठाई लेकर बाँटने लगे तो कुछ ब्रह्मचारियोंने आकर आपसे (बाबाजी से)

निवेदन किया कि "आपने तो औरों को दो दो रुपये दिये और हमको इतना कम क्यों दिया?" आदि आदि —

बाबाजी मुस्करा कर बोलेः— "भाई, आप लोग तो ब्राह्मण हैं और फिर ब्रह्मचारी हैं। ब्राह्मणों का धन तो सन्तोष है और ब्रह्मचारियों का धन है भिक्षा माँग कर जो मिल जाय उसीसे सन्तोष रहना। आप लोगों का तो सन्तोष ही परम धन है, सत्य ही परममित्र है। निष्कपटता सदा साथी है और सुखदाता है। इसलिये आप लोगों को जो कुछ श्रद्धा प्रेम से मिल जाता है उसमें ही सन्तुष्ट होकर प्रसन्न रहकर अपने सत्कर्म में लगे रहेना चाहिये। इससे आपकी मानसिक स्मरणशक्ति का विकास होगा। सत् और पुण्य बढ़ेगा, सत् और पुण्य के प्रताप से सुख बढ़ेगा, ईश्वर, सर्वत्र व्यापक प्रतीत होगा और अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होगा, जिससे कि संकुचित्त दुःख रूपी भाण्डे फूट कर सुख रूपी सुयश भूमण्डल में छाया रहेगा।

"बोलो हरि ॐ तत्सत्।
ॐ सत् नाम श्रुत, नाम जप जीवनमुक्त॥"

ब्रह्मचारी लोग आपके सदुपदेश से शर्मिन्दे से हो गये परन्तु अपना वास्तविक हित समझकर

बाबाजी से क्षमा याचना की, साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके बिदा हुए और महाराजजी भी ॐ नमो ब्रह्मणे कह कर स्टेशन आ गये।

* पूना आ पहुँचे *

आप चौथे दिन पूना आ पहुँचे। यहाँपर सेवक-शिष्य-भक्तजन आपके बिना बड़े उदास थे। अब आपके दर्शन पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। कोठारी ब्रह्मदासजी तथा पुजारीजी और अन्य सभी जन अतीव ही प्रसन्न हुए। जनता जो बहुत दिनों से आपके बिना ब्याकुल थी वह अहर्निश आपके दर्शनों में आने लगी।

शुभसमय बीतनें कोई देर नहीं लगती। महाराजजी को उदासीनगढ़ में अभी शान्त चित्त भजन करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो रहा था कि फिर उदासीनपुरी कप्तानगंज से पत्र आया कि— "…. महाराज कृपा करके आप यहाँपर जल्दी पधारिये। यहाँपर एक तालाब का होना अत्यन्त ही आवश्यक है।"

* १९८२ में फिर उदासीनपुरी पहुँचे *

रामनवमी का मेला आनेवाला था। आप पूना से इसी उत्सव पर कप्तानगंज उदासीनपुरी में

पहुँचे। रामनवमी का उत्सव (मेला) शान्ति से समाप्त कर एक भण्डारा किया गया। लोग महाराजजी के दर्शनों से अपने को धन्य समझ रहे थे। भण्डारे की समाप्ति के अनन्तर आपने तालाब़ के काम को शुरू करवाया। ढ़ाई हजार रुपयों में ठेका दे दिया। क़रीब दो महीने की खोदाई करके ठेकेदारोंने उसमें पानी दिखा दिया तथा तालाब़ का काम पूरा कर दिया।

* उदासीनपुरी की कुछ विशेष घटनाओंका वर्णन *

उदासीनपुरी का निर्माणकार्य प्रारम्भ हो चुका था जिसमें धर्मशाला, मन्दिर की रचना हो रही थी। प्राय उस स्थान पर यह एक अपूर्व रचना रची जा रही थी। जो भी आसपास के गाँव या इधर उधर के लोग उस रचना की महिमा सुनते तो धन्यवाद दिये बिना न रहते। जब बाबाजी वहाँ पहुँचते तो दर्शकों की आत्माएँ शान्ति प्राप्त करती थीं। एक दिन अनायास किसी भक्तने बाबाजी से प्रार्थना की कि " महाराज, पाठ-शाला बनवाईये ! इन इमारतों के बनने की अपेक्षा अगर आप पाठशाला बनवाएँगे तो जन-समाज पर विशेष उपकार होगा। शास्त्रों में लिखा भी है :

अन्नदानं परं दानं, विद्यादानं परं मतम् ।
अन्नेनक्षणया तृप्तिः, यावज्जीवतु विद्ययाः ।

अर्थः—

अन्नदान यद्यपि श्रेष्ठ दान है परन्तु विद्या-दान उससें भी श्रेष्ठ है। अन्न से तो क्षणभर की तृप्ति होती (फिर भूख ही लग जाती है) है, परन्तु विद्या से तो जीवनभर की तृप्ति हो जाती है।

और फिर यहाँ तो विद्या की ही अधिक भूख है। बच्चे पढ़ जायेंगे तो बड़ा उपकार होगा।"

बाबाजीने बड़ी शान्ति से उन्हें उत्तर दिया कि, "भाई, हमारा संकल्प तो अभी जो कुछ बन रहा है उसीका हो गया है। आगे ईश्वर–इच्छा है।

आरतवस नर भया अचेतू
फिर फिर कहे नर आपन हेतू ।

श्रीमान् बाबाजी के इतना कहने पर जब ग्रामीण जन नहीं माने और कई तरह आग्रह करके पाठशाला का अनुरोध बाबाजी से करने ही लगे तो श्रीमान् बाबाजीने प्रसन्नता के साथ उन्हें कुछ ब्रह्मज्ञान के मार्ग से समझाने की कृपा की। आपने कहा—

* "सा विद्या या विमुक्तये" *

"जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरत तिन्ह देखहि तैसी ॥"

"भक्त जनों, यह विश्व विराट भगवान् का स्वरूप है। इस विश्व में स्थित सभी चराचर जीव तथा विशेष कर मनुष्य. प्राणी उसी विराट पुरुष की सेवा में अपनी अपनी बुद्धि और मन्तव्य के अनुसार अहर्निश लगे हुए हैं।

वह सेवा प्रायः भिन्न भिन्न दानस्वरूप है। जैसे कोई अन्नदान कर रहा है तो कोई धनदान कर रहा है। कोई जलदान, कोई विद्यादान तथा वस्त्र, आभूषण, सोना चान्दी, ताम्बा पीतल आदि तरह तरह के दान कर रहे हैं। फल, फूल, घास, वृक्ष, लकडी, साग, भाजी, भोज्य, लेह्य, चोस्य आदि पदार्थ भी कोई दान कर रहा है। कोई इनारा, बावड़ी, पोखरा, तालाब, बाग़बगीचा धर्म-शाला, मकान, गौशाला तथा गौवों कादान कर रहे हैं। कोई अन्नक्षेत्र तथा पाठशाला द्वारा सेवा स्वरूप दान कर रहे हैं। इस प्रकार जो भी जो संसार के प्राणी कर रहे हैं वह सभी उसी विश्वस्वरूप विराट पुरुष की सेवा कर रहे हैं। इन सभी प्रकार की सेवा के प्रेरक भगवान् ही हैं।

"उरप्रेरक रघुवंश विभूषण।"

भगवान् की जो प्रेरणा होती है वही मनुष्य या हरएक प्राणी करता है। उस प्रभु की कृपा से एक पत्ता भी नहीं हिल डुल सकता है। सो यह भी

जो कुछ निर्माण किया जा रहा है (धर्मशाला आदि) वह भगवान् की ही प्रेरणा है। आप लोगों का जो विद्यादान का प्रश्न है उसके लिये भी भगवत् इच्छा ही होनी चाहिए। जिस दिन प्रभु की इच्छा होगी उस दिन आपके आग्रह की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। और विद्या तो हमारे विचार से वही श्रेयस्कर है जिससे जीवन की मुक्ति हो जाय।

मन्दिर–धर्मशाला आदि बनवाने का माहात्म्य भागवत्, महाभारत आदि ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक लिखा है। एवं देवताओं के पूजनदर्शन, आवाहन और भजन, कीर्तन, स्मरण, ध्यान, पाठ, पारायण, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान आदि से मुक्ति प्राप्त होती है। स्वस्वरूप की प्राप्ति से जीवों को सुख शान्ति प्राप्ति होती है। महात्माओं के सत्संग से भी जीवों का कल्याण होता है।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

अर्थः—सन्तों के दर्शन से पुण्य होता है। वे तीर्थरूप ही हैं। तीर्थ तो समय पर फलीभूत होते हैं परन्तु साधुजन शीघ्र ही कल्याणरूप फल देते हैं।

यह साधुसमागम तथा उनके दर्शन देवालय धर्मालयादिक क्षेत्रों में ही प्राप्त हो सकते हैं। विद्या से भी मुक्ति प्राप्त होती है परन्तु वह तभी प्राप्त हो सकती है जब उसका सदुपयोग ब्रह्मज्ञान तथा जनहितार्थ किया जाय।

*** सन्त-संग ही मुक्ति दाता है ***

"क्षणमिह सज्जन संगतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका।"

— "शंकराचार्यजी"

अर्थात्:—सन्तजनों की क्षणभर की संगति भी संसार रूपी सागर में नौका बनकर भव सागर से पार कर देती है।

नाना प्रकार की कला-कौशलता और सुख-सम्पृद्धि तथा राज्यादिक विभूतियाँ सभी परम बन्धन ही हैं। इनसे मुक्ति बहुत दूर रहती है। मुक्ति तो सत्य स्वरूप परमात्मा के चिन्तन से ही उपलब्ध होती है। और परमात्मा के चिन्तन के लिये तो सन्तों का ही आसरा लेना पड़ता है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

— गीता, अ. ४, श्लोक ३४

उन सन्तों के पास पहुँच कर जिज्ञासा भाव से विशेष नम्रता से प्रश्न पूछने चाहिए तथा

उनकी सेवा में लीन हो जाना चाहिए तभी जाके वे ज्ञानी तत्त्व को जाननेवाले सन्तजन तुम्हारे (जिज्ञासुओं के) लिए उस परमपद देनेवाले ज्ञान का उपदेश करते हैं।

सन्त संग अपबर्ग कर कामी भवकर पंथ।
कहहि सन्त कवि कोविद, श्रुतिपुराण सद्ग्रन्थ॥

— तुलसीदासजी

ऐसे बहुत से प्रमाण हैं कि सन्तों की बड़ी ही विचित्र महिमा है जो कि सत्य पथ का मार्ग बताकर जीव की मुक्ति करा देते हैं।

सन्तों की महिमा के बारे में तो गुँसाईजी की रामायण ही बनी पड़ी है। वे एक जगह पर कहते हैं—

"साधुचरित शुभ चरितकपासू।
निरस विषद गुणमय फलजासू॥
जे सहि दुःखपर छिद्र दुरावा।
वन्दनीय तेहि जस जग पावा॥"

'छिद्र' नाम दुःख का है, परन्तु सब से बढ़कर दुःख तो जन्ममरण का है जिससे चौरासी लाख योनियों के चक्कर की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। प्राणीमात्र इसी जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के जंजाल में अपनी वास्तविकता को भूला हुआ

है। इस जंजाल से छुटकारा दिलाने वाली साधु-संगति ही है। अज्ञान–अन्धकार में ठोकरें खाते हुए प्राणी को राह बतलाने वाले सन्तजन ही होते हैं।

सो हमने धर्मशाला और मन्दिर का निर्माण दोनों बातों के लिये किया है याने, सन्तसमागम और हरिकथा।

दोहा—

सुतदारा अरु लक्ष्मी ये पापिन की भी होय।
सन्त समागम हरिकथा जग में दुर्लभ दोय॥

— तुलसीदासजी

इसलिये भक्तजनों, इस समय हमारा विचार जिस वस्तु को बनाने का हुआ है उससे आप लोगों को लाभ उठाना चाहिये। समय आनेपर आप लोगों की इच्छाएँ भी भगवान् पूर्ण करेंगे। ”

इस प्रकार बाबाजीने सदुपदेश देकर पृच्छकों को कृतार्थ किया और 'ॐ नमो महापुरुषाय' कहकर पृच्छक, दर्शक, भक्तजन अपनी अपनी राह चले गये। बाबाजीने भी 'ॐ नमो ब्रह्मणे' कहकर सब का मनोरथ सफल किया।

इतने में पण्डित लालजी कान्य कुब्ज ब्राह्मण भी आपके दर्शनार्थ वहाँपर आ पहुँचे। पण्डितजी उधर आसपास के गाँवों में बड़े प्रति-

ष्ठित और सदाचारी थे। मन्दिर की रचना देखकर बड़े ही प्रसन्न चित्त से कहने लगे।

दोहा—

"आग लगी संसार में झरझर परी अंगार।
जो न होते सन्तजन, दुनिया होती छार॥"

अर्थात्ः—तृष्णारूपी अग्नि जीवधारियों को रातदिन जला रही है। आप जैसे धर्मावतार सन्तों के दर्शन-उपदेशामृत रूपी जल से ही सबको शान्ति प्राप्त होती है।

इतना कहकर पण्डितजी भी यथास्थान चले गये।

* चौबे अछैवरजी कृतार्थ हुए *

मोँहि मौनी के चौबे अछैवरजी भी बाबाजी के दर्शनार्थ आ पहुँचे। दण्डवत प्रणाम करके कहने लगे।

चौपाई—

"धन्य धन्य पितु मातु तुम्हारे।
जिनके सुत तुम पूजन हारे॥
बार बार धन्य गुरु देव तपोधन।
जिन्ह किये सतगुरु आप दयाधन॥
यश कीरति चहु ओर सुहाई।
तापस भेष अति सुन्दरताई॥"

"धन्य महाराज, आपके तप प्रभाव से आपके माता-पितादि पितृजन और पारिवारिक पितृजन भी सत्पथ के गामी हो गये हैं। आप तो साक्षात् सिद्ध अवतार मालूम पड़ते हैं। धन्य है आपके लिये।" श्रीमान् बाबाजीने नम्रता के साथ हाथ जोड़कर कहा—

"ब्रह्मदेव भूदेव महाधन।
वेद पुराण ज्ञान अति पावन॥"

"भूदेव, आप धन्य हैं। जो कुछ आप कह रहे हैं वह तो आपकी कीर्तिस्वरूप सभ्यता है।"

ब्रह्मदेवने कहा:— "महाराज, हम तो जो देख रहे हैं वही कह रहे हैं। इसमें बढ़ाई की बात ही क्या है?"

इस प्रकार कहने के पश्चात् चौबेजी दण्डवत प्रणाम करके चले गये।

* सन १९५१ में *

इसी प्रकार सन १९५१ में भी उदासीनपुरी में आपसे भक्तजनोंने प्रश्न पूछे और आपके उत्तर से कृतार्थ हुए। रामनवमी के शुभपर्व पर बहुत से साधुसन्तों का जमघट हो रखा था, सेवक गण भी जुटे हुए थे। आनन्द का समय था। एक भक्तने श्रीमान् बाबाजी से प्रश्न किया—

"महाराज, आत्मा सदा सुखस्वरूप है तो दुःख की प्रतीति क्यों होती है ? —जैसे कि कोई कहता है 'मैं काना हूँ, मैं लंगड़ा हूँ, मैं दीन–दुःखी–निर्धन आदि हूँ।' इस प्रकार के वचनों से तो आत्मा दुःखी ही प्रतीत हो रहा है।........"

इस प्रकार के प्रश्न से बाबू सुखदेवराय, श्रीपतिराय आदि बाबाजी की तरफ देखने लगे क्यों कि महाराज सद्गुरु बाबाजी अनेक शंकाओं का समाधान कर चुके थे।

श्रीमान् बाबाजी का यद्यपि सन्ध्याकालीन नित्यकर्म का समय हो गया था, फिर भी एक ही दोहे में सारी शंकाओं का निवारण कर दिया।

दोहा—

"निज आत्म अज्ञान से मिथ्या होय प्रतीत।
जगत स्वप्न नभनीलता, रज्जु भुजंग की रीत।"

सत्संगी मण्डली "गागर में सागर" की तरह इस दोहे को सुन कर आपकी जय जय कार करने लगी। सन्ध्या का समय हुआ, भक्त मण्डली आपके चरित्र और उपदेशों का मनन करती हुई अपने अपने स्थान को चली गयी।

आज भी जब कभी बाबाजी उदासीनपुरी जाते हैं तो श्री सुखदेवराय, श्रीपतिरायजी अपनी अपनी मण्डली सहित दर्शनार्थ और सत्संग के लिये

आते रहते हैं क्यों कि वे लोग भगवत्प्रेमी हैं। इनके मन में हमेशा के लिये यह भाव दृढ़ हो गया है कि:— "राम से अधिक राम के दासा।"

श्रीपतिरायजी तो उदासीनपुरी पंच मन्दिर का विशेष ध्यान रखते हैं। इनका दृढ़ विचार है कि बाबाजीने अद्भुत अलौकिक कीर्ति स्थापित कर दी हैं; सो भविष्य में यह ध्वजा सुरक्षित स्थित रहे। साथ ही अपने संगी–साथियों को इस सत्य मार्ग पर प्रेरित करते रहते हैं। संत समागम हरिकथा का लाभ हमेशा के लिये चाहते हैं।

* सन १९५३ में *

श्रीमान् बाबाजी सन १९५३ में भी जब उदासीनपुरी पहुँचे तो पूर्ववत् सत्संगी जन साधु–सन्त आपके दर्शनार्थ इकट्ठे हो गये। इस समय भी "सत्संग के द्वारा मुक्ति होती है" इस विषय पर चर्चा हुई। श्रीमान् पं. केशवजी सिला, काष्ठ और वृक्षों का प्रमाण देकर पुरानी भक्त गाथाओं से प्रमाणित कर रहे थे कि सत्संग के द्वारा किस किस को मुक्ति मिली है। इतने में एक तार्किक महोदयने कि कहा "यह आप जो कुछ

कह रहे हैं सो तो अन्धविश्वास की बातें हैं; कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दीजिये।"

इस तर्कवितर्क के प्रश्न को सुनकर श्रीमान् बाबाजी अपने शीतल सहज स्वभाव से बोलेः—

"महाशयजी, एक प्रत्यक्ष प्रमाण से सर्वथा काम नहीं चल सकता है, सो मैं आपको कुछ एक प्रमाण बताता हूँ, उनमें से आपको जो रुचे सो कीजिये।

ऋषि, मुनि शास्त्रकारोंने छः प्रमाण माने हैं। चार्वाककारने एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना है। कणाद सुगतने दो प्रमाण माने हैं (प्रत्यक्ष और अनुमान)। कपिल मुनिने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण माने हैं। गौतम ऋषिने उपमान के साथ चार प्रमाण माने हैं। प्रभाकरने अर्थापत्ति सहित पाँच प्रमाण माने हैं। पूर्व मीमाँसक भट्ट लोलटने अनुपलब्धि सहित छः प्रमाण माने हैं।

कृपया इनसे अधिक प्रमाणों की आवश्यकता हो तो "विचारसागर" ग्रन्थ देखने से हृदय पटल अत्यन्त निर्मल हो जायेगा। तर्क का समाधान उसीमें अच्छी प्रकार किया गया है।

* अन्धविश्वास क्या है *

आज वर्तमान कलिकाल में प्रायः बहुमुखी

समाज सनातन धर्मावलम्बियों को अन्धविश्वासी कहकर तिरस्कृत करते हैं; उनसे घृणा और द्वेष करते हैं। परन्तु सचमुच में देखा जाय तो अन्ध-विश्वास क्या है, सनातन धर्म क्या है, वास्तव में इसका क्या अर्थ और प्रयोजन है इसे कोई नहीं जानता; अगर कोई जानता तो कभी भी ऐसा कह ही नहीं सकता। जो वास्तव में इस प्रयोजन को जानता है वह इस तरह अनर्गल बातें कहता ही नहीं है।

सनातन धर्म का असली माने हैं आदिकाल का वैदिक धर्म, सत्य सनातन प्रभु के असली स्वरूप प्राप्त करने के साधन सनातन धर्मी ही जान सकते हैं। सनातन धर्मियों का पूर्ण विश्वास परम पिता परमात्मा पर रहता है; उनकी भावना पवित्र होती है। सत्य अहिंसा तो सनातन का स्वरूप ही है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्।
न ब्रूयात् सत्यमाप्रियम् ॥
अप्रियं नानृतं ब्रूयात्।
एष धर्मः सनातनः ॥

यद्यपि वर्तमान कलिकाल में बहुसंख्याक लोगोंने पुरुषार्थ को ही सर्वस्व मान रखा है। परन्तु यदि पुरुषार्थ में सफलता प्राप्त नहीं हुई तो उनके जीवन में महान् आघात होता है। जीवन

मरण का प्रश्न उनके सामने हो जाता है। अन्त में वे हताश होकर निस्तेज हो जात हैं।

परन्तु ईश्वर विश्वासी सनातन धर्मी सुख दुःख में हर्ष और विषाद की मात्रा को ग्रहण नहीं करते। वे ईश्वर-इच्छा प्रबल मान कर ही सुखी रहते हैं। वे सर्वत्र ईश्वर को साक्षी मानकर कर्म करते रहते हैं। फल की इच्छा प्रभु के ही पास रहने देते हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

—गीता, अध्याय २, श्लोक ४७

इस भगवदूक्ति पर सनातन धर्मी ही विश्वास करते हैं। और जो फल की इच्छा से ही कर्म करते हैं, उन्हें यदि मन--इच्छित फल नहीं मिला तो महान् दुःख के सागर में वे ही लोग गोता लगाते रहते हैं। वे भवसागर से पार नहीं हो सकते।

इसीलिये भागवत् में लिखा है:—
"आशायां परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।"

हम तो उन्हीं को अन्धविश्वासी कहेंगे जो फल की इच्छा में ही डूबे रहते हैं। जैसे खेती करनेवाले, व्यापार करनेवाले, नौकरी करनेवाले,

आहार ब्योहारादिक व्यवसायिक बुद्धिवाले ही प्रायः अन्धविश्वासी कहे जा सकते हैं, क्यों कि वे लोग जिसका जो व्यवसाय है उसमें यदि उसे इच्छानुकूल लाभ नहीं हुआ तो उन्हें महान् दुःख होता है, उन्हें यह दृढ़ विश्वास तो है ही नहीं कि कर्म फल का लोप तो हो ही नहीं सकता। कौन कर्म का फल कब उदय होता है इसे भी कोई नहीं जानता और आशा में अधिकाधिक बन्धे रहता है।—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥

— गीता, अ. १६, श्लोक १३

इस प्रकार के व्यवसायी प्राणियों को हम अन्धविश्वासी कहेंगे। सनातन धर्मियों के बहुत से प्रमाणों में अनुपलब्धि भी एक महान् प्रमाण है इससे वे धैर्यवान सनातन धर्मी हैं। वे अनुमान प्रमाण को सन्मुख रखकर ही खेती आदि व्यवसाय करते हैं, वे निष्काम व्यवसाय करते हैं। इसलिये सनातन धर्मी अन्धविश्वासी नहीं है बल्कि वे लोग ही अन्धविश्वासी हैं जो अधिकार-प्राप्ति के लिये अनाधिकार चेष्टा करते रहते हैं।

सनातनी लोग तो "अनुपलब्धि प्रमाण" सन्मुख जान कर पुरुषार्थ के फल मिलने पर मदान्ध नहीं होते हैं। शाब्दिक प्रमाण (श्रुति-स्मृत्यादि सद्ग्रन्थों के उपदेश में पूर्ण विश्वास रखना शाब्दिक प्रमाण कहा जाता है) भी सनातनियों का वास्तविक सिद्धान्त होता है।

जैसे माता अपने छोटे पुत्र को बताती है यह तुम्हारा बड़ा भाई प्रदेश गया था। छोटा भाई माता के संकेत से बड़े भाई को मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अर्थात् मातारूपी श्रुतिने पुत्ररूपी सनातनी को बड़े भाईरूपी ईश्वर को प्राप्त करा के (संकेत करके) सुखरूपी परम पद मुक्ति प्राप्त करा दी है। श्रुति जन्म-मरण के से छुटकारा दिला देती है। इसलिये जो सज्जन पुरुष उस प्रभु के नाम में पूर्ण विश्वास रखते हैं उनका नाम सनातन धर्मी है। सनातन धर्मी अन्धविश्वास न रखकर प्रभु पर ही विश्वास रखते हैं।"

"हरि ॐ तत्सत् ब्रह्म।"

इस प्रकार उपदेशामृत पानकर सत्संगी जन अपने अपने आश्रम को प्रसन्न चित्त से चले गये।

* काशी–विश्वनाथजी की कृपा *

सन १९४२ से आप साल में एक बार काशी विश्वनाथजी के दर्शन किया करते हैं।

अब आप उदासीनपुरी कशानगंज से ज्येष्ठ गंगादशहरा से पहिले ही पूना को रवाना हुए। बीच में काशीजी उतर गये। भगवान् भोलेनाथ अन्नपूर्णादि देवों के दर्शन, गंगास्नान आपने श्रद्धा प्रेम से किया। आप पर भगवान् विश्वनाथजी की असीम कृपा है। आप उनके दर्शन से हमेशा अपनी भक्ति और पुण्य को बढ़ाते रहते हैं।

काशी विश्वनाथजी की असीम कृपा से ही बाबाजी की समस्त इच्छाएँ पूर्ण होती रहती हैं और उन्हीं की कृपा से भविष्य में भी होती रहेगी।

आगे भी भगवान् काशी विश्वनाथजी की चरणों की ही कृपा बनी रहेगी।

* परमार्थ *

बाबाजी का शरीर ही परमार्थ के लिये तथा सेवा–व्रत सत्कार्य के लिये बना हुआ है।

गुसाँई तुलसीदासजीने कहा हैः—

" सन्त विटप सरिता गिरिधरणी
परहित हेतु इन्हन की करणी। "

कबीरदासजी भी लिखते हैं:—

"वृक्ष फलै न आपको, सरिता सचै न नीर
परमारथ के कारणे, सन्तन धरा शरीर।"

चाणक्यमुनि लिखते हैं:—

"परोपकाराय सतां विभूतयः॥"

सन्तों की विभूतियाँ दूसरों की भलाई के लिये होती हैं।

इस प्रकार बाबाजी का जीवन परमार्थ और लोककल्याण में ही व्यस्त रहता है। (इस विषय पर भूमिका में लिखा गया है।)

* उदासीनपुरी में तालाब की पूर्ति *

श्रीमान् सद्गुरु बाबाजी तो लोकोपकार के लिये अपना तन-मन-धन लगा देते हैं। कोई भी उपकार का कार्य जब तक पूर्ण नहीं होता तब तक आप विश्राम नहीं करते।

उदासीनपुरी . कप्तानगंज में जो तालाब की खोदाई हुई थी अब उसके बारे में वहाँके लोगों का फिर पत्र आया तो आपने अप्रैल १९५३ में वहाँके लिये प्रस्थान किया। आपके सेवकोंने आपको मोटर द्वारा पूना स्टेशन पहुँचाया। भक्त सेवकों की अधिक से अधिक भीड़ थी और लेखक

(सेवक) भी उस समय दर्शनों तथा बिदाई में उपस्थित था ।

बहुतों के आँखों में आँसूँ डबडबा रहे थे । बाबाजी का विरह हरएक को असह्य था । अपनी अपनी भावनाएँ सभी कह रहे थे—कोई कहता था कि " महाराज मेरे तो प्राण हैं " । कोई कहता " मेरे तो सर्वस्व ही बाबाजी हैं " । कोई कहता " मेरे तो बाबाजी ही गिरधर गोपाल हैं । " आदि आदि उक्तियाँ अपने अपने बिरह में सभी कह रहे थे ।

लेखक (सेवक) का भी बाबाजी के साथ पिता–पुत्र का–सा सन्बन्ध हो गया था । अतः सेवक भी सोच रहा था " कहीं बाबाजी की देरी हो गयी और यहाँ कोई कष्ट आ पडा तो बाबाजी की राख कहाँसे मिलेगी ! "

अस्तु । पूज्यपाद महाराजजी गये और अपने नियम के अनुसार काशी विश्वनाथजी के दर्शन करते हुए उदासीनपुरी में पहुँचे । साथ में एक मिस्त्री लालजी और एक साधु पुजारी बिहारी दासजी को भी ले गये थे । बर्षात के भय से तालाब की पूर्ति शीघ्र ही अपने सामने करवा कर वहाँके लोगों को शान्ति प्रदान कर वहाँसे लौटकर काशी विश्वनाथजी के दर्शन, गङ्गास्नान करके जून
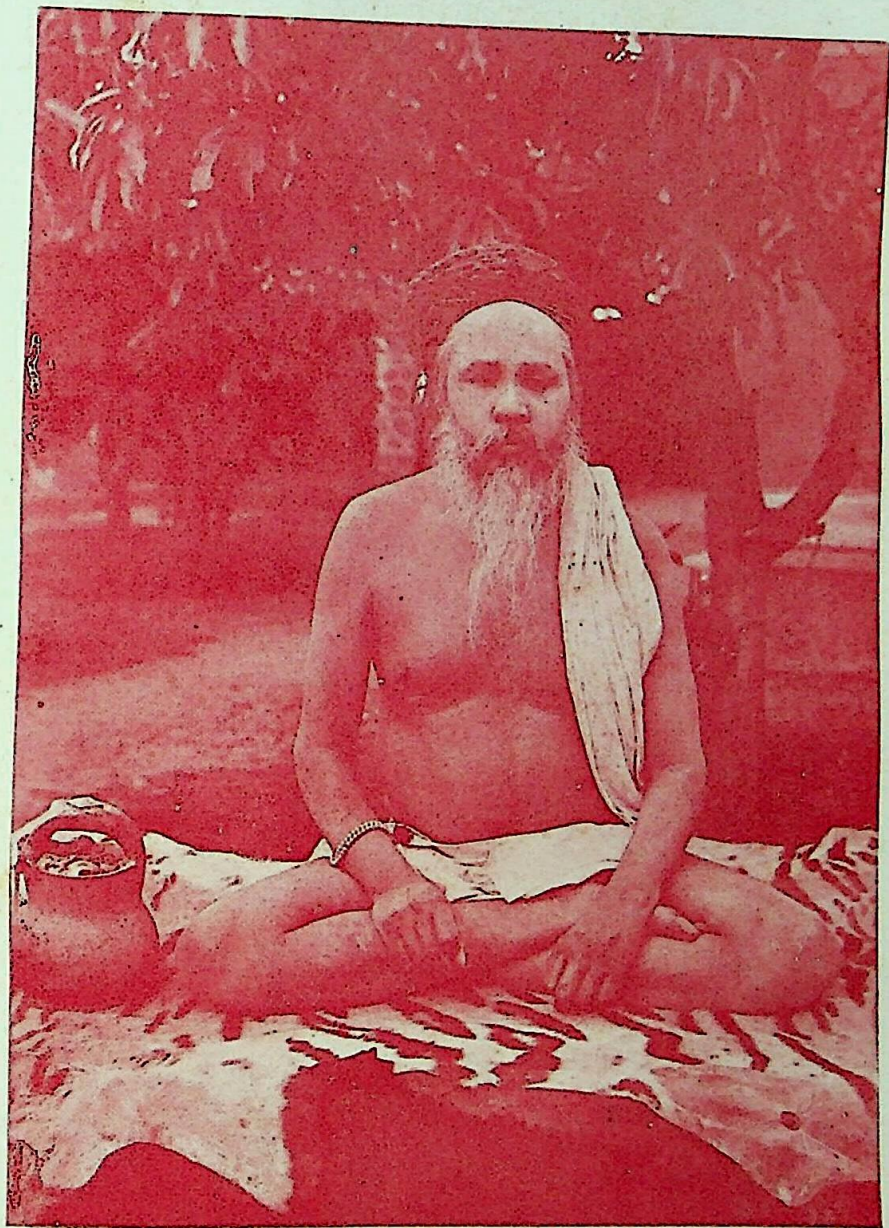
बाबाजी जनता को दर्शन देने के लिये आसन पर बैठे हुए समय ।
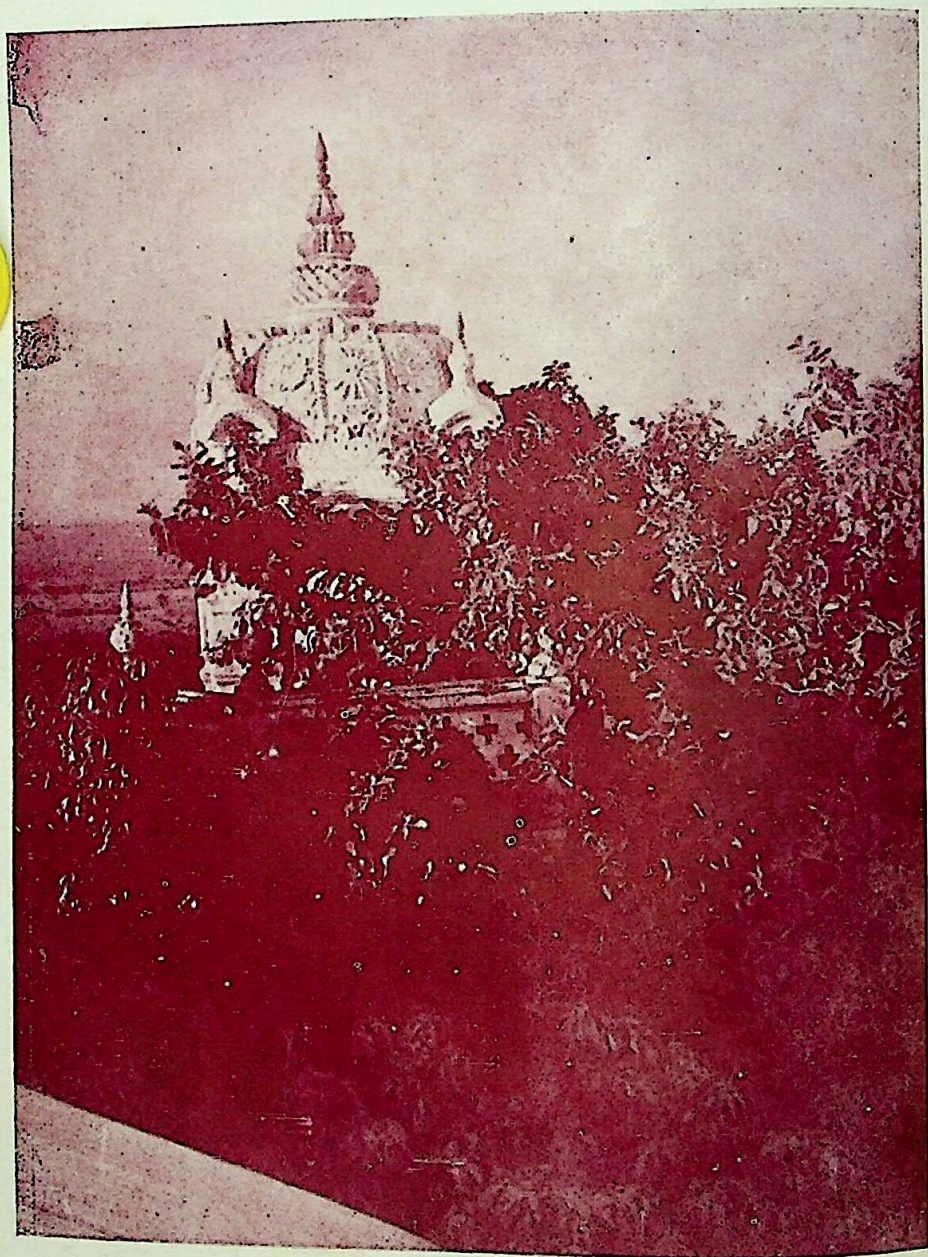
बावाजी का आसन-मंदिर (रामटेकड़ी, पूना)

२० ता., १९५३ को आप उदासीनगढ़ रामटेकड़ी पूना आ बिराजे।

* सुख शान्ति का निवास *

अब आप अपने पूर्ववत् नियम से अपने नित्यकर्म में लगे हुए हैं। भक्त-सेवक-जनों को दर्शन (पूर्ववत् एक-दो घण्टा सुबह, एक-दो घण्टा शाम को) उपदेशामृत से कृतार्थ करते रहते हैं।

लोगों की भीड़ रात दिन लगी ही रहती है। अतिथी अभ्यागतों का स्वागत सत्कार यथा-योग्य समयानुकूल होता रहता है। आश्रम में हर समय शिष्यों के अलावा दस-पंद्रह साधु-सन्तजन उपास्थित रहते तथा आते जाते रहते हैं।

आपके आश्रम में एक सुन्दर गौशाला है। जिसमें गौमाताओं की सेवा का अच्छा साधन बना हुआ है। आतिथी अभ्यागत और गौवों की सेवा बड़ी देखरेख से होती है। टेकड़ी (उदासीनगढ़) के आसपास की ज़मीन के घाँस तथा खेतों के चारे से गौवों की तृप्ति होती है। गौमाताओं के द्वारा आश्रम की और भी शोभा बढ़ गयी है। बाबाजी का कहना है:—
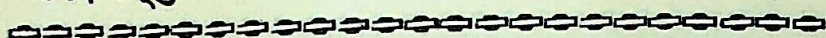
"गावो में अग्रतः सन्तु, गावो में सन्तु पृष्ठतः।
गवामातेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चर्तुदश ॥"
(गौवें मेरी आगे से हों, गौवें मेरी पीछे से हों, क्यों कि गौमाताओं के अंगों में चौदह भुवन निवास करते हैं।)
"बिप्र धेनु सुर संत हित। लीन मनुज अवतार।"
— तुलसीदासजी

* वार्षिक उत्सव *

उदासीनगढ़ पर साल भर में बहुत से भण्डारे भी होते हैं जैसे कि जब पंचाग्नि धूना साधन समाप्त होता है अथवा जब भी जिस साधन, पाठ, जाप का धूना समाप्त होता है, तभी भण्डारा किया जाता है। चैत्रमास में श्रीराम-नवमी उत्सव पर भी भण्डारा होता है। तथा जब भी बाबाजी यात्रा से लौट आते हैं तब भी भण्डारा होता है। और श्राद्धपक्ष में गुरु नानकदेवजी का श्राद्ध होता है तब भी भण्डारा किया जाता है।

* शिवगोविंद-दशमी उत्सव *

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में शिवगोविन्द दशमी उत्सव के उपलक्ष में भी भण्डारा होता है। यह
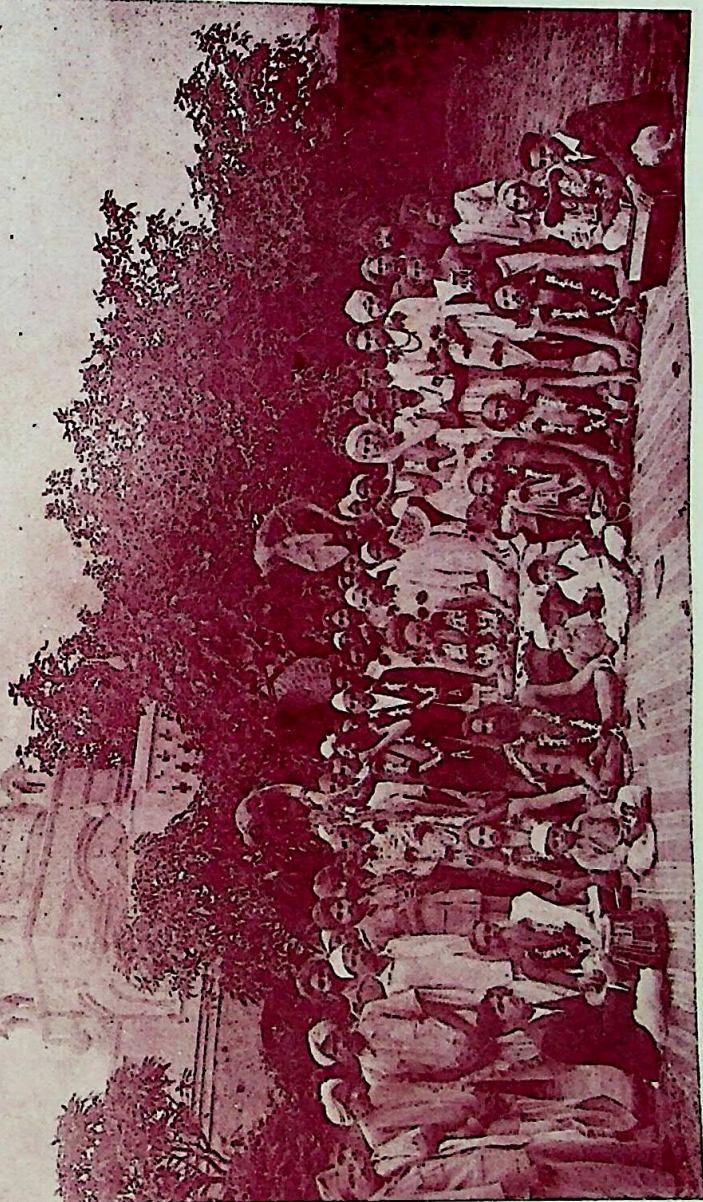
रामटेकड़ी पर जुलूस के समय का दृश्य।

बाबाजी पूना के प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर के दर्शन के लिये गये रहें जब।

भण्डारा बृहत्-से बृहद् रूप में होता है। इसमें असंख्य ग़रीब अमीर, साधु-सन्त-गृहस्थ आदि प्रसाद प्राप्त करते हैं। इस शुभपर्व दिन को बाबाजीने अपने विवेक द्वारा और गीता के प्रमाण द्वारा निश्चित किया है। सन १९३२ से यह पर्व का प्रारंभ हुआ है।

शिवगोविन्द दशमी के समारोह में उदासीनगढ़ का साज देखते ही बनता है। चारों ओर लाउडस्पीकर लगे रहते हैं। हजारों लोग मेले कि तरह इकट्ठे होते हैं। साथ भीड़ छँटती रहती है और यात्री आते जाते रहते हैं। इस दिन भगवान् की सवारी उदासीनगढ़ की परिक्रमा में बड़े साजवाज से परिक्रमा लगायी जाती है। अच्छे अच्छे भजनीक और कीर्तन मण्डलियों के भजन कीर्तन की ध्वनि यथा निश्चित समय पर गूँजती रहती है।

व्याख्यान दाताओं के उपदेश, विद्वानों के प्रवचन होते हैं और हवन यज्ञ भी होता है।

जिस समय श्रीमान् १०८ बाबा शारदाराम उदासीन महाराज गुफ़ा से बाहर निकल कर दर्शन देते हैं तो अपने मुखारविन्द से जनता को सदुपदेश देकर कृतार्थ करते हैं।

मध्यान्होत्तर में भण्डारा होता है। फिर रात्री को उदासिनिगढ़ की 'तपोभूमि' नाम की फिल्म वर्तमान में दिखायी जाती है। यह 'तपोभूमि' फिल्म बाबाजी के प्रिय सेवक श्री प्रभाती कन्हैय्यालाल गुप्ता और श्री गुरुदयालसिंग चंदनसिंग हुंजन इन दोनों सेवको ने बडे ही परि-श्रम से बनाई है। तदुपरान्त हरिकीर्तन की ध्वनि रात के ग्यारह बारह बजे तक होती रहती है।

महाराजजी के सत्वचन के शुभाशीर्वाद से जनता का कितना कल्याण हुआ यह "प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्" के अनुसार वर्तमान में भी पाठक-गण स्वतः दर्शन करके "एक पन्थ दो काज" के अनुसार (सद्गुरु बाबाजी के दर्शन भी हो जाएँगे और कल्याण भी हो जायगा) कर सकते हैं।
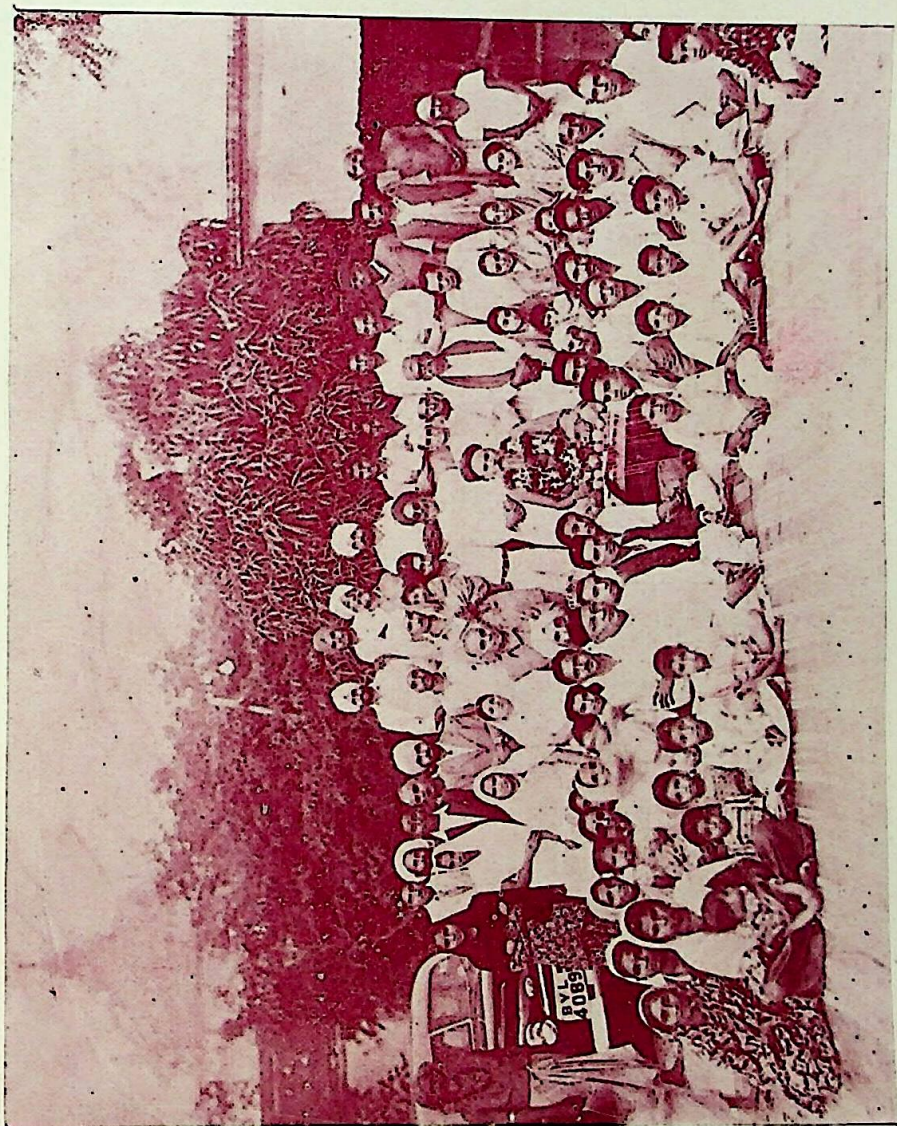
शिष्य, सेंवकों के साथ बाबाजी
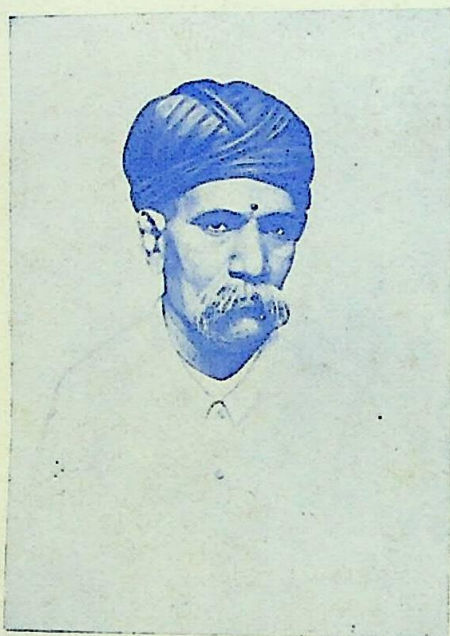
स्व. शेठ वन्नाजी सराफ

स्व. शेठ वन्नाजी और स्व० शेठ गणेशलाल सराफ, पूना के यह दोनों भाई बाबाजी के परम सेवक थे। बाबाजी पर उनकी बडी ही श्रद्धा थी। उन्होंनें श्रीरामटेकड़ी पर श्रीराम-लक्ष्मण सीताजी का मंदिर बनवाया है। स्व० शेठ गणेशलालजी की धर्मपत्नि श्रीमती मंगुबाई गणेशलाल सराफ भी बाबाजी के परम सेवक है। स्व० शेठ वन्नाजी और स्व० शेठ गणेशलाल इनके स्मरणार्थ श्रीमती मंगुबाई भ्र. गणेशलाल और उनके सुपुत्र श्री. अचलदास वन्नाजी और श्री. जव्हेरचंद गणेशलाल इन्होंनें इस ग्रंथ की छपाई के लिये विशेष आर्थिक सहायता की है।

स्व. शेठ गणेशलाल सराफ

अनुभवसिद्ध प्रकरण

मंत्र

ॐ ब्रह्म सोऽहं जाप,
शुद्ध ब्रह्म आतम आप।
आदि गुरु हँसावतार,
आतम मेधावी सनत्कुमार।
ॐ सत् नाम श्रुत,
नाम जप जीवन मुक्त।

* मंत्रसिद्धि और जलस्थम्मन *

"अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते॥"

— गीता, अ. ६, श्लो. ३५

[यद्यपि पूर्वार्ध में बाबाजी की तपोमय जीवनी सविस्तार लिखी जा चुकी है किन्तु कुछ प्रमुख घटनायें ऐसी छूट गई थीं जिनका उल्लेख अनुभवसिद्ध प्रकरण में किया जा रहा है। इस ग्रंथ में वास्तविक घटनाओं और स्वभाविक जीवनी पर ही उल्लेख किया गया है।]

"वैराग्य का फल निर्भयता है" सो बाबाजी के निर्भयता की प्रमुख घटनाओं का कुछ सार इस प्रकार है:

जब आप हृषिकेश की यात्रा में गये तो आप स्वर्गाश्रम में गंगाजी के किनारे एक गुफा में ठहर गयें, जिसमें कोई भी नहीं ठहरता था। गुफा के पास ही बियावान जंगल के फल आप के आहार के काम आते थे। अन्नक्षेत्र आधा मील पर था। कभी कभी क्षेत्र से भी अन्न प्राप्त हो जाता था।

अधिकतर तो आप उन दिनों निराहार ही समय यापन करते थे। क्यों कि आप उन दिनों गुरुदेवजी से प्राप्त किये हुए तपोमय साधनों का अभ्यास करते थे।

आप का नित्य नियम था तीन बजे रात ही उठ जाना। प्रातर्विधि क्रिया से निवृत हो कर गंगाजी में खड़े होकर एक डेढ़ घण्टा जप करते थे। जलस्थम्मन तथा हटयोग साधन भी आपने अधिकतर उधर गंगाजी के आश्रम पर किया। उन दिनों उस स्थान पर शेर, हाथी, चीता, बाघ, आदि भयानक जानवर पानी पीने के लिये तथा जलक्रीड़ा के लिये आया करते थे। बाबाजी तो अपने साधन में बाबा बनखण्डीसाहेब का मंत्र, गुरु नानकजी के मंत्र, उपरोक्त उदासीन मंत्र, आदि बहुत से विशिष्ट मंत्रों के सिद्ध करने में व्यस्त रहते थे। शेर–बाघ, आदि जानवर आपके

धूना को सूंग कर ही चुपचाप उल्टे पाँओं लौट जाते थे। या यों समझिये कि उन महा मंत्रों के साधक तपस्वी को माथा टेक कर कृतार्थ होकर अपनी राह लग जाते थे।

* महा विरक्त मथुरादास अवधूत के दर्शन *

"साधूनां दर्शनं पुण्यम्।"

उस गुफा की साधन सिद्धि के पश्चात् आप हरिद्वार में निराकारीय स्थान या अवधूत मण्डल के पास जंगल में नहर के किनारे आकर ठहरे। दो महीने तक आप उस जंगल की शोभा बढ़ाते रहे। ईश्वरीय प्रेरणा से दयालु साधुजन आपको भोजन पहुँचा दिया करते थे। अनायास महा विरक्त "मथुरादास अवधूतजी" के दर्शन आपको इन्हीं दिनों हुए। आपको उनके शुभ दर्शनों से अपार शान्ति प्राप्त हुई।

* सन्त ही आकाश के खम्भे होते हैं *

एक बार आप कानपुर में गंगा के किनारे बिठोर घाट पहुँचे। गंगाजी के बीच में वहाँ कुछ दस बीघा ऐसी सूखी रेतीली ज़मीन थी और पास ही में स्मशान था। आपने स्मशान की

अधजली लकड़ियों से उसी मैदान में अपना धूना जमा दिया। जेठ का महीना, कड़कती हुई धूप, नंगा मैदान, नंगा ही रहन सहन और विषैली 'लू' का स्वाभाविक प्रकोप को देख कर देखने-वाले लोग दाँतों तले उँगली दबा के देखते रह जाते थे। गंगा मैया का जल कुछ बढ़ता जा रहा था, लोगों का कहना था कि—"या तो हिमालय से बर्फ पिघल कर आ रही है, या— कहाँ पानी अधिक बर्षा है इसीसे गंगाजी बढ़ती जा रही है।" फिर भी आप निर्भयता के साथ जल के बीच में बैठे रहे। लोग उस घाट के रास्ते नावों के द्वारा आरपार हुआ करते थे। किन्तु अब तो अद्भुत फक्कड़ को देख कर यात्रियों या दर्शनार्थियों की खाशा भीड़ रात दिन होने लगी थी।

बाबाजी तो अपने निर्भिक आसन जमा कर भगवत् चिन्तन करते रहते थे। उनके लिये तो स्मशान और रमणीक महल एक ही समान था। चिल-चिलाती धूप हो या ओले बर्ष रहे हों या सुन्दर बसन्त का साज हो आपके लिये तो "पण्डिताः समदर्शिनः" [पण्डित (ज्ञानी जन) लोग तो समदर्शी होते हैं] यह उक्ति चरितार्थ हो गयी थी।

आपकी इस निर्भय वृत्ति को देखकर दर्शक गण दंग हो जाते थे। बड़े बड़े विद्वान उन्हें

देखकर कहते रहे कि, "सन्त ही तो आकाश के खम्मे हैं" आदि उक्तियाँ कई लोग कहते रहते थे और प्रणाम करके आपकी आरती उतारा करते थे।

* चित्रकूट में *

कानपुर से आप चित्रकूट पहुँचे। वहाँ अनेक मंदिर- देव मूर्तियों के दर्शन करके "बूढ़े हनुमानजी" के दर्शनार्थ पहुँचे तो उसी मंदिर के पास स्मशान में चिता जल रही थी। आपने सोचा इससे और अच्छी सुविधा कहाँ मिलेगी? इसलिये स्मशान में ही चिता से एक दो जलती लकड़ी लेकर धूना जमा दिया। दुपहर का समय था, आप "ॐ ब्रह्म" जपते हुए प्रभु का ध्यान करने लगे। आपको प्रातःसायं नित्य कर्म और प्रभु का जप करते हुए पाँच-छः दिन व्यतीत हो गये किन्तु भोजनादिक निर्वाह की कोई सुद आपको नहीं हुई और न इतने दिनों कोई भी मनुष्य उस रास्ते आ टपका। कुछ दूरी पर स्नान घाट था। जब कभी कुछ दिन बाद छोटे छोटे स्कूल के बच्चे आये तो बाबाजी को देखकर हँसते हुए कहते थे कि, "बाबा, इस वक्त तो खूब मज़े से बैठा है परन्तु रात को पता चलेगा जब कि भूत

चुड़ैल आकर चिल्लायेंगे"। परन्तु बाबाजी का साधन तो निर्भयता का था। आप परम शान्ति से अपनी "सुमरिनी" को फेराही करते थे। आपकी दृढ़ता को देखकर कुछ दिन के बाद वहाँ इतनी अपार भीड़ लोगों की होती रही कि रात में भी बारह-एक बजे तक हरिकीर्तन, कथाश्रवण, सत्संग करके लोग घरको लौटते थे।

* विभूति (राख) की करामात *

उस घाट के पार राजमहल था। उस महल के राजा पर अंग्रेज़ों के कारण बहुत भारी संकट आया हुआ था। राजाने जब महाराजजी का चमत्कारपूर्ण यश सुना तो अपने मंत्री को भेजकर अपने कष्टनिवारण के लिये उपाय पूछा। बाबाजी तो अन्तर्यामी सिद्ध योगी थे। बातचीत बिल्कुल ही कम करते थे। एक चुंगटी "बभूति" (धुनी की राख) पत्ते में लपेटकर मंत्री महोदय की ओर फेंक दी।

"चुंगटी एक बभूति देकर
कष्ट सभी का हरते हैं।"

बस फिर क्या था, उस एक चुंगटीने न जाने कितने संकट राजा के दूर हुए। महाराज

बाबाजी के चरणों में अपार जनता उमड पड़ी और दर्शन लाभ से कृतार्थ होती रही।

* मरघटवासी *

"बाबा मरघट का तपस्वी सिद्ध है" यह लोगों की उक्ति चरितार्थ हो गयी थी।

दो महीने के बाद आप वहाँसे उदासीन आश्रम सीरसाबन में चले गये। श्रीमान् १०८ बाबा माधवरामजी का बनाया हुआ वह आश्रम था। उस समय उस आश्रम के महन्त बाबा गोविन्दरामजी थे। आजागुरु नारायणराम के वे गुरुभाई लगते थे।

* ग्वालियर-भेलसा के स्मशान में समाधि *

चित्रकूट से आप ग्वालियर भेलसा ज़िले में जाकर, घूमते फिरते नदी के किनारे मरघट पर पहुँच गये। वहाँ पत्त्थरों की दो चार क्षत्री बनी हुई थी [जिनको समाधि मन्दिर कहते थे] उसी जगह आप बैठ गये। निर्भयता के साथ कुछ दिन वहाँ रहने लगे कि अनायास वहाँके जमींदार देवीप्रसाद के कर्मचारी लोग बाबाजी की सेवा में जुट गये। पंद्रह दिन के बाद स्वयं देवीप्रसाद भी आ पहुँचे, बाबाजी के तपस्वी

दर्शनों से वह मोहित–सा हो गया। हाथ जोड़कर उन्होंने विनय की कि, "महाराज, मैं एक ज़मींदार हूँ। मैंने साधुओं के ठहरने के लिये अपने घर से अलग कुटी बनवायी है। कृपा कर आप चौमासे भर अपने वचनामृत तथा दर्शनों से हमें कृतार्थ कीजिये।"

आपने प्रसन्नता से उत्तर दिया —

"भक्तराज! हमारे लिये तो यहीं पर कुटी का परमानंद सुख मिल रहा है।"

"निरास मठ, निरन्तरध्यान।
निर्भय नगरी, गुरुदीपक ज्ञान।
उदासी सोई जो पाले उदास।
रुख बिरुखकर गिरिकन्दरवास।"

(अर्थात्) "हम उदासीन हैं, हमारे लिये हर-प्रकार आनन्द ही आनन्द है। चाहे तरुतले बसेरा हो या नंगा मैदान, पहाड़ हो या पहाड़ की गुफा, मरघट हो या मन्दिर, राजमहल या धर्मशाला सभी में आनन्दस्वरूप आत्मा का आनन्द है।"

ज़मींदार देवीप्रसाद बाबाजीकी गम्भीर वास्तविक बाणी सुनकर गद्गद् हो गये। बाबाजी के चरणों में माथा टेक कर साधुओं के गुणों को इस प्रकार गाने लगेः—

दोहाः— " वृक्ष फलै न आपको सरिता सचै न नीर।
परमारथ के कारणे, साधुन धरा शरीर ॥ "

और—

चौपाईः—" सन्त, विटप, सरिता, गिरिधरनी।
परहित हेत इन्हन की करनी ॥
सन्त सहे दुःख परहित लागी।
परदुःख हेत असन्त अभागी ॥ "

दोहाः—" सन्त सरल चित जगत हित।
जानु स्वभाव सनेह ॥
अञ्जलिगत शुभ सुमन जिमि।
सम सुगन्ध कर दोय ॥ "

इस प्रकार तरह तरह सन्तों की महिमा का कीर्तन करने के बाद ज़मींदारजीने कहा, " भगवन्, आप सन्त हैं। आप कृपा कर परमार्थ की दृष्टि रखते हुए सेवक के घर तक अवश्य पधारिये ! " आप इस प्रार्थना को ठुकरा न सके। दूसरे दिन नौकर के हाथ ज़मींनदारने दूध भेज दिया फिर स्वयं आकर बाबाजी को उस स्थान पर ले गया जो सेठने साधु सन्तों के लिये बना रखा था।

बाबाजी को वहाँ ले जाकर ज़मींदारने बड़ी श्रद्धा से जलपान भोजन करवाया। ग्रामीण जनता दर्शनों से कृतार्थ हुई।

अब आपने तीर्थयात्रा को समाप्त किया और पूना रामटेकड़ी अपने स्थान पर आ गये। लेखकने रामटेकड़ी का वर्णन तो पहिले यात्रा प्रकरण में कर ही दिया कि, "बाबाजी जब सर्वप्रथम रामटेकड़ी पहाड़ी जंगल पर पहुँचे तो क्या ही भयानक स्थिति उस पहाड़ी की थी।" किन्तु बाबाजी तो निर्भयता साधन भली प्रकार कर चुके थे।

* पूना सिंहगढ़ की यात्रा *

रामेश्वर होते हुए पूना पहुँचने पर दो महीने के बाद आपने गुरुपर्व पर भण्डारा किया। पूना के करीब़ पचास साधुजन आकर दर्शन दिये। जनता का समारोह तो था ही।

दूसरे साल क्वार के महीने में सिंहगढ़ पहाड़ देखने को गये। आप बीहड़ रास्ते से चलते हुए पहाड़ ही पहाड़ चढ़ते चढ़ते आधे पहाड़ में ही रात्री हो गयी तो आपने वहाँ अर्धपहाड़ी पर भगवच्चिन्तन करते हुए निर्भयता से रात्री व्यतीत की। सुबह फिर विनामार्ग गढ़ की चढ़ाई पर चले। बर्षात का समय, चारों ओर बादलों की घटायें। और घास तो इस तरह उगी हुई थी, कहीं गले तक तो कहाँ माथे तक, कहाँ घुटनों और जाँघों

तक। कहीं कहीं पर काँटों के द्वारा आपके पैर भी छिद गये।

अस्तु, किसी भी तरह आप गढ़ की यात्रा से दूसरे दिन शाम के छः बजे नीचे उतर आये। रात को वहीं पर शिवजी के मन्दिर में रहे। तीसरे दिन घूमते फिरते बारह बजे रामटेकड़ी की ओर आये।

* सन्तरीने राइफल तान दी *

रास्ते में रेसकोर्स के पास अधिक संख्या मे फौज ठहरी हुई थी। पहरेदार (सन्तरीने) 'हाल्ट' पुकारा परन्तु आप मस्त होकर अपनी राम धुन से चल ही रहे थे। कुछ जवाब नहीं दिये। राम की लगन में 'हाल्ट' की लगन समझ में नहीं आयी। सिपाही कानून के अनुसार तीन बार 'हाल्ट' पुकारा। आखिर बन्दूक तान कर सामने पहुँचा तो देखता क्या है कि अद्भुत मनुष्य जा रहा है। न मरने की चिन्ता और न सुनसान रात्री की डर। उसने बैटरी चमकाते हुए कहा :—

"अलो, स्वामी बाबा, कोछ बोलना मागटाँ है। अमारे कू हुकूम है जो न बोलना माँगटा उसेकू गोली चलाना माँगटा। जाव, अमने टुमारे कू छोड़ दिया।"

बाबाजीने कुछ न कहकर सिर्फ़ मुस्कराकर इतना ही कहकर चल दिये कि :—

" उरप्रेरक रघुवंश विभूषण। "

पाठकगण इस बात का ध्यान रखेंगे कि किसी की जीवनी लिखने के लिये कितनी सामग्री की आवश्यकता पड़ती है और उसे किस प्रयास से प्राप्त किया जा सकता है। और फिर एक ऐसे पहुँचे हुए सन्त का जीवनचरित्र तो उसी महामूर्ति की कृपादृष्टि के बिना कदापि कोई लिख ही नहीं सकता। यहाँपर तो मेरी कलम मात्र का प्रयास है। साहस और प्रेरणा तो गुरुकृपा की है। अतः लिखने में जो सामग्री जहाँसे जिस सुभीते से मिली वह यथातथ्य लिखने के बाद यह उपरोक्त अंश छूट गया था। गुरुदेव की महान् अनुकम्पा से यथा समय फिर भी यह अंश प्राप्त हो गया तो इसे उन्हींके अनुभवसिद्ध—प्रकरण के प्रारम्भ में रख देना ही उचित समझा गया गुरु-आज्ञा से।

* अनुभवसिद्ध प्रकरण क्या है *

संसार में अनेकानेक उच्च कोटी के सन्त, तपस्वी साधु, महापुरुष हुए हैं और होते रहते हैं। अमर कोई नहीं रहा, किन्तु हरएक की अपनी

विभूतिमय देन संसार में किसी भी रूप से रह जाती है जिसके द्वारा संसार उन्हें 'अमर' ही समझता है। प्रायः सभी की ज्ञानगूढ गम्भीर वाणी का संग्रह, अनुभव का प्रत्यक्ष रूप, ग्रन्थों के रूप में संसार का धर्मग्रन्थ, या ज्ञानग्रन्थ या अतीतस्मृति के रूप में अमर रह जाता है।

तुलसीदासजी की रामायण, कबीरजी की साखी, सूरदास का सूरसागर और गुरु नानकजी का ग्रन्थसाहब, ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी, सन्त तुकाराम महाराजजी के अभंग आदि सन्तों और महापुरुषों को "अमर" साक्षात्कार के चिन्ह हैं। भक्त लोग इन ग्रन्थों में लिखी वाणी को सन्तों की जूठन समझ कर खूब पान करते रहते हैं और आनन्दमग्न रहते हैं। श्रीमान् १०८ सद्गुरु बाबा शारदारामजीने भी अपने तपोमय वृक्ष से जो सिद्धिरूपी फल प्राप्त किये हैं उनका अमृतमय रस का निचोड़ "निर्गुण महारामायण" के रूप में इकट्ठा किया है।

❋ निर्गुण रामायण के बारे में ❋

इस महाग्रन्थ में "राम-रावण तत्त्व–विचार" पर अध्यात्म ज्ञान की गम्भीर उक्ति का उल्लेख

किया गया है। राम कौन है, रावण क्या है और राम की सेना, रावण की सेना आदि सभी कुछ इसी शरीर के अन्दर घटाया हुआ है, जो कि निम्नलिखित पदों से स्पष्ट हो जाता है।

॥ चौपाई ॥

युक्ति अनुकूल अनुभवबिच आई।
सो सब सोध लेहुरे भाई।
पुलस्त्य नाम पूरण का होई।
सर्वव्यापी ॐ कहावत सोई॥
तिसका पुत्र विश्वश्रवा होई।
पंचतत्त्व का नाम विश्वश्रवा सोई।
सो पाँचों तत्त्व विश्व रचाई।
ब्रह्म की माया फैला सब भाई॥
पाँच तत्त्व का सतो अंश जो होई।
मन नाम कहावत सोई।
ब्रह्म के वस में सब हैं भाई।
निरंकार ब्रह्म यह खेल रचाई॥
शास्त्रकार सब भिन्न दिखाई।
अपनी जह तक अनुभव पाई।
मन रावण का उत्पत्ति निज कही॥
सबका पिता ब्रह्म है सही।
ब्रह्म आदि कारण सबका भाई।

जिससे सबका पिता कहाई।
इन बिधि उत्पत्ति ब्रह्म से कही।
मन रावण का बिस्तार आगे है सही॥

पाठकों को इन गम्भीर पदों सो पता चल जायेगा कि निर्गुण रामायण में मन को किस प्रकार रावण संघटित किया गया है।

आगे राम अवतार की विशेषता तो पढ़िये। जीव को किस प्रकार राम संघटित कर आगे जीवात्मा रूपी राम और मन रूपी रावण का किस प्रकार संघर्ष दिखाया गया है। यह तो निर्गुण रामायण पढ़ने से ही पाठकों को ज्ञान हो सकेगा।

* रामावतार जीवात्मा *

॥ दोहा ॥

रामहि जग औतार भये। निर्गुण अंश विशेष॥
जीव ब्रह्म का अंश है। राम रूप कहावत देहे कलेश॥

॥ चौपाई ॥

ब्रह्म यह सारा खेल रचाई।
कहूँ राम कहूँ जीव कहाई।
ज्यों स्वाँगी नाना स्वाँग बनाई।
ब्रह्मरचना यों आप सुहाई॥

निर्गुण ब्रह्म सत्यस्वरूपी भाई।
जीवराम तिसका अंश कहाई।
राम दशरथ का कहे सब पूता।
जीव ब्रह्म का अंश अवधूता॥
दशरथ दशोदिशा का राजा जोई।
निज अनुभव से ब्रह्म है सोई।
सोई दशरथ सुत राम कहाई।
यों ब्रह्म अंश जीव राम भये भाई॥
राम जीव आत्मा परम सुहाई।
मानुष तन तरने को पाई।
दशरथ घर राम लीन औतारा।
अनुभव से राम जीव पसारा॥
जह देखो तह राम समाई।
भिन्न राम से कहूँ न भाई।
शारदाराम तत्त्व विचारी।
जीव राम एक सत्य परचारी॥

उपरोक्त चौपाइओं से श्रीमान् बाबा शारदारामजी द्वारा रचित निर्गुण रामायण का परिचय पाठकों के सन्मुख स्पष्ट कर दिया है।

* निर्गुण महारामायण कहाँ है *

यह एक बृहद्ग्रन्थरत्न अभी अप्रकाशित है। हस्तलिखित बृहत्पुस्तकाकार प्रति श्रीमान् बाबाजी
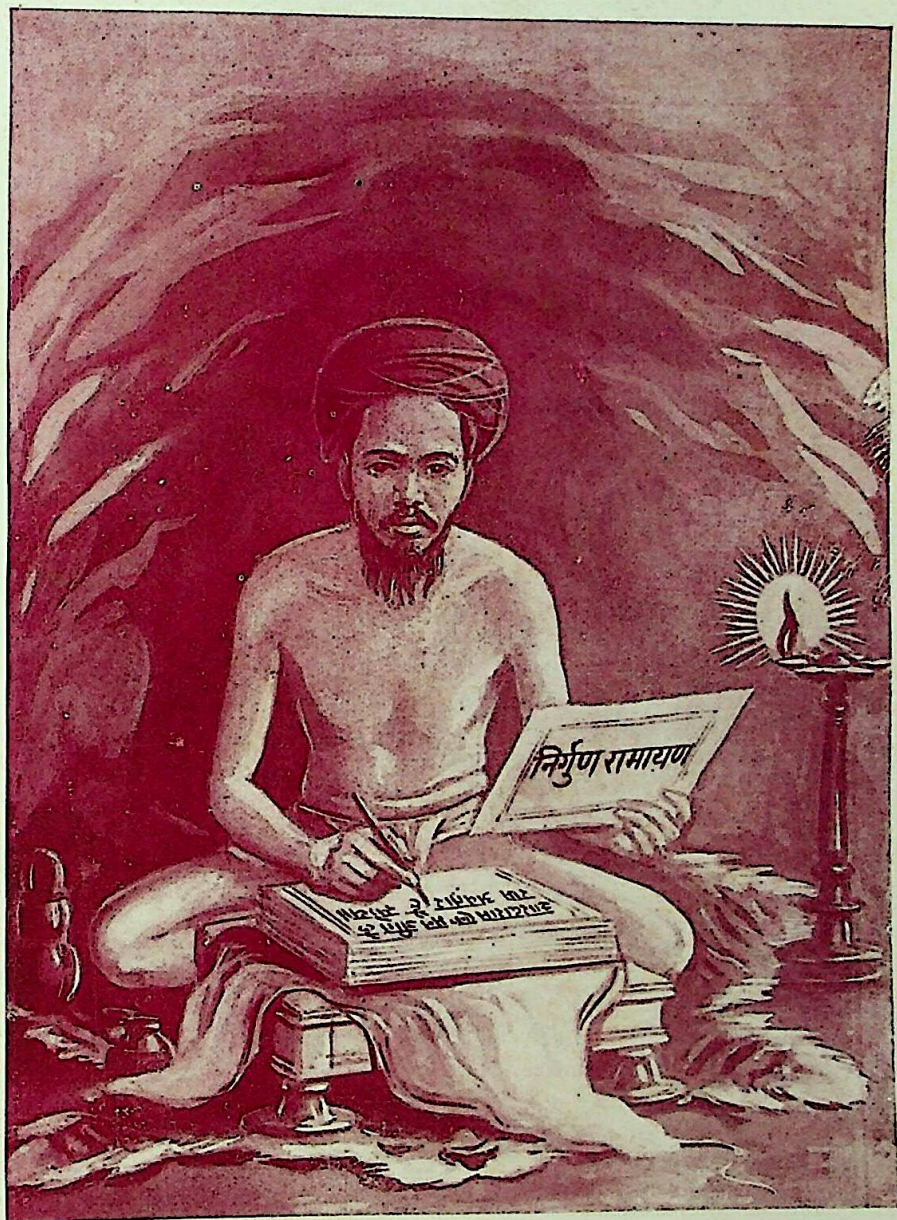
वाबाजी अपनी गुफा में तपश्चर्या करते हुए अनेक प्रासादिक चौपाईया, दोहरे और
'निर्गुण-रामायण ग्रंथ' लिखते समय।

बाबाजी गुफा में दस बारा वर्ष तपश्चर्या किये बाद बद्रीनारायण जाते समय।
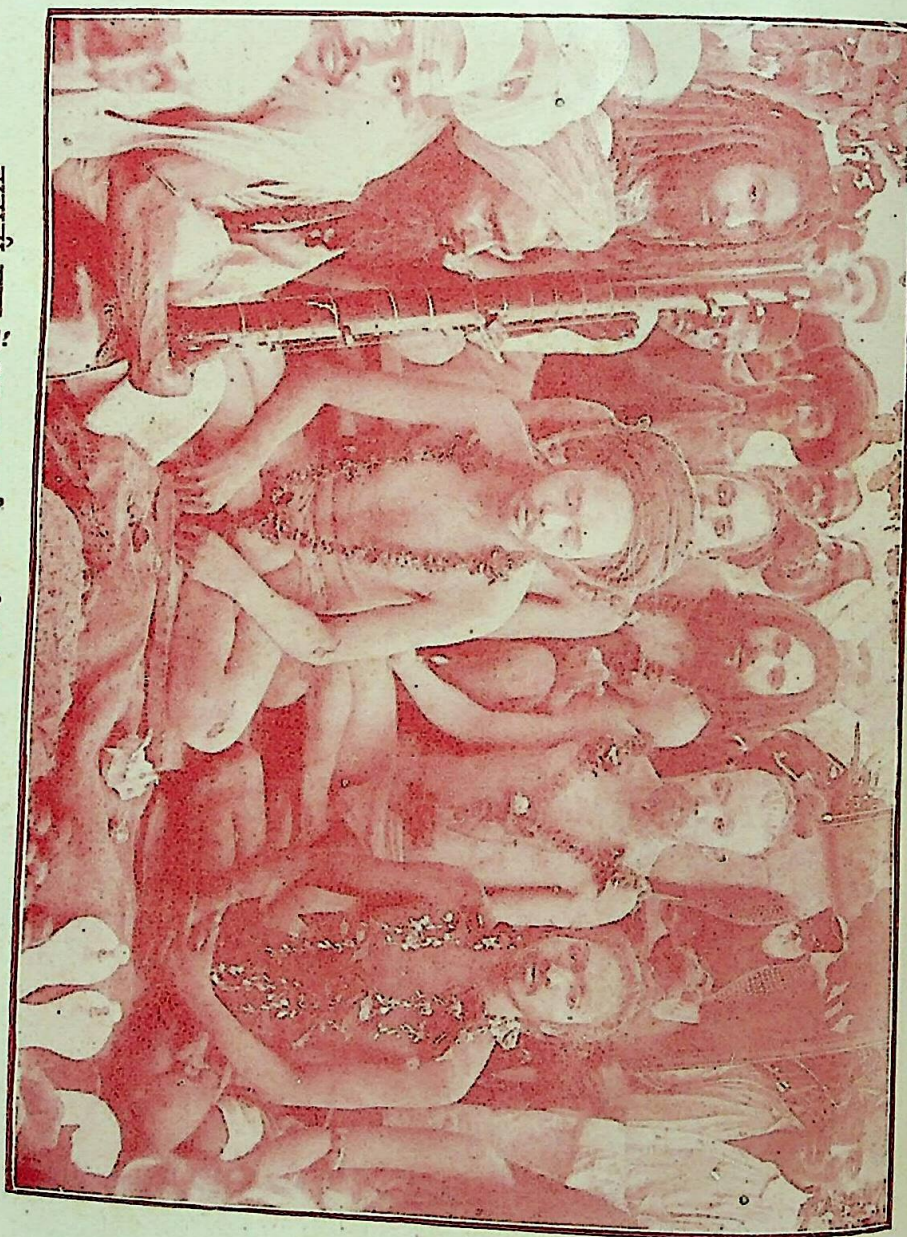
के अपने ग्रन्थालय में है। इस बृहद्ग्रन्थ से टिप्पणी मात्र एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की गयी थी वह भी समाज और भक्तों के कल्याणार्थ ही। भक्तों की रुचि से वह तुरन्त ही समाप्त हो गयी। अब आशा है निर्गुण महारामायण का प्रकाशन काण्डों के रूप में शीघ्र ही प्रकाशित होकर पाठकों के हाथों में पहुँचेगा। परीक्षा समितियाँ और परीक्षा बोर्ड यदि हिन्दी परीक्षा के पाठ्यक्रम इस रामायण के काण्डों को निर्धारित कर दे तो संतों की बाणी में और श्रीमान् बाबाजी की बाणी (रचना) में कोई अन्तर नहीं मिलेगा। सन्तों की बाणी द्वारा प्रस्फुटित साहित्य से ही हमेशा समाज का कल्याण हुआ है और होता रहेगा।

"हरि ॐ तत्सत् ब्रह्म।"

*** अनुभवसिद्ध दोहों का प्रकाशन ***

श्रीमान् बाबाजी द्वारा लिखित निर्गुण महारामायण के बारे में लेखकने संक्षेप से पाठकों के सामने दिग्दर्शन कर चुका है। अब लेखक बाबाजी की अनुभवसिद्धि पर पाठकों का मन आकर्षित करना चाहता है। वैसे तो "प्रत्यक्षं किं प्रमाणं" के अनुसार जब तक बाबाजी अपने नर चोला ब्रह्म

स्वरूप में विद्यमान हैं तब तक तो कोई भी मनुष्य बाबाजी के दर्शनों में पहुँचकर उनके ज्ञानदृष्टि का अनुभव प्राप्त कर लाभ उठा सकता है। श्रीमान् बाबाजीने अपने तपोमय जीवन में अनेकानेक साधनों का अनुभव प्राप्त करते हुए तथा उन्हें अपने आत्मज्ञान में स्थित करते हुए उल्लेख करते रहे। कई प्रकार के कठोर से कठोर तप साधनों में सफलता प्राप्त कर आप उस उच्च कोटी की सीमा पर पहुँच चुके हैं कि जिसपर अनेक जन्मसिद्ध योगाधिकारी ही पहुँच पाता है। आपके प्रत्यक्ष दर्शनों से ही स्पष्ट पता चल जाता है कि आप कितने अनुभवसिद्ध योगी हैं। और जब आप अपने पवित्र मुखारविन्द से अपने अनुभव को भक्तों के कल्याण के लिये प्रगट करते हैं तो दर्शक और भक्तों को प्रायः विस्मय-सा हो जाता है कि इतने शास्त्रों का अध्ययन बाबाजीने कब किया होगा। परन्तु बाबाजी की जीवनी लिखने का मूल कारण ही यह है कि भक्तों को पता चल सकता है कि बाबाजी किस अवस्था से साधु धुन में लीन हो गये थे। और यह भी सबको पता हो जायेगा कि बचपन या सारे जीवन में बाबाजी कौन-से विद्यालय में अध्ययन करते रहे।

कहने का तात्पर्य यह है कि, बाबाजी को ऐसा समय ही नहीं मिला कि किसी पाठशाला या विश्वविद्यालय में ग्रन्थों को रटकर कुञ्जियों को चाटकर डिग्रियाँ प्राप्त कर सकते। आपको तो केवल एक चीज़ की धुन थी जो कि उनके जीवन में उन्हें प्राप्त हुई है। वह है "ब्रह्म ज्ञान!"

अब पाठक समझ जायेंगे कि जिस महा-पुरुष को ब्रह्मज्ञान की ही उपलब्धि हो गयी हो वह उस ब्रह्मज्ञान के अनुभव को यदि समाज या भक्त-सेवकों के कल्याणार्थ प्रगट कर दे तो फिर कहना ही क्या है! सन्तों की अमृतवाणी के पान करने ही से तो भक्तों और समाज का कल्याण होता आया है।

बाबाजीने अपनी "सुखपन्थ लोग गुफ़ा" में निर्गुण रामायण तो लिखी ही किन्तु यथावकाश अपनी दैनिक तपश्चर्या से कुछ उपलब्ध समय में आपने हजारों दोहा और चौपाइयों की रचना की जिनमें बहुत ही गम्भीर और अनूठी बाणी द्वारा मनुष्य जीवन सफल बनाने के साधन बताये गये हैं।

नाम जप क्या है, किस प्रकार होना चाहिये अथवा नाम जप कितने तरह हो सकता है, ॐ की क्या महिमा है तथा ॐ ही ब्रह्म है, इत्यादि

मंत्रों का संक्षिप्त और अनूठा संग्रह "ब्रह्म सुमिरनी" नाम की पुस्तक रूप में पाठकों के हितार्थ प्रकाशित की गयी थी जिसके द्वारा भक्तों और साधुसन्तोंने ब्रह्म के मंत्रों का अनुभव प्राप्त किया। इस बृहद्ग्रन्थ में "श्रीमान् बाबाजी का अनुभव" रखना अत्यावश्यक था जिसके द्वारा इस ग्रन्थ की विशेषता और भी महत्त्वपूर्ण हो जानी थी। अतः श्रीमान् बाबाजीने कृपानुग्रह करते हुए कुछ दोहा तथा चौपाई इस ग्रन्थ में प्रकाशनार्थ दे दिये। यह महाराजजी की शुभाशीर्वाद रूपी प्रसाद इस ग्रन्थ में रखते हुए लेखको को अपार हर्ष और शान्ति होती है कि इन दोहों के अध्ययन तथा मनन और चिन्तन करने से पाठकों को अपार शान्ति प्राप्त होगी। विद्वानों को तो इन दोहों में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के उपाय प्राप्त होंगे। सगुण निर्गुण ब्रह्म की महिमा का पूर्ण परिचय तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति तो अवश्य ही होगी।

ये दोहे संक्षेप में ही चुनकर यहाँ रखे गये हैं। इनका सम्पूर्ण संस्करण अभी अप्रकाशित है। जितने दोहे इस ग्रन्थ में प्रकाशित किये जा रहे है इतने ही दोहों का पठन पाठन के रूप में एक संस्करण साथ ही प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है विज्ञ पाठकगण इस महाग्रन्थ को शुरू से अन्त तक पढ़ने के बीच में इन दोहों का मनन चिन्तन करते हुए बाबाजी के अनन्त अनुभव का सुख प्राप्त करेंगे। इसलिये इस प्रकरण का नाम "अनुभवसिद्ध प्रकरण" रखा गया है।

बाबा शारदारामजी कृत
॥ निर्गुण महारामायणम् ॥

॥ ब्रह्मचिन्तन दोहावली ॥

ॐ सनेही सोहावा । तेहि सम और न कोय ॥
फेर न आवना होइ है । ॐ जाप जपो सब लोय ॥
ॐ सब ही का मूल है । ॐ अन्दर सब कोय ॥
क्या भूमि क्या स्थल नभो । ॐ व्यापी कुल होय ॥
ॐ शब्द अनमोल है । मोल करै दे प्रेम ॥
चार युगन ते चलि आई । प्रथम प्रेम ही नेम ॥
ॐ शब्द अनमोल है । बोलो बारम्बार ॥
शब्दै शब्द निर्णय करै । शब्द का सकल पसार ॥
शब्द से परे और को । शब्द भरा भरपूर ॥
गूँगा बावला बहिरा । उन मह शब्द हजूर ॥

॥ दोहा ॥

ॐ सभी का मूल है । निर्गुण ब्रह्म ॐकार ॥
सत गुरु से मिलत है । शब्द आस उर धार ॥
अपने घट में ब्रह्म है । खोजे देश विरान ॥
सत गुरु से परचै नहीं । घट वस्तु कस जान ॥
अपने घट में ब्रह्म है । ढूँढै लोग भुलान ॥

सत गुरु से दावा करै। कैसे मन पतियान ॥
सत गुरु मिलता तन्तरीक। बतावै तंत्र लाख ॥
एक ब्रह्म नहीं बतावे। जिसका सब है साख ॥
गुरू मिला निज स्वार्थी। चेला खेलै दाँव ॥
शारदाराम इन दोनों का। पुनि पुनि लखो सजाव ॥

॥ दोहा ॥

गुरु बखानै गुरु वाई। शिष्य बखानै सेव ॥
ये दोनों भटकत फिरैं। निरंजन लखा न भेव ॥
गुरु को ऐसा चाहिए। रहे ब्रह्म में लीन ॥
शिष्य सोई सराहिये। तन मन गुरू को दीन ॥
गुरु तो ऐसा चाहिए। स्वारथ रहित उपकार ॥
शिष्य सोई सराहिये। रख गुरु सेव आधार ॥
गुरु तो ऐसा चाहिये। सदा जपै सत्य जाप ॥
शिष्य सोई सराहिये। गुरु इच्छा लख आप ॥
गुरु है सो ब्रह्म है। ब्रह्म सोइ गुरु देव ॥
निश्चय शिष्य का भाव यह। लखै अलख का भेव ॥
सारा जगत् गुरु वाई करै। शिष्य भये बे अन्त ॥
अन्तर आत्मा लखै नहीं। फोटक जापै तंत्र ॥

॥ दोहावली ॥

सूर्य उदय जो न उठै। ताको लागै दोष ॥
ना माने तो देख लेवै। सत् शास्त्रन का लेख ॥

भृगुजीने लिखा है। धर्मशास्त्र में लेख ॥
शरीरधारी का कर्मकतर्व्य। देखो सत बुद्धि लेख ॥
जो नर आलसी कर्म धर्म का। सूकर कूकर पावै देह ॥
चौरासी छूटै नहीं। फिर फिर धरै तन तेह ॥
राम सुमिरन छोड़ दिया। पड गया माया जाल ॥
धर्म राय के द्वार पर। तिसकी बुरी हवाल ॥
रामनाम सुमिरा नहीं। दान पुन्य नहिं केह ॥
ते नर पशु समान हैं। बिरथा धारै देह ॥

॥ दोहा ॥

जो नर सुमिरै राम को। दान पुन्य कछु केह ॥
ते नर देव समान हैं। मात पिता धन तेह ॥
साधु संग जो नहीं किया। सुना नहीं हरि नाम ॥
ते नर चौपग समान हैं। सींग पोंच बिनाम ॥
पल क्षण संगति साधु की। जो सुन लेवे नाम ॥
तेहि के बल प्रताप से। उत्तम पावै ठाम ॥
जा दिन जन्म जगत में। धन धन करै सब कोय ॥
राम शरण जो पड़ैगा। जीव तरै बहु सोय ॥
राम सनेही परम उजियारा। ज्यों उजियारा चन्द ॥
भक्ती प्रकाश पसरि रहा। सात दीप नव खण्ड ॥

॥ दोहा ॥

सात दीप नव खण्ड में। भया जय जय कार ॥
सगली जगत आस तजी। भया ब्रह्म के लार ॥

आशा करतु है मातपिता । सुत होवे सपूत ॥
साधु ब्राह्मण पूजि है । स्वर्ग मिलावे पूत ॥
आवत समय कौल किया । जग में भूला आय ॥
शारदाराम तब क्या कहो । जब धर्मराय पह न्याय ॥
धर्मराज न्याय करे । बुरा करे सजाय ॥
अब का चूका तब याद हो । पुनि पाछे पछताय ॥
पुनि पाछे पछताये । रतन जन्म दियो खोय ॥
जब गिर गया मनुष्य जन्म । फिर अवन कब होय ॥
लख आवत लख जात है । लख को होत नियावो ॥
शारदाराम मोक्ष कारण । मानुष तन मिलावो ॥

॥ दोहावली ब्रह्मचिंतन ॥

जग रचना साथ न देवे । जान लेव रे मीत ॥
शारदाराम भूल किया । रामनाम रख चीत ॥
हरिहर भूलत बहु जन्म गया । भया अकाज अनन्त ॥
नाम हरिहर न बिसरो । जपो गुरू का मंत ॥
गुरू देय सो उर रख । तेइ बार बार निहार ॥
आप तरे औरों को तारे । गुरु का लिया सहार ॥
धन सम्पती सब झूट है । साथ न देवे सच मान ॥
शारदाराम अचल धन पाया । सुमिरो श्रीभगवान् ॥
मन चंचल अति खोट है । खोटे मारग जाय ॥
शारदाराम अमृत त्याग के । विषयन में ललचाय ॥
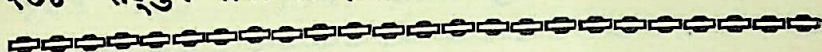
॥ दोहा ॥

मन जीता तिन जग जीता। छुटा चौरासी फाँस ॥
शारदाराम निश्चय भया। ब्रह्म-महल में वास ॥
मन बैरागी मन संन्यासी। मन ही है अवधूत ॥
शारदाराम मन बस भया। सो पार ब्रह्म कहूत ॥
मन के हारे हार है। मन के जीते जीत ॥
शारदाराम घर चल अपने। मन ही के प्रतीत ॥
मन जीता सो सुरुवा। हारा मन कादर होय ॥
जीतन वाला स्वर्ग वसै। हरै चौरासी सोय ॥
मन निन्दक मन आलसी। मन विषयी खोटा होय ॥
शारदाराम मन के कारण। दुःखी कहावत सोय ॥

॥ दोहा ॥

जीव सुखी ब्रह्म अस। बन्धन न तिस कोय ॥
मन मन्त्री है जीव का। फिर फिर फासे सोय ॥
ब्रह्मअग्नि जागे जब ही। जलगया मन का फाँस ॥
शारदाराम निर्भय भया। विषय छुटी सब आस ॥
विषय के माते जीव भये। जेउ मद माते कलार ॥
बिष माता सुचेत भया। बिसराता खुवार ॥
बिसराता नहिं उबरै। ज्यों प्रलय अंगार ॥
लाख करोड़ जलि गये। बिषयन के व्यवहार ॥
आया है जीव जगत में। सच करने व्यवहार ॥

विषै की बाडी देख के । भूल रहा सचि यार ॥
भूलन वाला उबरै । डूबन वाला डूब जाय ॥
शारदाराम यों कहै । उबरो साधुसंग पाय ॥

॥ दोहावली ॥

भूला है संसै माही । डूबा आसक्ती माह ॥
संसै नासै ज्ञान अग्नि । आसक्ती नागिन खाह ॥
वशीकरण नागिनी । भेषज सत गुरू पाह ॥
सेवा सेती मिलिया । बिन सेवा नागिन खाह ॥
ब्रह्माग्नि दिन दिन भमकै । संसै काष्ठ जलि जाय ॥
शारदाराम सुचेत हो । ब्रह्म में रहो समाय ॥
दिन दिन अभ्यास करो । ब्रह्म मिलन की आस ॥
शारदाराम सोइ पाइ है । जेहि पूरन विश्वास ॥
नैना भरि भरि रौवना । मुख से बोलै प्रेमा बैन ॥
शारदाराम कल ना मिलै । बिन देखे हरि सुख चैन ॥

॥ दोहा ॥

नैना भरि भरि नहिं रोवना । ना बोले मुख बैन ॥
अन्तर गहबर हो रहा । सभ जानै हरि ऐन ॥
प्रेम पदारथ भर गया । उर अन्तर के माह ॥
आगे पीछे हरि आप हैं । लख अन्तर के चाह ॥
हरि खोजत मैं फिरूँ । हरि अपने उर माह ॥
प्रेम पदार्थ आगे धरा । प्रगट भया हरि ताह ॥

हरि भूखा प्रेम भाव का । धन यौवन का नाह ॥
धन यौवन के गर्व में । डूबत बहुते जाह ॥
प्रभु का प्यारा सोई है । जो करै हरि सो प्यार ॥
धन यौवन के प्यार से । बहुते भये खुवार ॥

॥ दोहा ॥

हरि सनेही उबरै । डूबै सनेही तीन ॥
धन दारा यौवन संग । जो जो होवत लीन ॥
हरि सनेही सुखी रहै । खावै सूखा अन्न ॥
त्रिगुण सनेही दुःखी रहे । शुद्ध न होवै मन ॥
राम सनेही लाख में । त्रिगुण सनेही करोर ॥
राम सनेही सरण गहू । सो जन उबरै बहोर ॥
आवन आया जगत में । कहो क्या कीर्ति कमाय ॥
शारदाराम सत कीर्ति बिन । कैसे हरी पतियाय ॥
कीर्ति कामना सत का । असत त्याग कर मीत ॥
सत बिन कोऊ साथ न । समझ राखो चीत ॥
सत है सोई मीत है । असत दुश्मन दुःखदीन ॥
सत खरा संग पाइये । लालच असत संग लीन ॥

॥ दोहा ॥

कीर्ति सत्य कमाया । लोक परलोक यशवान् ॥
असत अपयस लोक में । लहे न रास भगवान् ॥
खरा हुकुम भगवान् का । मेट सके न कोय ॥

एकस हरि जन छोड के। सगले जाय बिगोय ॥
हुकुम हासिल कर राम का। जो वेद में दिया बताय॥
सुकरम नित गहि चलो। कुकरम त्याग सत आय॥
प्रभु का है सब रचंना। तुम्हारा कियो कुछ नाह॥
प्रभु रचना को देख कर। डूबे अहंकार कें माह॥
सत कहो तो जग हँसे। झूठे से पतियाय ॥
शारदाराम यह अजब है। प्रभु माया बलदाय ॥

॥ दोहा ॥

अन्न जल प्रभु रचि दियो। नर क्यों करत गुमान ॥
इसी गुमान के कारणे। रावण कंस गति जान ॥
गुमान डुबावे मान को। मान डुबावे गुण प्रवीन ॥
सत शान्ति अरू दया। मान गुमान करै हीन ॥
हाथ धोय एक दिन चलना। समझो नर अज्ञान ॥
कोटि कोटिती द्रव्य ग्राम। जहाँ तहाँ रह जान ॥
माया है सब राम की। चाकर समझो जीव ॥
चाकरी अपनी कर चल। खड़ा दूसरा लीन ॥
भली चाकरी सत्य नाम की। और चाकरी तुच्छ ॥
न समझो तो समझ कर। वेद शास्त्र गुरु पुछ ॥

॥ दोहा ॥

सत नाम की चाकरी। राजन किये महान् ॥
गोपीचन्द भरथरी। प्रिय व्रत राजन जान ॥

ध्रुव प्रल्हाद अटल भये । सत्य नाम प्रभाव ॥
जनक विदेही हरिश्चन्द्र । किये चाकरी सत सुहाव ॥
रामकृष्ण अवतार भये । महान्. कहत सब लोग ॥
नाम चाकरी शिव किये। प्रकट ग्रन्थ मह योग ॥
राम रमे आत्मा संग । कृष्ण रमे कर योग ॥
और लोग गफ़लत में परो । नेत्र रहित जिन होग ॥
कहना रहा सो कह दिये। अब कहने को नाह ॥
अपनी करनी आप भरसी । पुनि पाछे पछताये ॥
बड़ो अचम्मा जगत में । खुशी रंज सब काह ॥
शारदाराम एक ज्ञान बिन । डूबत बहुते जाह ॥

॥ दोहा ॥

माता पिता सुत स्त्री । साथ न जावै कोय ॥
शारदाराम अन्त की बेंरिया । हरि सहायक होय ॥
सतिया स्त्री साथ देवे । जो सत जोगवे कोय ॥
इस कलियुग पहर में । नामै साथी होय ॥
कदापि चित सत धारे । तो मन डिगवे ओय ॥
मन को बस करिये निज । सती कहावे सोय ॥
सतिया सत ऊपर चढ़ी । छाँडि जगत सुख आस ॥
ब्रह्म पिया से लव लागी । दिन दिन प्रेम हुलास ॥
सतिया जो है बाट हरदम । कब आवै पिय मोर ॥
चरण धोय चरणामृत पियो । बिधि बस अकोर ॥

॥ दोहा ॥

सतिया सवारै मन को । बृखली सवारै तन ॥
एक बन्धन में बँध रही । एक तोडे सब बन ॥
सती जा दिन सत पर चढ़ी । तन लाई ता दिन आग ॥
बृखली जा दिन विषय भई । विषया में मन लाग ॥
सतिया तारे सत्तर कुल । ले सत लोक मझार ॥
बृखली डुबावे सब वंश को । पहुँचावे नरके द्वार ॥
सतिया को मुख उजाला । सत ही के प्रभाव ॥
बृखली का मुख गन्दा । विषय मह लपटाव ॥
सतिया सत काटे नहीं । आपे सत ले जाय ॥
यों ही बृखली लख ले । सभी सुजन जन माय ॥

॥ दोहा ॥

सतिया के नित पाँव लागो । बृखली मारो लात ॥
अधिक बातें जो करै । तोड़ो सब ही दाँत ॥
सतिया को नमस्कार नित । मध्यान संध्या सकार ॥
अपने पति ईश लखि । पर पति सपने नाह विचार ॥
सपनें में जो पर पति आया । तो लखै पूत सपूत ॥
शिशुपन सुत लखी हटै । पतिसम रहे मज़बूत ॥
जेते जग में पुरुष हैं । सतिया नपुँसक ताह ॥
अपने पति को पुरुष लखि । आज्ञा मेटो नाह ॥
पति आज्ञा जैसा करै । तैसा सती का भाव ॥
पति चाहै तन मन कष्ट दे । नेक न लखे कुभाव ॥

ऐसा सतिया सत साधै । जेउ नटनी साधै राग ॥
जैसा नटवा ताल देवै । तैसा राग गावै गल लाग ॥

॥ दोहा ॥

सत ही के प्रताप से । उपजै पूत सपूत ॥
तीन लोक को बस करै । राम कृष्ण कहूत ॥
सत ही के प्रताप से । लव कुश भये दो वीर ॥
राम सहायक सबल बली । सब को डाले चीर ॥
अब ही सुत उपजै वैसे । जो दोनों सत धरे शरीर ॥
तीन लोक में प्रगट हो । कहावै निर्मल लकीर ॥
तेग तलवार से जे लड़ै । सो तो सुरा नाह ॥
इन्द्री मन जो जय करै । पूरा सूर कहाह ॥
सत ही के प्रताप से । श्रीदत्तात्रय भये सपूत ॥
मन इन्द्री जीत लिया । प्रगटे पंथ अवधूत ॥
ऐसा लख सब माइयाँ । सत गहो जिय माह ॥
नाना कलेश हर जाय । सद ही सब सराह ॥

॥ दोहा ॥

सत ही के प्रताप से । माँधाता रणधीर ॥
जिनके बाण टंकोर से । आसमान में परै लकीर ॥
वह माता सतिया लख । जिसके सुत अस होय ॥
हरि हर भक्त दाता वीर । तीन में एको सोय ॥
सुत जन्मावे तो अस हो । जस कौशल्या सीता केर ॥

तीन लोक यश छा रहा । माता सुफली फेर ॥
अहो धन्य मातापिता वह । जिसका सुत जसवान ॥
सत ही प्रभाव प्रवेश कर । सुत होवत बलवान ॥
जैसे जल के मध्य में । डारि केवड के फूल ॥
गम गम गम जल करै । वारी प्रवेशा फूल ॥

॥ दोहा ॥

यों ही नर नारी लख के । सत गहो उर धार ॥
चार दिशा नव खूट में । सत ही से जय कार ॥
सत की मारी मर रहो । सत जियाये जिओ ॥
सत का पल्ला पकड़िया । निर्भय पाया पिओ ॥
सत ढूँढ़न को कहाँ जाऊँ । सत नहिं हाट बिकाय ॥
उर अन्दर में सत बसै । सतगुरु परच लखाय ॥
सतगुरू के शरणी परो । तन मन सब अरपाय ॥
सत सोई लख पै हैं । जिसका प्रेम भभकाय ॥
आस बास सब जग त्यागे । रहै ब्रह्म के आस ॥
शारदाराम सती कहावै । पति ही पर विश्वास ॥

॥ दोहा ॥

यह जग चन्द रोज़ की चाँदनी । अपनी सब कर लेह ॥
शारदाराम तुम अस करो । गुण गावो हरि केह ॥
यह जग स्वप्न समान लख । संसय नाहीं कोय ॥
शरीर तक सब अपनो । शरीर गये विराना होय ॥

महा समुन्दर यह जग । जीव मीन समान ॥
धीवर जाल पसारिया । माया जीव के ताह ॥
सगले जीव फँस रहे । माया जाल में आय ॥
काम क्रोध दो चारवा । तृष्णा कटिया भाय ॥
जीव मीन के गल लगा । लोभ कटिया आय ॥
तडफ तडफ नित रहे । जियरा सहजे जाय ॥

॥ दोहा ॥

सत गुरू भेटे पारखी । परखै सगली हाल ॥
तृष्णा ममता दूर करै । सदा का काटै जाल ॥
बिरह अग्नि उर लाइया । दिन दिन बढ़ती जाय ॥
सगली संसय जारि के । अधिक अधिक धुधु आय ॥
बिरह की जारी जर रही । जेऊ जर सोना निर्मल होय ॥
नकली असली परख गया । बिरह परखिया सोय ॥
बिरहिनी रही सो निसदिन जगे । मोह नींद कत सुहाय
पियो मिलन के कारने । सदा बिरह बढ़ाय ॥
बिरह लगा तो राज तजा । सरबस सुख त्याग अपार ॥
की जानै बिरहनी । की लखै लगावन हार ॥

॥ दोहा ॥

आत्मा के सुख कारने । विष सुख डारा खोय ॥
दो में एकी होत है । भावै लख ले कोयं ॥
जेऊ मेघ गरजै मोर पीहकै । पन्नग प्रगट तुरन्त ॥

क्षुधा पौंसे की नेम पोसैं । ऐसा लख लेव मंत ॥
चन्द्र चाँदनी पाय कै । पपिहरा मगन होत मनमंत ॥
तेऊ हरि हर जन पायकै । भक्त मगन गृह वन्त ॥
जेऊ चकवा चकई बिछुड़ै । फिकिर परी सारी रैन ॥
यौंही हरिहर जन हरि बिछुड़ै । फिकिर परी अन्तर नैन ॥
जेऊ सती बिहाल पतिबिन । तेऊ हरिबिन हरिजन जान ॥
बिरही की माती अस भया । शारदाराम बखान ॥
सारी रैन सोचत गया । दिन विचारत जाय ॥
हरि जन एकस हरि बिना । थिर न चित्त रहाय ॥

॥ ब्रह्मचिन्तन दोहा ॥

लाख लोग समुझावै । लाख लालच देह ॥
हरि जन को हरि रंग चढा । पुनि न उतरै तेह ॥
जेउ सूर्य उदय भया । मेघ चढ़ै घनघोर ॥
तेज न कबहू छिपत हो । बहुतक लावै जोर ॥
यों ही हरि जन लख लो । जिसका पूरब लेख ॥
हरि बसा निगाह में । सगली टारै धोख ॥
जेऊ चन्दा के आस पास । तारीका लख करोड़ ॥
चन्द की निर्मल चाँदनी । कोउ न लावत अरोड़ ॥
हरि जन की बुद्धि शुद्ध भई । पुन कौन सकै मरोड़ ॥
कहाँ पारस कहाँ पथरा । कौन लगावै जोड ॥
हरिजन ऐसो चाहिए । जेऊ बाट के रोड़ ॥
चरण परहार नित सहै । आप सदा निर जोड़ ॥

॥ दोहा ॥

हरि जन ऐसा चाहिए । जेऊ सुन्दर जग आम ॥
डंड प्रहार नित सहै । आप देत रस सुख धाम ॥
हरि जन ऐसे चाहिए । जेऊ उपकारी मेह ॥
अन्न फल सब होत है । मेह वर्षै जह तेह ॥
यों ही नित बरसै । ज्ञान वैराग विचार ॥
भक्ती प्रेम बढ़त है । जीवन के उपकार ॥
कथनी रहनी एक रस । हरि जन कहिये सोय ॥
कथनी कथै रहनी नहीं । जग भाण कहावै वोय ॥
भेष प्रताप से पूज ले । हरिहर जन दोउ एक ॥
कर संगत साधु का । सदा रखहु विवेक ॥

॥ दोहा ॥

हंसा बकुला एक रंग । गुण से चीन्हा जाये ॥
हंसा चूंगै मोतिया । विष रस बगुला खाये ॥
हंसन के मध्य में । बगुल हंस बन बैठा आय ॥
जब हंसा परचारिया । तब बकुला ठहरा जाय ॥
भेष मह बड़ समरथ है । हर एक लेत बनाय ॥
कालनेम अरू रावणे । भेष बना फल पाय ॥
जग सुचाली बिरला है । कुचाली प्रगट अनन्त ॥
धर्म कर्म को छोड़ के । सीखै दुर्मत मन्त ॥
एक सुचाली लख कुचाली । सबको लेत उबार ॥
नाम जहाज सो चलिये । शारदाराम बहु भये पार ॥

॥ दोहावली ॥

ॐ सहायक सर्व का । जेते जीव जहान ॥
सबको कर्म फल देत है । ॐ दाता बलवान् ॥
शरण रक्षक ॐ है । स्तुति बारम्बार ॥
नर बापुरे ॐ याद रख । जिसका सब बिस्तार ॥
अनन्त लोक का मालिक । तैंतीस कोटि देवान ॥
नर बापुरे सबसे कहो । एक ॐ पहचान ॥
मन में ॐ निश्चय धारो । मुख में ॐ उच्चार ॥
सूरत से ॐ सेइले । रख जीवन उपकार ॥
ॐ जपो ॐ उपदेशो । ॐ से रख व्यौहार ॥
ॐ ॐ दर्शव मान ले । जो चाहे सची यार ॥
मन बसाओ ॐ मह । जो चाहो कल्याण ॥
जीवात्मा भव उबरैं । दोहाई ॐ लख प्रमाण ॥

॥ दोहा ॥

कोटि कल्प अयोध्या बसै । काशी कोटिक जान ॥
एक निमिख ॐ मह बसै । कोऊ न तुलत है आन ॥
कडोर वर्ष मथुरा बसै । हरद्वार वर्ष हजार निवास ॥
भर निमिख ॐ मह बसै । वहि तुल एक न आस ॥
शिव के ॐ दसये द्वार बसै । विष्णु के ॐ श्वास ॥
कृष्ण के ॐ हृदय बसै । ब्रह्म के कंठास ॥
ॐ सहायक सभी का । सुर नर दानव अवतार ॥
तीरथ व्रत ॐ में लखिये । उतर चौरासी पार ॥

काशी बसै अयोध्या बसै । मन से जपै ॐकार ॥
तब ही भव दुःख पार हो । न तर होत खुवार ॥

॥ दोहा ॥

मथुरा सेवै हरद्वार सेवै । मन से सेवा ओम् ॥
तब ही अकाल को लहै । न तर पुनि होव जन्म ॥
तीरथ व्रत का फल यही । ॐ मिलन की आस ॥
जिसके उर में ॐ बसै । पुनि तीरथ का वास ॥
मन मानै तो तीरथ बसै । मन माने मुर्द घाट ॥
जिनके हृदय ॐ बसै । तिसको सदहि सुवाट ॥
घर बन तिस को एक भया । तीरथ आतिरथ समान ॥
ॐ निवासी उजला । भावै जहाँ रहान ॥
स्वपच ब्राह्मण एक भया । आत्मा के पैचान ॥
ॐ सनेही नित उबरै । और रहे डूबन वान ॥

॥ ब्रह्मचिन्तन दोहावली ॥

ॐ के माते जो माता । तिसका भया उद्धार ॥
और बपुरा फँस रहे । फिरै चौरासी धार ॥
ॐ रसायन जो पिया । अमर भया शरीर ॥
लोमस मुनि यज्ञवल्क । इनको जान ज़रूर ॥
सनक सनातन अजर अमर । ॐ रस पियत भरपूर ॥
गोरख भरतरी अजर अमर । ॐ रसायन लूर ॥
ॐ तो सबका प्राण है । ॐ मय सबका जान ॥

ॐ मय पार ब्रह्म परमात्मा। ॐ सच्चिदानन्द कहान॥
तन मन प्राण का प्रेरक । ॐ ईश्वर कहाय ॥
ज्यों प्रकाश का कारणे । त्रिलोक सूरज आय॥
ॐ प्रकाश वहू में । जो सूरज ज्योत कहाय॥
आसरे उसके सब चले । इससे सब ॐ सहाय॥

॥ दोहा ॥

ॐ जपा सब जप लिया। ब्रह्मा विष्णु महेश ॥
शेष शारद आदिशक्ति । जपा सिद्ध गणेश॥
ॐ जपे से सब खुशी। तीन लोक के देव॥
जेउ राजा से प्रेम लगा । रैयत क्यों लख भेव॥
भेव रखै तो रखन दे। हम जपि हौं ॐकार॥
ॐ कृपालु कृपा करे । देवतन संग मिलार॥
मेल करै सब देवता। जो जपे ॐ नाम ॥
ॐ हुकुम से सब लहत । ऊँची पदवी ठाम॥
ॐ सहारा पाय के। और सहारा त्याग॥
शारदाराम मनमानिया । ॐ ब्रह्म में चित लाग॥

॥ दोहा ॥

नर अजान समुझै नहीं। जेउ गाडर का भेड॥
एक परै यदि कूप मेंह। सब परै पग न पछेड॥
नर अंजान एवं भये। ज्यों काला भुजंग ॥
पोंगी बजावै गारुणी। वह होई रहै मतंग॥

नर अजान सब अस भये । जेउ जंगल का रीछ ॥
मदारी जस सिखाया । तस सीखा वह नीछ ॥
समुझाये समुझे नहीं । करत है वाद विवाद ॥
घट अन्दर पूरित रत्न । ढूँढै बाहर मनुजाद ॥
ऐसी अब तो आय परी । मनमाने का पंथ ॥
शारदाराम तेहि कारणे । निर्गुण रचा सदरग्रंथ ॥

॥ दोहा ॥

नर तू बावरे क्यों भया । तन अन्दर कर सोध ॥
परम पदारथ घट हिये । मन ही को प्रबोध ॥
गुरु पारखी परखावै । करहु गुरु का सेव ॥
तन मन गुरु को अरप दे । त्याग संसय सब भेव ॥
गुरु पारखी परखाया । गगन महल के बीच ॥
अमृत रस का पान कर । नित नित विषय उलीच ॥
विषयवासना त्याग के । केवल भया निर्मल ॥
आठ पहर चौसठ घडी । पार ब्रह्म मह रल ॥
पार ब्रम्ह का रूपला । पसरा सगले ठाम ॥
रुन झुन निश दिन झुन कला । सोई ब्रह्म का धाम ॥

॥ दोहा ॥

शूरा सोई सराहिये । दम दम सुरत सम्हार ॥
तहाँ लड़ना अति कठिन । सत् गुरू देत सहार ॥
बजा दमदमा गगन में । धावत सूर करार ॥

आठों पहर लड़न करके । दुश्मन देत निकार ॥
बजा दमदमा गगन में । कूरन को शुद्ध नाह ॥
बेलम रहे विषयन संग । पशू कहावत ताह ॥
बजा दमदमा गगन में । शूरा के मन चैन ॥
लड़न में नित मस्त रहै । ललकारे प्रेम के बैन ॥
बजा दमदमा गगन में । वीरन भये हुलास ॥
पाँचों दुश्मन जीत के । गये ब्रह्म के पास ॥
बजा दमदमा गगन में । दमदम लेहु निहार ॥
नाम सनेही मगन भये । अनहद के झुनकार ॥

॥ दोहा ॥

अनहद परखै पारखी । होत अनहद बेहद्द ॥
सदा सहाई रामजी । तिसको होत प्रसिद्ध ॥
अनहद नाद के कारणे । मनुवा भया बेचैन ॥
घंटा शंख नगारा मुरली । झुनुक शब्द सुख बैन ॥
बिरहिन विरह जगावे । कारण सुनने नाद ॥
नित निवास एकान्त करै । त्यागै वाद विवाद ॥
बिरहिन का मुख उजला । केवल विरह प्रताप ॥
आठ पहर लौ लागने । अनहद के आलाप ॥
बिरहिन माती बिरह में । बिसरा सब सन्ताप ॥
जेउ बारिध संयोग से । सरिता भय बेताप ॥

॥ ब्रह्मचिंतन दोहा ॥

बिरहिन बोले तो अस बोलै । जस बोलै उनमत्त ॥
सो शब्द सोई परीख हैं । उर जाके गुरु मत्त ॥

बिरहिन तो अनबोल है । बोल न जाने बोल ॥
शब्द निकालो मुख बाहरो । हिये तराजू तोल ॥
अनहद बिरह बिरहिन जगावे । सगली पर हर जाय ॥
आवन हो सोई आई है । सत गुरू को परचाय ॥
अनहद माती भई दिवानी । अनहद बिरह कहाय ॥
लगी लगन सोई लग रहे । त्रिलोकी सोई सोहाय ॥
बिरह जगाये सत गुरू । बिरह में दिये लगाय ॥
बलिहारी गुरू आपने । शारदाराम धुन पाय ॥

॥ दोहा ॥

साधु शूरा पतिव्रता । ये मग अति कराल ॥
निबहै तो ब्रह्म लहै । डिगै तो भया बिहाल ॥
शूरा साधु सराहिये । जग में उत्तम येह ॥
सूरा सीर आगे उतरा । साधु तन जाना खेह ॥
सिर उत्तरै सिर मिलत है । सिर राखे सिर जाय ॥
जेउ मुर्चा उत्तरै तेग से । अधिक अधिक चमकाय ॥
सीर देत को सूरवा । लख लालन का लाल ॥
सीर सौंपा जो सतगुरू को प्रगटा तन अन्दर उजयाल ॥
साधु सोई सराहिये । तन मन सोधे निज हेत ॥
समदर्शी होई रहै । आत्मा माह सुचेत ॥
साधु शरीर अन्दर बसै । बाहर का कर त्याग ॥
सदा सराहो ताहि को । जिसे आत्मा में रत लाग ॥

॥ दोहा ॥

आत्मदर्शी साधु है । खट दर्शी असाध ॥
आत्मदर्शी मुक्त है । खट दर्शी बन्ध अगाध ॥
आतमहि के अरस परस । आत्महि व्यौहार ॥
आत्मदर्शी एकता । सत गुरू के संचार ॥
आत्मा मध्य नित उठना । आत्मा मध्य सत बोल ॥
आत्मा के प्रभाव से । ॐ नाम नित तोल ॥
हिये तराजू तोल ले । जो संग चलत है माल ॥
सत गुरू के उपकार से । रंक भये निहाल ॥
आत्मवादी आतम लहै । जानत आत्मा सार ॥
शारदाराम आत्म परखिया । मिटा चौरासी अंधियार ॥

॥ दोहा ॥

उपकारी साधु कोई । सत गुरू के उपकार ॥
आतम सर्वव्यापी देखिया । जपा नाम ॐकार ॥
मोर तोर विसर रहा । आत्मा के प्रताप ॥
समदर्शी के उर मह । नित है अजपा जाप ॥
समदर्शी के भाव मह । एकै एक दिखात ॥
पाँचपचीस हुज्जत भई । सुमिर नाम प्रभात ॥
समदर्शी के नयन मह । बसी मुदादा सील ॥
मोर रूप दरसावै नित । दूसर नाहिं हील ॥
समदर्शी के नेत्र में । चढ़ा नीलना रंग ॥
विस्तार सर्व नील मह । सर्व रंग यही संग ॥

॥ दोहा ॥

समदर्शी के नेत्र मह । सूरज ऐसा तेज ॥
सर्व तेज लुप्त भया । समीप परता नेज ॥
समदर्शी उर निर्मल भया । जेउ निर्मल आकाश ॥
परउपकारी दोऊ लख । जीवन के अवकाश ॥
जीव अवकाश पहुँचिया । मिटा वाद् विवाद ॥
पँच दोष गल गये । आत्मा के प्रसाद ॥
आत्म प्रकाश प्रकाशिया । जह देखा तह आप ॥
आत्मा ही प्रताप से । बिद्रा मन संताप ॥
समदर्शी का गुण यह । साधै मन का मौन ॥
शारदाराम रमि रहो । हृदय जो आत्मा पौन ॥

॥ दोहा ॥

कौन पौन हृदय बसै । कौन कंठा कार ॥
कौन पौन गुदा बसै । कौन अंग संचार ॥
प्राण नीलना हृदय बसै । उदान कंठा कार ॥
समान पवन उदर बसै । ब्यान अंग संचार ॥
अपान पौन गुदा वसै । जोगी जन विचार ॥
पाँचपचीस शरीर संग । जिसका जग व्यौहार ॥
पाँच करम इन्द्रि पंचप्राण । इन्द्री पंच ज्ञान की ॥
एक मन शामिल कर । शरीर सूक्ष्म जीव की ॥
सोलह तत्त्व के पिण्ड में । ब्रह्म अंश समाय जीव ॥
ब्रह्मज्ञानी त्यागै इस पिण्डको । सो जीव समाया पीव ॥

पीव रहा सोई पिव भया । भर्म निवृति जीव ॥
पीव प्रकाश प्रकाशिया । जेउ प्रकाश रवीव ॥

॥ ब्रह्मचिन्तन दोहा ॥

अज्ञानी को पिव दूर है । ज्ञानी को पिव नेर ॥
सत गुरू सहारा उर बसा । राई से भया सुमेर ॥
सत गुरू के परखाये । परखा ब्रह्म का रूप ॥
हौं अज्ञानी क्या जानो । परा रहा तम कूप ॥
सहारा पूरा सत गुरू का । कुछ पुरुषार्थ आय ॥
लबेले जो हाथ लगा । त्रिकुटी मध्य में जाय ॥
डूबत डूबत रह गया । सत गुरु के आधार ॥
अब तो डुबना अस भया । सर्व गया आकार ॥
आकार उकार मकार का । निरकार सुन्नाकार ॥
शारदाराम वहाँ पहुँचिया । जहाँ आठ पहर उजियार ॥

॥ दोहा ॥

विभूत भरपूर पाया । जत लँगोटी बाँध ॥
जटा जगाया दसयें द्वार को । कौतुक देख अगाध ॥
धूनी लगाई धुन जगी । लवकी लकड़ी जार ॥
आठ पहर चौंसट घड़ी । सब दिन लागे प्यार ॥
आशा आश ब्रह्म की । चिमटा पाया जुगत ॥
झोली बटुवा ध्यान की । आत्मा पाया भुगत ॥

मृग छाला मन बस भया । बाघाम्बर बुद्धि शुध्य ॥
आसन दसवाँ द्वार मह । आत्मा विराजै नीध्य ॥
तिलक त्रिवेणी देख ले । जिसका मोहन छाप ॥
आठ पहर के जागने । आत्मा में गढ़ काप ॥
माला मनिया मन का । जपले अजपा जाप ॥
कर का माला फेरना । मन त्यागा संताप ॥

॥ दोहा ॥

आचार विचार निष्फल । जब तक आत्मा नाह ॥
जब आत्मा प्रगट भया । आचार सगले लुप्त जाह ॥
फोकट में आचार किया । आत्मा नहीं विचार ॥
श्रुति शास्त्र ऐसा कहै । आत्मा रहित हत्यार ॥
मुद्रा सन्तोष शृंगी नाद । दसयें द्वार की सुनै आवाज़ ॥
चीपीचितवोब्रह्मस्वरूप। भेखसनातनलखमोटोजहाज़॥
अचला अर्चन सत्य बनाओ । पार ब्रह्म में जाय समाव ॥
गेरूवा गेरमन दुश्मन चाल। धर्मसनातनको शीश नवाव
भेष मर्यादा सत्य येह । सदा मुक्त जाना तेह ॥
शारदाराम अन्तर की टेक। परम पदारथ ताही लेह ॥

॥ दोहा ॥

गुरू दयाल के हाथ में । साधन सगली जान ॥
उर अन्तर जाके बसै । जापर गुरू मेहरबान ॥
श्रीगुरू नानक चरण का । नित मैं धरहु ध्यान ॥

जाकी कृपा कटाक्ष से । लहि हो पद निर्बान ॥
गुरू नानक के चरण का । स्मरण आठो याम ॥
जाकी कृपा कटाक्ष से । ॐ प्रापत सुख धाम ॥
गुरू नानक मम इष्ट हैं । मम दीने पद उदास ॥
ॐ गुरू नानक मूर्ति का । उर मह सदा विलास ॥
गुरू नानक मम गुरु का गुरू । देवन का है देव ॥
गुरू नानक अरू ईश में । नर मूढन का भेव ॥
विष्णु रूप गुरु नानक । शिव रूप श्रीचन्द्र ॥
जग तारण के कारणे । दो रूप धारे योगिन्द्र ॥
श्रीचन्द्र गुरु नानकजी । विजय किये संसार ॥
कली कलुख विध्वंस कारणे । नाम किये प्रचार ॥
संसय समुद्र संसार में । सेतु बाँधे ॐ नाम ॥
स्मरण कीर्तन मनन किये । उतरे संसय सागर लाम ॥
निर्गुण सगुण गुरू देव को । सकल को फिर प्रणाम ॥
शारदाराम जन जान के । सर्वव्यापी रखो चरणाम् ॥

॥ भक्तावली चौपाई ॥

" ॐ भक्तवत्सलाय नम : "—
भक्तन को प्रभु सदा सहाई ।
अवगुण बकसे मोक्ष पठाई ॥
अजामिल नारायण नाम पुकारी ।
जन जान प्रभु दिये बैकुंठ द्वारी ॥
ध्रुव बालक को रूप दरशाई ।

चतुरभुज आपे प्रभु आई ॥
कर गलानी द्वादशनाम ध्यायी ।
अटल पदवी प्रभु दिये पहुँचाई ॥
प्रल्हाद को प्रभु आप उबारा ।
नरसिंह रूप धरे अवतारा ॥
गजेन्द्र हाक सुने बनवारी ।
ग्राह हेत गजराज उबारी ॥
पानी भरे त्रिलोचन भक्त की ताई ।
दास बने प्रभु तहाँ रहाई ॥
धाना भक्त के प्रभु गौ चराई ।
देखउ प्रभु की अति आधिनताई ॥
नरसिंह भक्त को भये सहाई ।
हुंडी लेन प्रभु आपे आई ॥
जयदेव पर प्रभु भये कृपाला ।
पुनि हाथ पाँव नवीन आला ॥
ऐगुण बधिक का प्रभु नाह विचारी ।
बान प्रहार कर वैकुंठ सिधारी ॥
नामा के घर छप्पर छाई ।
एकनाथ घर पानी भर आई ॥
मृतक गौ नामदेव जीआई ।
जन जान प्रभु भये सहाई ॥
कबीर घर कबीर रूप धारी ।
जब धर्म संकट पडा कबीर पर भारी ॥

मीरा जहर पी अमृत सुख पाई ।
अमर ज्योत प्रभु आप मिलाई ॥
सेवरि का फल प्रभुजी पाई ।
प्रेमविवस कछु बर्णी न जाई ॥
बालमीक श्रवण कुबजा प्रभु तारी ।
भक्तवत्सल सदा भक्त हितकारी ॥
बेणी ध्याये गोविन्द अनूप ।
गुरू नानक श्रीचन्द्र शिव सरूप ॥
सुदामा का तंदुल प्रभुजी पाई ।
सरबस निधि ताहि घर पहुँचाई ॥
पीपा भक्त को आप दर्श दिखाई ।
अपने निवास का ठाम बताई ॥
रविदास को आप गोद में आई ।
अभिमानिन का अभिमान हटाई ॥
दुर्योधन अभिमानी का मेवा त्यागा ।
विदुर घर खायो अलोन सागा ॥
हरिश्चन्द्र भक्त का कसौटी करी ।
जनक राज का विदेह पदवी धरी ॥
बिभीषण सुग्रीव को तारी ।
सदन कसाई को लियो उबारी ॥
मोरध्वज को आप प्रचारी ।
आपके चरण का भये अधिकारी ॥
जटाई गरुड हनुमंत को तारी ।

तुम प्रभु सबपर अनुग्रह कारी ॥
सेना नाई का प्रभु रूप धारा ।
सदा सदा से भक्त है प्यारा ॥
रामानन्द नाभा तुलसीदास गोसाई ।
सर्व पर प्रभु कृपा कर छाई ॥
द्रोपदि का प्रभु सुना विलापा ।
अनन्त चीर प्रगटी आपसे आपा ॥
पूतना विषपान कराई थाना ।
बैकुंठ पठाये प्रभु की गति बलवाना ॥
गनिका को प्रभु तुमही तारी ।
जब उर अन्तर गलानि वह धारी ॥
आत्मा रूप आपका धामा ।
सुन सुन अर्जुन लह बिश्रामा ॥
भक्त प्रिय आपको सदा सदाई ।
पशुपक्षी नर कोकर पाई ॥
शारदाराम के आप अधारी ।
अपना जान प्रभु लेहु उबारी ॥

दोहा

अनन्तहु चार युग भक्त भये ।
कह लग करहु विचार ॥
सबकी आस पूर भयी ।
सदा सर्वदा निरंकार ॥

ताके नाम का ओट गहू ।
ताके रूप का ध्यान ॥
सर्व व्यापी सर्व मयी ।
ऐसा ले जियं जान ॥
भक्त तुम्हारे भँवर हैं ।
तुम भक्तन के फूल ॥
सबको वास देत हो ।
जो जैसा अनुकूल ॥
भक्त सहाई आप हो ।
भक्त तुम्हारे आस ॥
तारौ चाहे भव डारो ।
तुम्हरा है विश्वास ॥
तुम्हरे द्वार पर पड़ा रहो ।
याही निश्चय मनमंत ॥
शारदाराम को तू ही ।
को लख तुम्हरा अन्त ॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

ॐ एक एकाई एकै राम । निर्गुण व्यापी सर्वै ठाम ॥ ऐसा जाप जपे कल्याण । एक दहइयाँ दश परमाण ॥ द्वा द्वैत मन से त्यागा । सर्वव्यापी ब्रह्म-संग लागा ॥ ज्ञान की चक्की दुर्मति पीस । दो दह-इयाँ शुद्ध हो बीस ॥ त्या त्रिगुण से हो तीत । मन प्रब-

ल को सदहि जीत ॥ जीवनमुक्त सत्य रहीस। तीन दहइयाँ पूरण तीस ॥ चौथे चार बेद का सार। ॐ सत नाम सदा पुकार ॥ सगली आश से होय निखालिस। चार दहइयाँ सतकर चालिस ॥ पचयें प्राण गति पावै सोई। षट्विकार जो उर से खोई ॥ पारा जुगवै शरीर मह तास। पाँच दहइयाँ लहा पचास ॥ छठयें छःशास्त्र दर्शावै। पारब्रह्म अपने घट पावै ॥ त्रिकुटी घाट का लखिले बाट। छः दहइयाँ दलमल साठ ॥ सतयें सत्य स्वरूप दृश्य आवै। गुरु की सेवा जो बनि जावै ॥ इंगला पिङ्गला नाड़ी अठत्तर। सात दहइयाँ निर्भय सत्तर ॥ अठयें अष्ट अङ्ग को साधै। प्राणायाम करि श्वासा बाँधै ॥ झिलि मिलि ज्योति झलकै उर तसी। आठ दहइयाँ रूप लखि असी ॥ नवयें नवद्वार को रोलै। दशवें द्वार की खिड़की खोलै ॥ आतमज्योति शुद्ध मनुवा लब्बे। नौ दहइयाँ सदा नवीन नब्बे ॥ दशयें दशा जीव की जागी। पारब्रह्म संग सुरती लागी ॥ शारदाराम आतमज्योति लव। दश दहइयाँ पूरण सौव ॥

॥ दोहा ॥

पहाड़ा पहाड़ हरिनाम है। सर्व पहाड़ तिसु माह।
प्रथम खण्ड के शोध ते। जीवो ब्रह्म समाह ॥ १ ॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

इग्रही ग्यारह इंद्रिय जीत। सबमहि आतम सबसे प्रीत। उन्मस्त भया आतम के रस। इग्यारह दहइयाँ एकसौ दश॥ बरहे बारह मास हुलास। हर्ष शोक से रहै उदास॥ सत्य दर्बार में सत्य बरतारा। एकसौ बीस सत्य पसारा॥ तेरहें तीनों ताप नशावै। गगन महल में ॐ चितावै॥ आतम दर्शन शुद्ध मनुव लीस। तेरह दहइयाँ एकसौ तीस॥ चौदहवें चँवर ज्योति एक हाले। सुरत सहेली कहीं न चाले॥ सूरत सहिलि ज्योत संग रालीस। चौदह दहइयाँ एकसौ चालिस। पञ्चदश प्राणायाम संग गाजे। लोली घण्टा निशिदिन बाजे॥ रंभा नृत्य करै सदमास। पन्द्रह दहइयाँ एकसौ पचास॥ सोलहे अद्भुत रूप को दरसे। लखि लखि जियरा नितनित हर्षे॥ आतमज्योति सर्व मह आठ। सोलह दहइयाँ एकसौ साठ॥ सतरहें सत्य स्वरूप दर्शावै। जियरा सेती ब्रह्म-कहावै। बिना बजायें बजे सत्नाद। एकसौ सत्तर सोई है आद॥ अठरहें आठ पहर गढ़ शोध। आतम सुख से मन पर बोध॥ पांचपचीसो तीसो कसी। अठारह दहइयाँ एकसौ असी॥ उन्निसयें उनमुन में मनलागा। आतमज्योति जबसे जागा॥ सदा-सन्तुष्ट आतम रस चाखै। एकसौ नब्बे सतसत भाखै॥

बिसयें बिसरा दुखसन्ताप । रामरूप भये आपे-आप ॥ शारदाराम आतमज्योति लयो गुरु पास । दोसौ पूरण ब्रह्मप्रकाश ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मप्रकाशिया सर्व कहँ । जहँ लगि गो गोचर मन जाय ॥ दुसरा खण्ड दर्शावत । तुमही ब्रह्म कहाय ॥

❋ पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश ❋

इकीसयें इंगला पिंगला शोधत जाय । सुखमण गही गगन को धाय ॥ तहँवा आतम होवै बश । इकीस दहइयाँ दोसौ दश ॥ बाईसयें बंकनाल को शोधै । रसरस दशयें द्वार पर बोधै ॥ तहहीं दर्शत नित जगदीश । बाईस दहइयाँ दोसौ बीस ॥ तेईसयें तिरमिर तिरमिर ज्योत । जहँ देखो तहँ वो ही होत ॥ तहँवा जीव से ब्रह्म कहावै । दोसौ तीस ज्योति महिं ज्योति समावै ॥ चौबीसयें चरणकमल अनूप । जीव सदा है ब्रह्मस्वरूप ॥ ब्रह्मज्ञान में जीव जब हाला । दोसौ चालिस संशय सब जाला ॥ पचीसयें पारब्रह्म मह समाया । ऐसा मग गुरु गम से पाया ॥ अष्ट कमल दल माह निवास । पचीस दहइयाँ दोसौ पचास ॥ छबीसयें बिचारसाफी से छानी । तो पारब्रह्म जीवहिं मनमानी ॥ सतगुरु

दर्शाये उर अन्तर ब्रह्मघाट। दोसौ साठ सत् बुद्धि ठाट॥ सत्तइसयें सात चक्र को शोधै। कण्ठा ऊपर मेरु महँ लोधे॥ लिये निशानी सतगुरु हाथ। दोसौ सतर बलिदान दे माथ॥ अठ्ठइसयें अटल सिंहासन पेखे। इतउत ब्रह्म देखत सोई देखै॥ कोटि शशीसम ब्रह्म-प्रकाशी। अठ्ठाइस दहइयाँ दोसौ असी॥ उनतीसयें उन काया में आया। जो अविनाशी आप कहाया॥ खिड़की से झाँको दर्शन झब्बे। उनतीस दहइयाँ दोसौ नब्बे॥ तिसयें तिस घर अन्दर हाला। आत्म-ज्योति नजर तेहि आला॥ शारदाराम वह रूप निराला। तीनसौ पूरण संशय जाला॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्म बसा तन चन्दने। खोजत बबुले पलास।
तिसरा खण्ड का आशय ही। ब्रह्म रहित क्या भास॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

इकतिसयें यह तन गढ़ है बीना। तिसमें रहत है ब्रह्मकुलीना॥ सतगुरु उपदेश सदा अनोखी। तीनसौ दस शब्दसंग शब्दै जोखी॥ बत्तीसयें बाद-शाह इस गढ़ का राजा। घट अन्दर में सदा बिराजा॥ घट अन्दर में नित धर ध्यान। तीन-सौ बीस सोई दर्शान॥ तैंतीसयें एक रस तार सुनाई।

बैठ एकान्त ध्यान जो लाई ॥ सुरत ब्रह्मज्योत में नित प्रवेश। तीनसौ तीस जीव सत्य हमेश ॥ चौतीसयें चमचम भये उजियारा। दशयें द्वार का सत्य पसारा। उसी प्रकाश मंह सुरत हालिस। तीनसौ चालिस भया निखालिस ॥ पैंतिसयें प्राण की गती बिलाई। गगन गुफा में जो चढ़ि जाई ॥ अविनाशी बाजे परम अवाजा। तीनसौ पचास घट अन्दर बाजा ॥ छत्तीसयें छत्तीस राग अलापै। अजपा जाप तहाँ जीव जापै ॥ छैलछबीली लख जिन कोई। तीनसौ साठ सत्य हैं सोई ॥ सैंतीसयें श्वेतवर्ण समावे। श्याम अरुण दो एक मिलावे ॥ शखंध्वनि परगट महाअवाजा। तीनसौ सत्तर गढ़ अन्दर बाजा ॥ अड़तीसयें आवा गमन मिटाई। घट अन्दर ध्वनि जो सुनि पाई ॥ ज्यों सरिता निधि माह समाई। तीनसौ अस्सी अचल कहाई ॥ उनतालीसयें उनकी जीती बाजी। जिन घट अन्दर साजना साजी ॥ प्रेम सिंहासन ब्रह्म बिराजे। तीनसौ नब्बे रतन नित लाजे ॥ चालीसयें चला अपने दर्बार। जहाँसे बहुरि नाहिं खुवार ॥ चाँदनी महिं चाँदनी जाय समाना। चारसौ पूर्ण भयें परमाणा ॥

॥ दोहा ॥

चार खण्ड के शोध में। दम दम शब्द सुनाय ॥
शारदाराम निरखत रहो। ज्यों निरखै मुकुर नेत्राय ॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

इकतालीसयें एक नज़र में आवै। उर्धोमुख जो शोध लगावै॥ रैनबिहानी सदा दिवाना। चार-सौ दस आतम मस्ताना॥ बयालीसयें बार अनेको गुनी। अनहद ध्वनी उर्धोमुख सुनी॥ तहँहीं मनुवा करै निवास। चारसौ बीस सुवस वह बास॥ तैंतालीसयें वह चीन्हो घाट। सोहं शब्द जेहि आवे बाट॥ उसी शब्द का गही हो डोर। चारसौ तीस रतन हलोर॥ चवालीसयें चरणन पर बलिहार। जो कोई दर्शै ब्रह्म दिदार। सुरत सुराही गली चढ़ि जान। चारसौ चालीस विरलै जान॥ पैंतालीसयें पल पल सोई चितारे। सदा विदेह अस ब्रह्म विचारे॥ परमित अहार अनाश्रित होई। चारसौ पचास ब्रह्मज्ञानी सोई॥ छियालीसयें छिरकारा ब्रह्म फुहारा। शीतल होकर रूप सँभारा॥ जो जो परसै ब्रह्म फुहारा। चारसौ साठ सुमति अगारा। सैंतालीसयें सर परम सुहावन॥ अमृत फ़ुहारा जहँते आवन॥ तेहि सर मंजन करत निहाला। चारसौ सत्तर सुगन्ध केवाला॥ अड़तालीसयें अड़ाते ही निज घाट। जहँ मंजन निजसुखी लिलाट॥ सत सर मंजन तनमन विगोवा। चारसौ अस्सी कंचन होवा॥ ऊंचासयें उनका ऊंच निवास। शृंगी रुणझुण सद सहवास। प्रेमप्रकाशी हरीला मन। चारसौ नब्बे सुरती रन॥ पचासयें

परम भया परकाश। लख करोड़ी पतङ्ग सहबास ॥ शारदाराम शीतल कोटि चन्द । पाँचसौ पूरण हरि आपे मकरन्द ॥

॥ दोहा ॥

फुरसत सुनत रहत नहीं। अनहद ध्वनि का नाद ॥
पँचवाँ खण्ड भनत हूँ। ब्रह्म स्वादी का स्वाद ॥ ५ ॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

इक्यावनयें एकान्त सुरति चढ़ावै। सहस्र दलन का बास ले आवै॥ वह बास सुबास अगम अपारा॥ पाँचसौ दस भया मतवारा। बावनयें बानसम बास वह लागी। कुण्डलाकार त्यागकर जागी॥ सुन्न गुफा में किये पयान। पाँचसौ बीस तहीं रह जान॥ त्रिपनयें तख्त सोई निवासी। सहस्र दलन का जो हो असी॥ सहस्र दलन के अन्दर देख। पाँचसौ तीस अद्भुत लेख॥ चौवने चार कुण्ठ दल साज। नौबत बाजा निशिदिन बाज॥ सुबह शाम कोई नहीं टेम। पाँचसौ चालिस श्वासग्रास बजेम॥ पचपने पाँच तार एक रंग। ब्रह्मज्योति सदा तेहि संग॥ पाँचौ मिलीं करैं कौतोहल। पाँचसौ पचास अजब वह जो हल। छपने सागर शब्द

अथाह ॥ तहहीं हँसासद बिल माह। सागर न त्यागहिं कहीं न जाय। पाँचसौ साठ शब्द समाय॥ सत्तानवें सत सरोवर पाया। मन भँवरा तहँ फेरी लाया॥ फेरी लावत फेर चुकाया। पाँचसौ सत्तर हंस कहाया॥ अट्ठावनें अट्ठारह उपर गया। निर्भय पद में निर्भय भया॥ शूली ऊपर निर्भय बाट। पाँचसौ अस्सी बीरन का ठाट॥ उनसठयें उनमुन में करे बिहार। बोल हलचल से रहै नियार॥ बेअन्त गम उनमुन महँ जागी। पाँचसौ नब्बे लहे सुभागी॥ साठयें संग से निःसंग रहावै। जबसे फुलझर अलख़ का पावै॥ शारदाराम अलख़ समावै। छःसौ पूरण बहुरि न आवै॥

॥ दोहा ॥

बेपरवाही सद रहे। षट्पहाड़ा भास।
गुरुगम चकमक भासिया। ज्यों सूरज परकाश॥६॥

✳ पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश ✳

एकसठयें एक उमड़ी महिमण्ड। ज्यों उमड़े घनघोर घमंड॥ उमड़ि घुमड़ि बरसै बरसारा। छःसौ दस कछु अन्त न पारा॥ बासठयें भभकी

उठ्यो उर अन्तर। प्रेम प्रकाशक वही पुलन्दर ॥ गरजि गरजि व्याप्यो ब्रह्मण्ड। छःसौ बीस अहे परचण्ड ॥ तिरसठयें तिरबेणी औघट घाट। सदा गल़तान तनमन छाँट॥ मधुकर सिखरम सुधा स्वाद। छःसौ तीस अचल अहलाद॥ चोसठयें चौसठ घड़ी एक रंग। मिटा कुराही चला सुरंग ॥उनमान दीपक लख करोर।छःसौ चालिस अनमोल हलोर॥ पैंसठयें पारखि पावै कोई। ऋषिमुनी तेहि माहिं हिरोई॥मोतियन लरी हीरा परकाश। प्रेमविवश भये छःसौ पचास ॥ छाछठयें छः चक्र सुधारा। सँतवाँ चक्र में किया सँभारा ॥ तेहि घटज्योति सुगम निशानी। छःसौ साठ भया पर-मानी ॥ सरसठयें सरकमल प्रकाश। दल अनेक लगाहे तास ॥ मन भँवरा लुब्धा है तहँवाँ। छःसौ सत्तर अनुभव जहवाँ ॥ अड़सठयें आठ पहर गढ़ काप। बिसरा देही का पियना खाप ॥ सोहंगम डोर सद अमिचुवे। छःसौ अस्सी उर्धोमुख कुवे ॥ उनहत्तरयें उनमुन की लागी डोर। महाप्रकाश भया है जोर। केदली कमल गरजे गगन। छःसौ नब्बे हरदम मगन ॥ सत्तरयें लागी स्वर्ग की डोर। आतम-रस लग मने मरोर। शारदाराम सर्वव्यापी दर्शंत। सातसौ पूरण लख जियरा हर्षत ॥

॥ दोहा ॥

सप्तम खण्ड में ब्रह्म लहा। ज्योती ज्योतप्रकाश ॥
सत गुरु की कृपा भयी। नव पँच द्वीप में तास ॥७॥

*** पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश ***

एकहत्तरयें एकाग्र हो जावै। ॐ सोऽहं बासुदेव दर्शावै॥ परख परख दामिनि सम दमकै। सातसौ दस दशयें द्वार चमकै॥ बहत्तरयें बहता निर्मल जल गंग। मन स्नानकर तहाँ निःसंग॥ दशयें द्वार का जल पवित्र। सातसौ बीस तहाँ लिखि चित्र॥ तिहत्तरयें त्रिया एक संसार। एकै पुरुष अहै अपार॥ सौ त्रिया पुरुष के आज्ञाकारी। सातसौ तीस कर सत्य बिचारी॥ चहोत्तरयें चरण पुरुष का कमल मध्य। सौ कमल पँचीकरण के अर्ध॥ पँची अपँचीकरण महिं पुरुष निवास। सातसौ चालिस जगदास खवास। पँचहत्तरयें परम पुरुष बिराजे। सहस्रदल कमल सेज जहँ साजे॥ तेहि पुरुष को तेहु निहारी। सातसौ पचास जनु चढ़ी खुमारी॥ छिहत्तरयें छिड़काव प्रेम का कर हूँ। जिससे सहस्रदल बिकसित रह हूँ॥ पुरुष प्रसन्न परसो दिन राती। सातसौ साठ शुद्ध सुरति सुहाती॥ सतहत्तरयें सत सत सत कर माता।

निशिदिन सुरति पुरुष महँ राता ॥ रम रहा ताकिया सहज रसाल ॥ सातसौ सत्तर सदा निवासत रवाल। अठत्तरयें अड़ की सुरति प्रबीण। परम पुरुष महँ नित नित लीन ॥ तेहि पुरुष का रूप निहारी। सातसौ अस्सी जाऊँ बलिहारी ॥ उन्नीसयें ऊना झीनी शब्द बजाई। सुन सुन मनुवा आप समाई ॥ अमर पंथ का झीना शब्द सुनाई। सातसौ नब्बे अमर पद पाई ॥ अस्सी कसो सोऽहंगम डोर। दशयें द्वार कोई बोलत कर शोर ॥ शारदाराम किये तहीं पयाना। आठसौ पूरण ब्रह्म समाना ॥

॥ दोहा ॥

अष्टम खण्ड अटल पद। गहो सोऽहंगम डोर ॥
शारदाराम गहि रहे। लर्जत जियरा मोर ॥ ८ ॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

एक्यासयें अकाशपताल समाना। लोक बेद अविगत परमाना ॥ अविगत की गति को लखि पाई। आठसौ दस जो सुन्न समाई ॥ बयासियें बार बार रहो हुजूर। तक्त निवासी देख ज़रूर ॥ तक़त निवासी तारे जीव। आठसौ बीस रस अमृत पीव ॥ तिरासयें त्रिगुण को बिसराई। निर्गुण सुन्न में जाय समाई ॥ निर्गुण मध्य में सब गुण रहीस।

आप निरंजन आठसौ तीस॥ चौरासियें चौरासी योनी निवृत्त। गुरु गम निहार शब्द प्रवृत्त॥ हाट-पठन सेवहु निज सुन्न। आठसौ चालीस भये निर्गुन्न॥ पचासियें निरन्तर परमानन्द बिराजा। अनहद नाद सजा जहँ साजा॥ नव रस सुभर दशयें तूर। आठसौ पचास भया भरपूर॥ छियासयें छिन्नभिन्न कर दी जो नाहीं। आतम अखण्ड सोई कहाहीं॥ कहत सुनत लहत मुक्त निवासी। आठसौ साठ आतम परकासी॥ सतासियें श्रवत अमृत धारा। सर बस रस अनहद है प्यारा॥ बिरह बिरहिनी सर अमृत अन्तर। गुरु सन परसे आठसौ सत्तर॥ अठ्ठा-सियें अटल भया वह जीव। अमृत रस जो नित नित पीव॥ निर्मल अकथनीय शोभा उर तसी। भया परपक आठसौ असी॥ नवासियें नरक स्वर्ग से छूटी॥ पी लिया जो कोई अमृत बूटी॥ अमर कुंजी साति गुरु से लब्बे। प्रेमविवश भये आठसौ नब्बे॥ नब्बे नवीन नित आतमज्योति। स्वतः स्वतान्त सदा सुचेति॥ शारदाराम वह रूप निराला। नौसौ पूरण ब्रह्म समाला॥

॥ दोहा ॥

नव खण्ड प्रचंड परकाशे। सदा प्रचण्ड ब्रह्म ज्योत।
ताके पटतर को तुलै लौलेशी सबै होत॥ ९॥

* पहाड़ा रूप से अनुभव प्रकाश *

इक्यानबे एकी ज्योतिस्वरूप। रह्यो व्यापि तिरभुवनी भूप ॥ महान रूप अद्भुत आनूप। नवसौ दस लख अमरत कूप॥ ब्यानबे परम बिचार। घट अन्दर है सोई संचार ॥ सौ बारिक है अजपा जाप। नौसौ बीस सुरति उलटाप॥ तिरानबे तृपत आतम भया। घट अन्दर का शोध जब लया॥ आपमें आप जाय समावे। नौसौ तीस बहुरि न आवे॥ चौरानबे चमचम दिव्य स्वरूप। माहीं चन्दसूरज लख दीप॥ रोशनी अबिनाशी तेल बिनबाती। नौसौ चालिस सदा सुहाती॥ पँचानबे मुक्ता मोती झलक झलकारा। हीरा रतनन लरी अपारा॥ अरसि परसि परम वह पारस। नौसौ पचास सन्त मत आरस॥ छियानबे छिन छिन मनन करावे। इस अनुभव को सोई जन पावै॥ पाया अनुभव भया बेताब। नौसौ साठ वह आपी आब॥ सत्तानबे शब्दगुरु लागा बान। करक करे जे लगा निशान॥ ऊठत बैठत भूमा महँ परी। नौसौ सत्तर जियरा सुधरी॥ अट्ठानबे अटल चाबी गुरु दीन। आतम धन खोला परबीन॥ सो धन देखत गदगद छान्ती। नौसौ अस्सी उघड़ा आन्ती॥ निन्यनबे निमिष न लावे देर। स्वरूप महँ स्वरूप मिला अहेर॥ अहेर माहीं आप हेराई। नौसौ नब्बे भये

पूर कमाई ॥ सवयें सम्पूरण हो आई। अनेक जनम की बढ़ी कमाई ॥ शारदाराम सर्व व्यापी प्रगट भया। हजार सम्पूरण हृदय पया ॥

॥ दोहा ॥

दशम खण्ड संपूर्ण भया। बिसरा शोक सन्ताप ॥
सत गुरु की कृपा भयी। पाया आपमें आप ॥१०॥

॥ दोहा ॥

गुरुद्वार मम अवधपुरी। शारदाराम मम नाम ॥
निमित् तीर्थ यात्रा। गिर पूना बिश्राम ॥

॥ चौपाई ॥

अवधपुरी मम है गुरुद्वारा।
भेष उदासीन विदित संसारा ॥
श्रीमाधोराम शिष्य सुद्धरामा।
प्रसिद्ध जगत् है यह ठामा।
श्रीमौजीराम पूज्यपाद मम गुरु हैं ॥
आत्मवत महान् मुनि हैं ॥
शान्तीवत मति धीर सुहाई।
विष्णुवत मम प्रेम उपजाई ॥

गुरुदेव दयाल दिये ॐ नामा ।
सुमिरो सुमिरावो होय सुख धामा ।
परमपरा से यह चलि आई ।
सनक सनन्दन गुरु आदि कहाई ॥
ॐ नाम कंठमाल परोई ।
तीर्थपर्यटन पूना अगमन होई ॥
रामटेकरी सुन्दर गिर नामा ।
सम्वत् उनइससौ सतहत्तर किये ठामा ॥
ईश्वरकृपा अधिक अधिकाई ।
उदासीनगढ़ सुन्दर रचन रचाई ॥
गढ़ अन्दर दार्शिक दर्शन पाई ।
होत मुदित अधिक अधिकाई ॥
किंचित् पुरुषार्थ अधिक फल पाई ।
शारदाराम भयो ईश सहाई ॥
शारदाराम पतितन पतिपाई ।
जपनहार दर्शों ॐ प्रभुताई ॥

॥ ॐकार ब्रह्म की जय शरणम् ॥
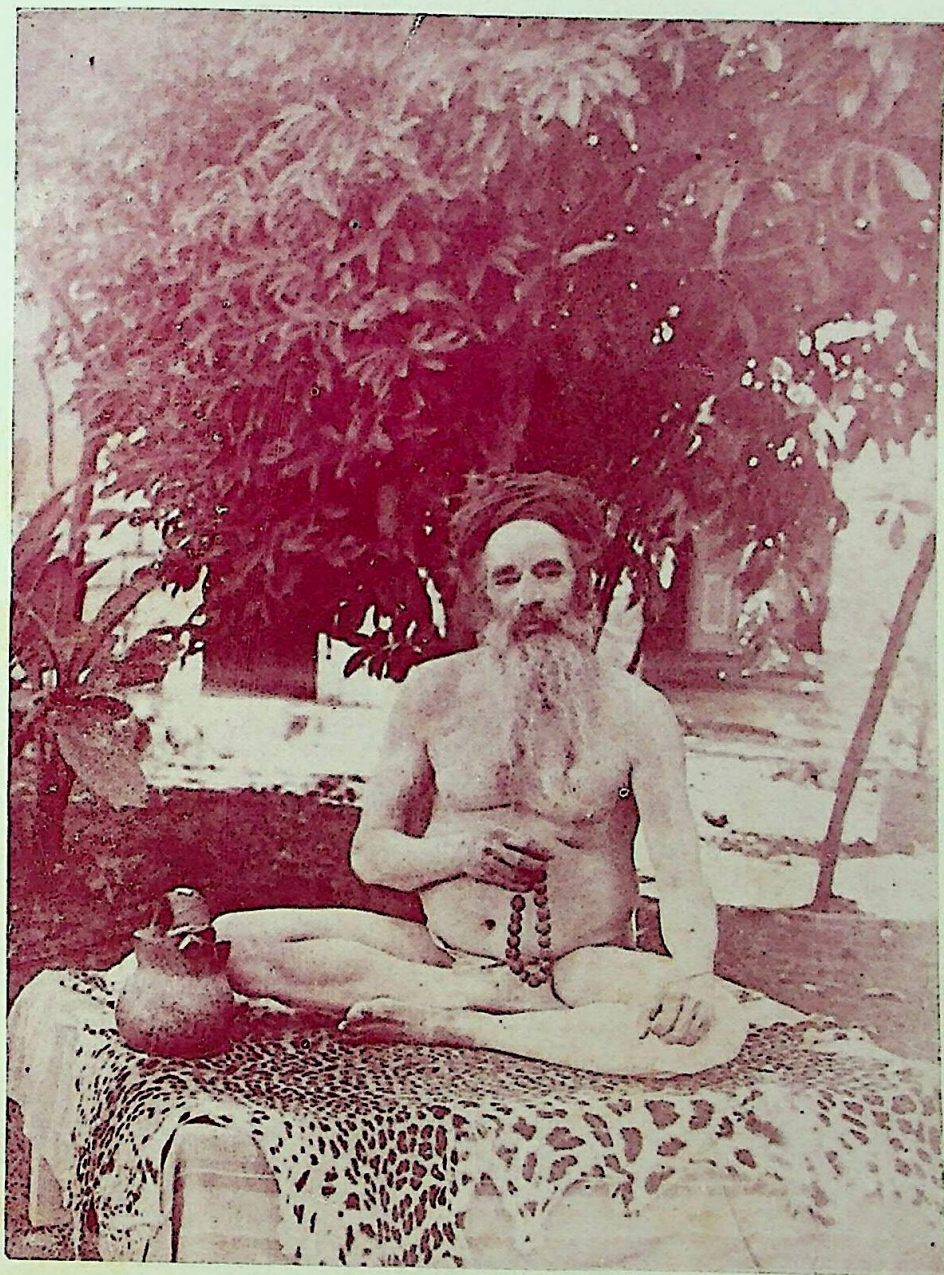
शिष्य कोठारी ब्रह्मदासजी उदासीन (रामटेकड़ी, पूना)
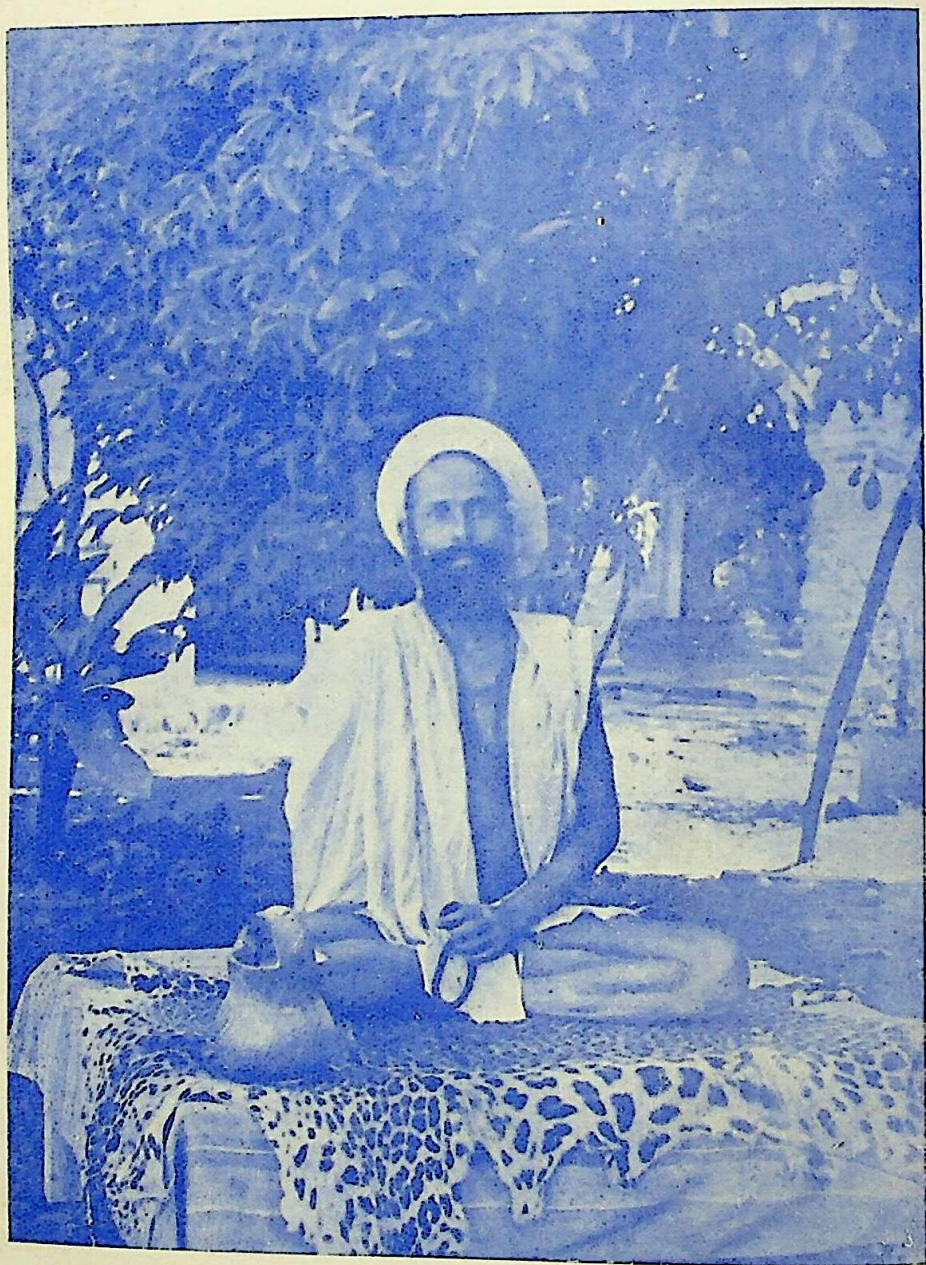
शिष्य कारोबारी महानन्दासजी उदासीन (रामटेकड़ी, पूना)

त्यागी शिष्यों का संक्षिप्त परिचय

* श्रीमन् कोठारी बाबा ब्रह्मदासजी:— *

॥ दोहा ॥

ब्रह्मदास ब्रह्मवृत धर के। करत रहो व्यवहार।
सद्गुरु की प्रसन्नता से। उतरो चौरासी पार॥

श्रीमान् कोठारी बाबा ब्रह्मदासजी को शिष्य बने हुए २८ वर्ष के लगभग हो गये हैं। आप जबसे गुरु शरण में दीक्षित हुए तबसे गुरु सेवा में दत्त चित्त रहते हैं। गुरुभक्ति आपमें कूट कूट कर भरी हुई है। आप परम त्यागी उदासी हैं। उदासीनगढ़ (रामटेकड़ी) के प्रथम द्वार के स्तम्भ हैं। बीस वर्षों से उदासीनगढ़ के कुठाराधिकारी हैं। परम पूज्य बाबाजी के आप विश्वास पात्र और प्रथम शिष्य हैं। गुरु आज्ञा से कुठार के कार्य को आप अच्छी प्रकार चलाते हैं।

* श्रीमान् बाबा महानदेवदासजी *

॥ दोहा ॥

महान् आत्मा महानदेवदास। सेवा करो चित्त लाय।
सद्गुरू की कृपा लहिये। तो सगली चिन्त विलाय॥

श्रीमान् बाबा महानदेवदासजी उदासीन परम त्यागी और गुरुभक्त हैं। आपको बाबाजी के शरण आये हुए (शिष्य बने हुए) लगभग अठारह वर्ष हो गये हैं। आप गुरुदेव की आज्ञा से उदासीनगढ़ का कारोवार बड़े ही सचिव रूप से सम्भाले हुए हैं। आप यद्यपि एक भुजा से रहित हैं किन्तु गुरुकृपा की छत्रछाया में आप साइकिल से बाज़ार का सौदा तथा लेन देन का कार्य सुचारू रूप से करते रहते हैं। आप आश्रम में आये हुए अतिथी साधुसन्तों की सेवा सुश्रूषा पर विशेष ध्यान रखते हैं। कोठारी बाबा ब्रह्मदासजी के तो आप ही दहिने हाथ हैं। आपकी कार्यकुशलता, सेवापरायणता तथा फुर्तीलेपन पर महाराजं गुरु-देवजी बड़े प्रसन्न रहते हैं।

* श्रीमान् बाबा नानक शरणदासजी *

॥ दोहा ॥

नानक शरणदास गुरु को। भजो छोड देह की आस।
लख चौरासी छूट के। पहुँचो प्रभु के पास ॥

श्रीमान् बाबा नानक शरणदासजी को छः सात वर्ष त्यागी शिष्य बने हुए हो गये हैं। आप विचारवान्, साधुस्वभाव गुरुभक्त हैं। आप आहार
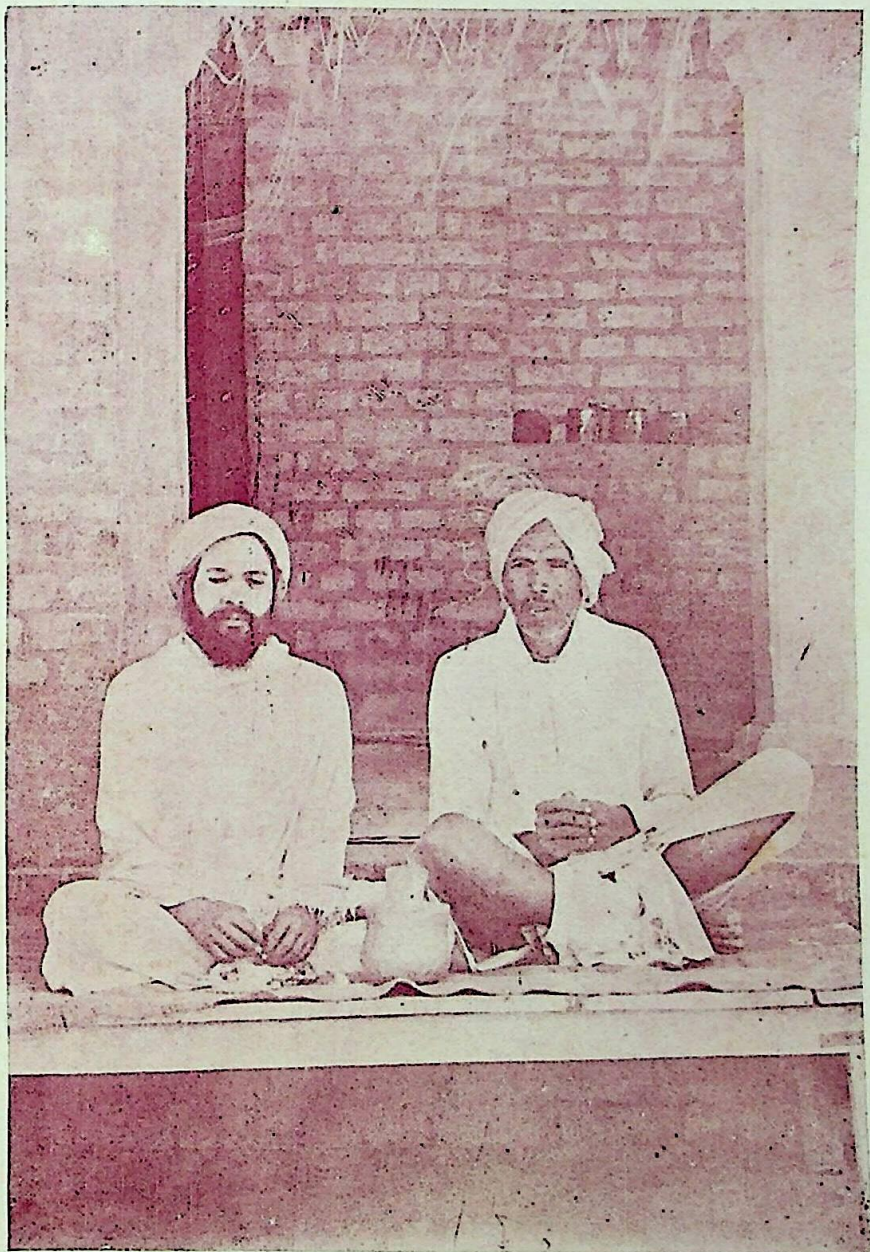
शिष्य नानकशरण उदासीन और बाबाजी के पूज्य ज्येष्ठ भाईजी
श्री अलगुरामजी चौधरी (उदासीनपुरी—कप्तानगंज)
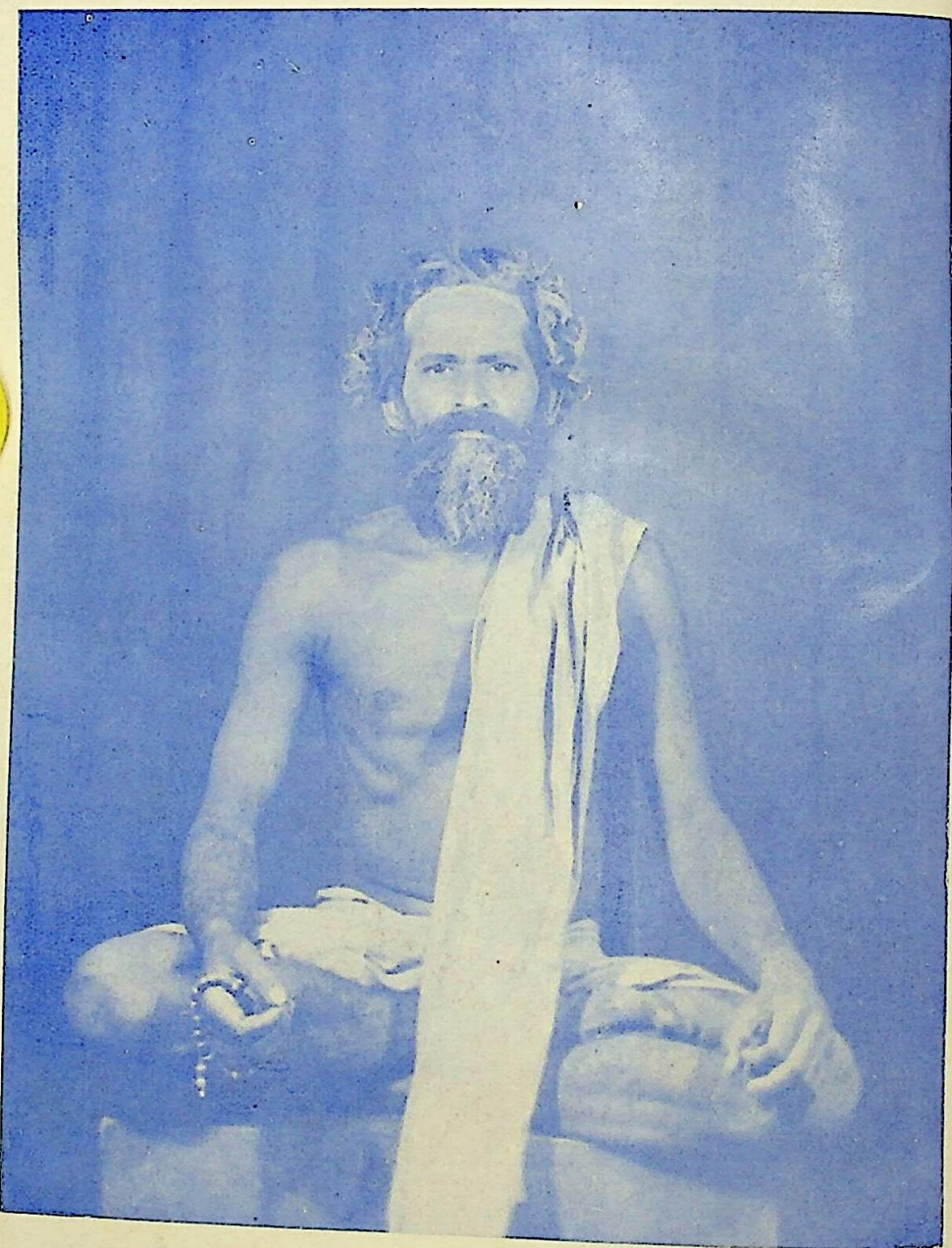
शिष्य पुजारी धर्मदासजी उदासीन (रामटेकड़ी, पूना)

ब्यौहार के कार्यों में भी बड़े कुशल हैं, इसीलिये महाराज गुरुदेवजीने आपके ऊपर उदासीनपुरी, ज़िला आज़मगढ़, कप्तानगंज का भार सौंपा दिया है। आप वहाँके तमाम सेवा-सुश्रूषा का कार्य सुव्यवस्थित रूप से चला रहे हैं।

---

* श्रीमान् धर्मदासजी *

॥ दोहा ॥

धर्मदास निज धर्म में। अटल रखो विश्वास।
सत् गुरु की कृपा बिना। रखो न प्रभु की आस॥

श्रीमान् बाबा धर्मदासजी सन् १९५० में बाबाजी के त्यागी शिष्य हुए हैं। आप गुरुभक्ति परायण और गुरुभक्ति ही अपना मूल धर्म समझते हैं। "यथा नाम तथा गुणाः" के अनुसार आप कर्मनिष्ठ धर्मदास हैं।

गुरु आज्ञा से उदासीनगढ़ के देवमन्दिरों की पूजा का कार्य करते हैं और गुरुसेवा से कृतार्थ होते रहते हैं।

उपरोक्त शिष्यों का परिचय संक्षेप से दिया

गया है। प्रायः उपरोक्त ही शिष्य आश्रम में उपस्थित रहते हैं। बाकी और शिष्यों का आना जाना यदा कदा होता रहता है। शिष्यों की संख्या और नाम लिखने की इतनी आवश्यकता नहीं समझी गयी क्योंकि बाबाजी के बहुत से गृहस्थी भी शिष्य बने हुए हैं।

विभूति चमत्कार प्रकरण

मंत्र

"ॐ ब्रह्म सोऽहं जाप। शुद्ध ब्रह्म आतप आप ॥
आदि गुरु हँसावतार। आतम मेधावी सनत्कुमार॥
ॐ सत् नाम श्रुत। नामजप जीवन भुक्त ॥"

॥ गुणं हि सर्वत्र पदं निधीयते ॥

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही सन्त-साधुओं की कमी नहीं रही, अनगिनत हुए और असार संसार से चल बसे। बड़े बड़े अवतारी सिद्ध तपस्वी आचार्यजन, जगद्गुरु, निर्गुणी सन्त, सगुणी सन्त आदि इस भूमि की शोभा बढ़ा कर चले गये। काया अमर न तो दिगम्बरियों की रही और न अवधूतों की। केवल अपने अपने तपोबल के प्रभाव से जो जो चमत्कारिक प्रभाव उन महामहिमशालियों का देखने या सुनने में आया है वे ही हमेशा के लिये अमर हो गये, जो उनकी विभूति का चमत्कार था। उसका उल्लेख विद्वान कवियोंने ग्रन्थों में सुरक्षित रख दिया। जिन जिन सन्तों की बाणी संसार की समाज को सुधारने तथा सदुपदेश के लिये प्रगट हुई उनका

प्रकथन आज समाज का साहित्य बन कर देश के कोने कोने में जगमगा रहा है।

किसी किसीके तपोमय प्रभाव से मृतक भी जीवित हो गये हैं। उदाहरणार्थ, संत ज्ञानेश्वर महाराजजी, उदासीनाचार्य श्री श्रीचन्द्र भगवान् तथा समर्थ गुरु रामदासजी आदि बहुत से सन्त गिने जा सकते हैं।

किसी किसी के हाथ में ही बरदानात्मक चमत्कार सुना गया तो किसीकी बाणी में ही महत्त्वपूर्ण चमत्कार देखा और सुना गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि बड़े बड़े अद्भुत और विस्मयात्मक, चमत्कारिक प्रभाव के ही कारण भारतीय सन्त आज भी अमर ही माने जाते हैं। उनका मिट्टी का चोला न रहा तो क्या हुआ, उनका प्रभावोत्पादक चमत्कार तो अमर है ही जो कि प्रलयान्त तक भी अवश्य रहेगा। इस विषय पर मैं "कल्याण" कार्यालय, गोरखपुर, के सम्पादक महोदय को हार्दिक धन्यवाद दूँगा। जिन्होंने "सन्त अङ्क", "भक्तचरिताङ्क" (कल्याण मासिक) के प्रकाशन द्वारा भारतवर्ष कि ही नहीं अपितु देशविदेशों के कोने कोने तक सन्तों का

महत्त्वपूर्ण परिचय दे कर वर्तमान समाज को कृतार्थ किया है। इससे अधिक मैं कुछ न लिख कर अपने मन्तव्य से "विभूति चमत्कार प्रकरण" पर प्रकाश डालता हूँ —

उपरोक्त "गुणं हि सर्वत्र पदं निधीयते" पद को ले कर मैंने महा तपोनिधि बाबाजी के महत्त्वपूर्ण विभूति चमत्कार की संक्षिप्त घटनाएँ कुछ सेवकों के द्वारा लिखवा दी हैं जिनपर श्रीमान् बाबाजी की कृपा फलीभूत होई।

श्रीमान् बाबाजी की धुनि की "राख" के द्वारा अनगिनत लोगों की मनोकामनाएँ सफल हुई हैं। यहाँपर तो केवल उन्हीं लोगों की लेख प्रकाशित की गयी हैं जो प्रत्यक्ष लेखक के सामने उपस्थित हुए।

" बाबाजी का यथार्थ दर्शन "

(लेखक :- श्री गोविंद हणमंत जाना, पूना)

(१) ईश्वरपरायण बुद्धि या व्यवसायात्मिका बुद्धि।

सद्गुरू बाबाजी के जीवन चरित्र पढ़ने से पाठकगणों को यह अनुभव में आया होगा कि, बाबाजी की बचपन से ही उनकी बुद्धि ईश्वरपरायण थी (जिसको श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवानने व्यवसायात्मिका बुद्धि करके बताया है) और ईश्वरप्राप्ति के लिये उनके सारे व्यवहार केंद्रित हुए थे। बाबाजी के साधन काल में या बचपन से ही देखो तो उनमें ऐसा प्रतीत होता है जैसा सन्त तुकाराम महाराजने कहा है—

"न मिळो खावया, न वाढो संतान।
परि हा नारायण कृपा करो।
ऐसी माझी वाचा मज उपदेशी।
आणीक लोकांसी हेचि सांगे॥"

(अनुवादः—सन्त तुकाराम महाराज अपनी बाणी में कहते हैं, 'मुझे खाने को नहीं मिले, संतान न हों तो चलेगा परंतु वह प्रभु मेरे ऊपर कृपा करें। मेरी ज़बान मुझे इस तरह उपदेश करती है और औरों को भी यही कहती है।)

ऐसी ही बाबाजी की अवस्था उनके बचपन से ही देखने में आती है। उन्हें तो अन्नवस्त्रादिक की फ़िक़ीर ही नहीं थी। केवल प्रभुप्राप्ति का ही लक्ष्य। इस अंतःकरण के वृत्ती का अनुभव बाबाजी का बचपन में उनकी माताजी के साथ हुआ संवाद, मित्र नारायण के साथ हुआ संवाद, साधु-सन्तों के साथ हुए सो बातें, इन सब बातों में दिखायी देता है। जैसे भगवान् श्रीकृष्णने गीता कें दूसरे अध्याय में कहा है—

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥"

इस श्लोक के ऊपर सद्‌गुरू ज्ञानेश्वर महाराजने अपनी "ज्ञानेश्वरी" में बताया है किः—

"तैसें ईश्वरावांचूनि कांहीं। जिये आणिक लाहणे नाहीं। तें एकाचि बुद्धि पाही। अर्जुना जनीं॥"

(अनुवादः—वैसे, हे अर्जुन, जिसे ईश्वरप्राप्ति बिना और कुछ प्राप्ति नहीं है, इस प्रकार की बुद्धि जगत में एक ही है।")

गीता के सोलह अध्याय में तप का वर्णन करते हुए सद्‌गुरू ज्ञानेश्वर महाराजने बताया है—

"तैसा स्वरूपाचिया प्रसरा ।
लागीं प्राणेंद्रियशरिरां ।
आटणी करणें जें वीरा ।
तेंचि तप ।"

(अर्थात्‌ः—स्वस्वरूप प्राप्ति के लिये प्राण, इंद्रिय और शरीर इनका निरोधन करना यह तप है। इसी तरह बाबाजी की सारी तपस्या, कठिन कठिन नित्य नियमों और साधनों जैसा कि जंगलों में तपस्या करते हुए रहना, रात्री के तीन बजे अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त पर उठकर कहीं दिनों तक जल में अनुष्ठान करना, स्मशानभूमि में भगवत् चिंतन करते रहना, इन सब बातों से मालूम होता है कि बाबाजी का सारा लक्ष्य सच्चा परमार्थ साध्य करने में मग्न हुआ था, किंबहुना क्या कहूँ— उनकी बुद्धि को भगवान् की प्राप्ति रूपी अमृत की प्यास लगी रही थी। वह अमृत उन्होंने पी लिया और आज तक भी नित्य पीते ही रहते हैं।

वाचिक तप का वर्णन करते हुए सन्त ज्ञानेश्वर महाराजने बताया है कि:—

"तरी लोहाचें आंग तुक। न तोडितांचि कनक।
केलें जैसे देख। परिसे तेणें ॥

तैसें न दुखवितां सेजे । जावळिया सुख निपजे ।
ऐसें साधुत्व का देखिजे । बोलणां जिये ॥
जरी कोणी करी पुसणें।तरी होआवें ऐसें बोलणें॥
नातरी आवर्तणें । निगमु का नाम ॥ "

(अर्थः— हे अर्जुन, लोह का आकार और तौल स्थिर रखकर जिस प्रकार पारस उसका सुवर्ण बना देता है उस प्रकार जिससे भाषण करना है उसके पास बैठे हुए अन्य मनुष्यों को भी दुःख न होकर अनायास सुख प्राप्त होवें, इस रीति जिस भाषण की शक्ति है। यदि किसीने प्रश्न किया तो इस प्रकार भाषण करते हैं, नहीं तो वेदों का अध्ययन अथवा भजन करते हैं।)

इसी तरह वाचिक तप के विषय में बाबाजी को देखने से अनुभव होता है। बाबाजी को हमेशा देखिये जो कोई शिष्य-सेवक, भक्त-दार्शिक, आते हैं और शंका, समाधान, वेदान्त और भक्ति-विषयक विषय में विचारणा करते हैं तो उनका समाधान अपने अमृतबाणी से करते हैं। कभी किसीको भगवच्चर्चा के बारे में उपदेश करने में ना नहीं कहते किंबहुना उनको बहुत प्रसन्नता होती है। और अन्य समय में उनका नाम जप सदा ही

चला रहता है। जैसा संत तुकाराम महाराजने कहा है—

"माझी मज झाली अनावर वाचा।
छंद या नामाचा घेतला असे॥"

(अर्थ :— संत तुकाराम महाराज कहते हैं—मेरी वाचा मेरे काबू में नहीं रही। उसने भगवन्नाम जप का छंद लिया है।)

इसी तरह बाबाजी को नामस्मरण में इतना प्रेम है कि उनकी बाणी भगवान् का नाम जपने में सतत मग्न रहती है। यहाँ तक मैं बताऊँ की मैंने खुद बाबाजी के मुख से सुनी हुई बात है कि, मुँह में एक इलायची रख लेना भी उनको अपने नामजप में रुकावट मालूम होती थी। ऐसी स्वानुभव की बातें मेरे पास उन्होंने बतायी हैं क्यों कि उन्हींकी कृपा से मुझे उनके के चरणों के सहवास में रहते हुए बहुत साल— करीब़ सोलह सतरह साल— हुए हैं और अधिक प्रेम जुड़ जाने से अपनी मन की बातें कभी कभी मुझे मार्गदर्शन के लिये कृपा कर के बताते रहते हैं। इस तरह बाबाजी का जीवन कहना है तो हमारे साधु–सन्तों-ने और धर्मग्रन्थोंने जैसे सच्चे साधक और सन्तों का वर्णन किया है और लक्षण बताये हैं उसका

प्रत्यक्ष अनुभव लेना हो तो बाबाजी का आदर्श जीवन देखने से मिलता है। बाबाजी का जीवन बोले तो जैसा श्रीमान् महोदय ग. म. नलावडे, महापौर (अध्यक्ष), पूना म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन, इन्होंने अपने अभिप्राय में लिखा है।

"ब्रह्मरस घेई काढा। जेणें पिडा वारेल।
वाचा बोलूं वेद नीति। करूं संतीं केलें तें।"

— सन्त तुकाराम महाराजजी

(अनुवादः—सन्त तुकाराम महाराज जनता को उपदेश करते हैं कि ब्रह्मरस या भगवन्नामरस-रूपी दवा लेने से संसाररूपी रोग निवारण होता है। वैसेही बाबाजी का आदर्श जीवन हमारे संसार-रूपी रोग निवारण के लिये दवा है— अर्थात् हमारे लिये संसार से तर जाने का रास्ता दिखाते रहते हैं।)

* कठिन तपाचरण *

दास सन्त ज्ञानेश्वर महाराज का चरण सेवक है और यह भावना है कि उन्होंने ही मुझ पर कृपा कर के बाबाजी के चरणों में डाले हैं। जैसा ज्ञानेश्वर महाराजजीने साधक, सिद्ध, भक्त, सन्त इनका वर्णन किया है वैसा ही

इन बातों का पूरा पूरा मूर्तिमंत स्वरूप और अनुभव बाबाजी का आदर्श जीवन देखने से आ जाता है। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण गीता के बारहवें अध्याय में कहते हैं—

" क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ "

इस श्लोक के ऊपर टीका करते हुए ज्ञानेश्वर महाराजजी लिखते हैं:—

"ताहानें ताहनचि पियावी। भूकेलिया भूकचि खावी।
अहोरात्र वावी। मवावा वारा ॥
उर्नी दिहाचें पहुडणें। निरोधाचें वेल्हावणें।
झाडासी साजणें। चालावें गा ॥
शीत वेढावें। उष्ण पांघुरावें।
वृष्टिचिया असावें। घरांआंतु ॥
किंबहुना पांडवा। हा अग्निप्रवेश नित्य नवा।
भ्रताराविण करावा। तो हा योगु ॥

(अनुवादः— " प्यास लगी तो उसीको प्राशन करके तृप्त होना पडता है, भूख लगी तो उसीको भक्षण करके समाधान करना पड़ता है और रात दिन हाथ फैला कर निराकार की प्राप्ति होने के लिये वायु को गिनना पडता है। दिन की धूप में निद्रा लेना, स्वैर इंद्रियों का निरोधरूपी उपभोग

लेना और वृक्षों से मित्रभाव धारण करके खेलना। सर्दी पहनना, धूप ओढना और बर्षा में बैठना, किंबहुना हे अर्जुन, बिना पती के सती हो कर अग्निप्रवेश करना इस प्रकार का यह योग है। ")

उपरोक्त वर्णन जैसा अनुभव बाबाजीने रामटेकड़ी के पहाड़ पर आकर जो तपस्या की है उससे मालूम होता है। बाबाजी साधारणतः सन १९२० में रामटेकड़ी पर तपस्या को बैठे। उस वक्त की इस रामटेकड़ी पहाड़ के ऊपर की परिस्थिति आप देखेंगे तो आपको ऐसा जान पडेगा कि यह पहाड़ी घोर जंगल के नाई बिच्छू, सर्पों से और काँटों से भरा हुआ निर्जन अरण्य था। (जहाँ कि आज यही स्थान प्रभु की कृपा से और बाबाजी की तप और भक्ति के प्रभाव से "वैकुण्ठ नगर जहाँ सन्त वासा" इस सन्त तुलसीदासजी के बचन के अनुसार "वैकुण्ठ भुवन" प्रती बनी है।) बाबाजीने पत्थरों की कुटियाँ या गुफा बना लेकर हवा, सर्दी और धूप को सहन करके पारमार्थिक साधन जैसे नामजप, पंचाग्निसाधन, यमनियम, ध्यान-धारणा इत्यादि योगसाधन, प्रभुप्राप्ति का लक्ष्य रखकर (जो लक्ष्य या ध्येय उनके बचपन से ही उनमें दीख पडता है) साधन किया है। इसी गुफा में बाबाजी दस-बारह साल तक रहे। केवल

महीने में एक बार पौर्णिमासी के रोज़ गुफ़ा से बाहर निकलते रहे और जनता को दर्शन दिया करते थे। जनता के आग्रह से आगे चलकर महीने में दो बार यानी पौर्णिमा और अमावास्या के रोज बाहर निकलते रहे। इसी गुफ़ा में साधन करते रहते हुए ईश्वरप्रेरणा से "निर्गुण रामायण" अनुभविक दोहें, चौपाइयों की रचना की हैं। इन दोहा और चौपाई में से (जो कि अभी अप्रकाशित है और भगवत् कृपा से वे शीघ्र ही छपाने का विचार है) इसी ग्रंथ में दो तीन सौ दोहें और चौपाइयाँ खास करके "अनुभवसिद्ध प्रकरण" में दिये गये हैं जो पढ़ने से पाठकों को बाबाजी के पारमार्थिक अधिकार, भक्ति और ज्ञान की पूर्णावस्था इन बातों का अनुभव मिलेगा। शमदम, मनोनिग्रह के विषय में मैं उनके ही बाणी से प्रकाश डालना चाहता हूँ। —

दोहा— "शारदाराम एक मन जीत ले।
राम अवतार है सोय॥"

बाबाजी अपने दोहे में बतातें हैं कि, जो पुरुष मनरूपी रावण को वश करेगा अर्थात् मन को काबू में रखेगा, वह पुरुष राम का अवतार है। रामटेकड़ी के पहाड़ी पर आनेके पहिले भी

देखो, बाबाजीने हृषीकेश, चित्रकूट, कानपुर इन स्थानों में रहकर कई दिनों तक प्रातःकाल के तीन बजे उठकर जलानुष्ठान करते रहे, कई दिनों तक तप करते स्मशान में ही रहते रहे।

बाबाजी की ज्ञान या अध्यात्मिक दृष्टि उनके ही दोहे से मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ।

दोहा—" सत चित आनंद रूप तू
अज अविनाशी आह।
ज्यों स्पटिक पुष्प संग
लाली भासत ताह॥ "

विशेष यह है कि इन योग के कठिन साधनों का आचरण करते हुए भक्ति के अंग जो हैं वह भी बाबाजी में दिखाई देते हैं जैसे कि प्रभु में संपूर्ण विश्वास, प्रभुप्रेम, प्रभु की भक्ति इन बातों का अनुभव उन्हींके निम्नलिखित दोहे से पता लगता है।

दोहा—

" भक्तन के आप सदा सहाही। भक्त तुम्हारे आस॥
तारो चाहे भव डारो। तुम्हरा है विश्वास॥
तुम्हरे द्वार पर पडा रहो। याही निश्चय मनमंत।
शारदाराम को तू एक ही। को लख तुम्हरा अंत॥

उपरोक्त बाबाजी के दोहों से उनके प्रभु में संपूर्ण विश्वास, प्रभुप्रेम, प्रभु की निःसीम भक्ति इन दैवी गुणों का पता लगता है। यहाँ तक मैं कहूँगा कि प्रभु में संपूर्ण विश्वास ये तो उनका ब्रीद वाक्य है। सोलह सतरह साल से मैं अनुभव लेता आया हूँ कि बाबाजी के विशेष उपकार जो हैं वह यह कि सेवक-भक्त जो उनके दर्शन के लिये आते जाते हैं उनमें प्रभु पर का विश्वास अपने उपदेश से बढ़ाते हैं, परमार्थ का रास्ता खुला कर देते हैं और संसार में जो सुख दुःख के प्रसंग आते हैं उनको समभाव से सहन करना यह मन की तैयारी करा देते हैं।

जैसे संत ज्ञानेश्वर महाराजजी अपनी "ज्ञानेश्वरी" में सच्ची अहिंसा का वर्णन करते हुए बताते हैं कि, जिसमें सच्ची अहिंसा का असर हुआ है उसके सारी शारीरिक मानसिक क्रियाओं में से अहिंसा प्रतीत होती है। वैसे ही बाबाजी के विषय में दिखाई देता है। हम लोग "ज्ञानेश्वरी" में वर्णन सुनते हैं पर हमारा ऐसा भाग्य है कि उसी वर्णन के अनुसार उन लक्षणों को सगुणरूप से बाबाजी के आदर्श जीवन और दर्शन से हमें अनुभव होता रहा है। सचमुच बाबाजी की कृपा

से भरी हुई दृष्टि, उनके हात पैर के क्रियाओं में भरी हुई अहिंसा, मन, वाणी में प्रतीत होनेवाली अहिंसा और शुचित्व इन गुणों से दर्शकों को अति प्रसन्नता होती है। शुचित्व पद का वर्णन करते हुए ज्ञानेश्वर महाराजजी कहते हैं —

" बाहेरी कर्मे क्षाळला । भीतरीं ज्ञानें उजळला ॥
इहीं दोहीं परी आला । पाखाळा एका ॥ "

(अर्थः— कर्मों के योग में जिसकी बाह्य शुद्धि हो कर ज्ञान के योग से जिसकी आंतरिक शुद्धि हो चुकी है, इन दोनों प्रकार से जो शुद्ध हुआ है उसे पहचानो।)

इसी तरह बाबाजी अपने नित्य नियमों में इतने रत रहते हैं कि कभी इनमें फर्क़ नहीं पड़ता। ज्ञानेश्वर महाराजने अपने हरीपाठ में बताया है—

" नित्य नेम नामी ते नर दुर्लभ ।
लक्ष्मीवल्लभ तयाजवळी ॥ "

इस बचन के अनुसार बाबाजी के तरफ़ दृष्टि डालेंगे तो ऐसा ही दिखायी देता है। बाबाजी नामजप और नित्य नियम में मग्न होने के कारण उनका शरीर पवित्र, मन पवित्र, अंतःकरण पवित्र है। जैसे कि संत तुकाराम महाराजने कहा है—

"पवित्र तो देह । वाणी पुण्यवंत ॥
जो वदे अच्युत । सर्व काळ ॥"

(अर्थात्– जो पुरुष भगवान् का नाम सदा जपता है उसका शरीर, वाणी पुण्यवंत अर्थात् पवित्र होता है।)

मैं तो कई साल के अनुभव से कहूँगा कि बाबाजी सतत नामजप में और प्रभुचिंतन में सदा तल्लीन रहते हैं। बाबाजी एक पवित्र आत्मा, प्रभु के समीप पहुँचे हुए, किंबहुना प्रभुरूप बनकर प्रभु की अनन्य भक्ति, अभेद भक्ति या जिसे ज्ञानोत्तर सहज भक्ति कहते हैं इन लक्षणों से युक्त ऐसे लगते हैं। जैसा ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है—

"मिळोनि मिळतचि असे। समुद्रीं गंगाजळ जैसें ॥
मी होऊनि मज तैसें। सर्वस्वें भजती ॥

(अर्थ—जैसा गंगाजी एक दफे समुद्र में मिले पश्चात् भी उसीमें मिली रहती है, वैसा मेरा ऐक्य प्राप्त हुआ है तथापि जो सर्व प्रकार पूर्ण भाव से मुझे ही भजता है।)

इसी प्रकार की श्रेष्ठ भक्ति बाबाजी में दिखाई देती है। यहाँतक कि " बाबा जानीये सगुण

मूर्ति। श्रीहरी प्रभु की।" ऐसा कहने से अति-शयोक्ति नहीं होगी। क्यों कि जैसा ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है—

" परि तयापासी पांडवा। मी हारपला गिंवसावा॥
जेथ नामघोष बरवा। करिती माझा॥"

(अर्थ—परंतु हे अर्जुन, यद्यपि मैं कहीं न मिला तथापि जो मेरे नाम को सदैव धारण करते हैं उनके पास मिलता ही हूँ।) इसीके अनुसार सदैव नामजप से अंतःकरण विशेष शुद्ध होने के कारण प्रभु का दर्शन बाबाजी के दर्शन से मिलता है ऐसा मुझे लगता है और यह बात जिन लोगोंने बाबाजी के दर्शन और सत्संग किये हैं, और उनके सहवास में रहे हैं उनका भी यही अनुभव होगा ऐसी मेरी भावना है। श्रीमद्भागवत् में कहा है—

" दर्शनात् एव साधवः।"

साधु के दर्शन मात्र से ही चित्त को प्रसन्नता लगती है। बाबाजी की प्रसन्न मुद्रा, शांत चित्त, विशाल भाल, कृपादृष्टि से भरे हुए नेत्र, भगवान् शंकरजी के नाई सुंदर जटा, विभूति चर्चित तपो-मय देह कांति इसीके कारण हर एक दर्शकगण का अंतःकरण समाधान और शांति पाता है। जो दर्शन को आते हैं उनको वहाँसे उठने की इच्छा

होती ही नहीं इतना समाधान और शान्ति उनके सान्निध्य में लगती है।

तात्पर्य ग्रंथों में जैसा वर्णन किया है वैसे ही भगवान् में संपूर्ण विश्वास, भगवान् पर हर हालात में अटूट श्रद्धा, प्रभुचिंतन, प्रभुभक्ति में निष्काम प्रेम, प्रभुभक्ति में समरस होना इन गुणों से युक्त ऐसी विभूति का दर्शन चाहिये तो बाबाजी का ही दर्शन है। संत और भक्तों में सबसे बड़ा चमत्कार यही है कि इन दैवी गुणों का पूर्ण रूप से विकास होना, न कि भविष्य काल या भूतकाल की बातें कथन करना या अन्य कोई चमत्कार दिखाना। हमारी भलाई करनेवाले मेरे समझ में सच्चे संत और भक्त होते हैं। क्यों कि भगवान् भक्त और संतों के आधीन हैं, उनके बचन की पूर्ति करते हैं। संतों के आशीर्वाद से ही सेवकों का कल्याण होता है। संतों का या भक्तों का संकल्प शुद्ध होता है। संत तुकाराम महाराजने कहा है —

"सत्य संकल्पाचा दाता नारायण।"

(सत्यसंकल्प की पूर्ति करनेवाला भगवान् होता है।) वैसे ही गुरू नानकदेव कहते हैं—

"मेरी बांधी भगत छुडावे।
बांधे भगत न छुटे मोहे॥"

इन बातों से अनुभव होता है कि सन्त और भक्त ही हमारे बुरे प्रारब्ध को सुधार कर कल्याण के मार्ग पर ला कर छोडते हैं और हमारी भलाई कर देते हैं। इसलिये हमारा परम कर्तव्य है कि बाबाजी जैसे सन्तों को शरण जा कर अपना लोक–परलोक कल्याण साध्य करना। बाबाजी में विशेषता यह है कि उनमें समता है। बाबाजी कोई सांप्रदाय या भेष या पंथ हो, उन सभी सांप्रदाय या पंथों को मानते हैं। कभी भी नीचे ऊंचे भेदभाव देखते नहीं। हमेशा बताते हैं कि सारे पंथ या सांप्रदाय उसी प्रभु के समीप ले जाने वाले हैं। कोई हालत में हो, कोई भेष या सांप्रदाय या पंथ के हो, प्रभु को नहीं भूलना यही बड़ा और मुख्य पंथ है, इस बात पर विशेष ध्यान देते हैं।

"महाजनो येन गतः स पंथाः।"

अर्थात् महाजन जिस रास्ते से जाते हैं वही सामान्य जनता का मार्ग होता है। इसी तरह बाबाजी अपनी गुफा से बाहर निकल कर मन्दिरों का दर्शन वगैरा नित्य नियम से करते रहते हैं। महापुरुषों के साथ नम्रतापूर्वक बोलते चालते, शास्त्र मर्यादा का संपूर्ण पालन करके सेवक लोगों को आदर्श हो कर रहते हैं।

* बाबाजी का मार्गदर्शन *

"काय सांगों आतां संतांचे उपकार ॥
मज निरंतर जागविती ।
काय द्यावें त्यासीं व्हावें उतराई ।
ठेवितां हा पायीं जीव थोडा ॥
सहज बोलणें हित उपदेश ।
करूनि सायास शिकविती ॥
तुका म्हणे वत्स धेनुवेचे चित्तीं ।
तैसे मज येती सांभाळीत ॥"

इस सन्त तुकाराम महाराज के अभंग के अनुसार ही बाबाजी अपने सेवकों को योग्य पारमार्थिक मार्गदर्शन करते हैं। इस ग्रंथ के अभिप्राय में लिखते हुए हमारे महाराष्ट्र के लोकप्रिय और प्रसिद्ध सन्त सोनोपंत दांडेकरजीने लिखा है, "धूना साधन, पंचाग्निसाधन, शीतोष्णक्रिया साधन, प्राणायामादि साधन करते हुए साथ ही साथ वहाँ रह कर जनता की पारमार्थिक मार्गदर्शन करने की सेवा करते करते इनका काल व्यतीत हो रहा है।"

बाबाजी के सबसे बडे उपकार यह है कि, बाबाजी हमेशा अपने सेवकों को हरएक मनुष्य का जो परम कर्तव्य है, जो कि संसार में रहते हुए प्रभु को नहीं भूलना इस बात की हमेशा जागृती देते हैं। अपने उपदेशामृत से प्रभु के तरफ़ ले जाते हैं और सेवकों का लोक-परलोक दोनों कल्याण कर देते हैं। संसार के सुख दुःखों में समता देखना, प्रभु को हर हालात में नहीं भूलना, दैवी गुणों का विकास करना, इन गुणों का विकास सेवकों में करा देते हैं। यही उनके हमारे ऊपर सबसे बडे उपकार हैं। लौकिक दृष्टि से चमत्कार या भलाई, जैसे कि पुत्रप्राप्ति, धनप्राप्ति, अधिकारप्राप्ति और संसार दृष्टि से सुख-समृद्धि के विषय में उनके विभूति चमत्कारों का अनुभव अनेक लोगोंने पाये हैं। उनके आशीर्वाद से अनेक लोगों की भलाई हुई है और वैसे ही पारमार्थिक कल्याण। यही उनका सबसे बडा दैवी चमत्कार है यह मेरी भावना है।

तात्पर्य, जैसा महामण्डलेश्वर वेददर्शनाचार्य स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजीने इस ग्रन्थ की अपनी प्रस्तावना में लिखा है— " बाबाजी का आदर्श

जीवन इस कलीकाल की अन्धेरी रात में, प्रकाश स्तम्भ बन कर, जनता का मुक्तिमार्ग प्रकाशित करे।" स्वामीजी के इस अमोलिक उपदेश के अनुसार पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि बाबाजी का दर्शन, सत्संग करके अपना लोक-परलोक का कल्याण साध्य करे।

" जागृति "

(लेखक :—राधेश्याम बडोलाशास्त्री)

मैं पूना में संन १९४४ से स्थित हूँ और उसी साल से ही श्रीमान् बाबाजी के शुभदर्शनों में उपस्थित होकर अपनेको कृतार्थ करता रहता हूँ। पहिले पहिले तो मैं सिर्फ अपनी जटिल समस्याएँ—धर्मशास्त्रों की अनेक शंकाएँ—लेकर बाबाजी के पास जाता रहा, प्रायः शंकाएँ वही होती थी जिनका उत्तर मुझे नहीं आता था। अतः जिज्ञासु होकर बाबाजी की शरण में जाता था।

मेरी शंकाओं का समाधान श्रीमान् बाबाजी बड़ी ही शान्ति और प्रसन्न चित्त से मुझे समझाया करते थे। बहुत समय मैंने यह भी देखा है कि अनाड़ी, नास्तिक लोग भी बाबाजी से कुछ पूछ बैठते थे तो बाबाजी उनकी शंकाएँ अनेक लौकिक वैदिक शास्त्रों के ढंग से दूर किया करते थे। मुझे तो पूर्ण रूप से यह अनुभव था कि बाबाजी तमाम सम्प्रदायों के धर्मग्रन्थ और वेद-वेदान्तादि उपनिषदों को पूर्ण पढ़े हुए हैं। क्यों कि किसी भी प्रकार का समाधान वे अनेक शास्त्रों के प्रमाण से किया करते थे।

परन्तु जब मैंने बाबाजी की जीवनी की खोज की और लिखना आरम्भ किया तो मुझे आश्चर्य हुआ कि बाबाजीने न किसी पाठशाला की धूल चाटी है और न किसी मास्टर साहब से ही श्रेणी पास की है, और न किसी डिग्री का सेहरा आपने पहिना है।

इस प्रसंग से मेरी श्रद्धा तो बाबाजी पर आजीवन अमर रहेगी। सन १९४६ तक तो मैं कभी कभी ही श्रीमान्‌जी के शुभदर्शनों में जाता था। किन्तु सन ४६ में हमारी सत्संग मण्डली की वृद्ध महिलाएँ मेरे साथ श्रीमान् बाबाजी के दर्शनों को चली। रास्ते में घण्टों खड़े रहकर बस (मोटर) की प्रतीक्षा में कई बसें भरी हुई ही निकलती गयीं। अन्त में हम शाम को पैदल ही बाबाजी के पास पहुँचे। आप तुरन्त बोले कि "क्यों, गाड़ी नहीं मिली? बड़ी देर प्रतीक्षा करनी पडी है?" हम तो इस अनायास बात से आश्चर्य करने लगे किन्तु हमारी श्रद्धा और भी श्रीचरणों में बढ़ गयी।

इसी प्रकार एक बार कैप्टन सोहनसिंह सोडीजी और मेजर नेत्रवल्लभ जोशीजी के साथ निश्चय हुआ कि आज बाबाजी के दर्शनों में साथ ही बारह बजे चलेंगे।

मैं उनकी प्रतीक्षा करते हुए साढ़े बारह बजे रामटेकड़ी पहुँच गया। ये दोनोंजन तो सरकारी कार्यवश नहीं पहुँच पाये। बाबाजी अनायास मुझसे पूछ बैठे कि, "मेजर साहब और सोडी साहब अभी नहीं आये?"

मुझे तो पहिले से ही विश्वास था परन्तु इन आत्मज्ञान की घटनाओं से मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता था। ऐसी ही बहुत-सी घटनाएँ हैं जिनका वर्णन अधिक नहीं किया जा रहा है।

जब मैं श्रीमान् बाबाजी की जीवनी लिखता रहा, एक दिन शाम को मुझे बाबाजी के पास अवश्य ही जाना था। परन्तु मेरी साइकिल पँक्चर थी। हताश होकर न जा सका। मैंने कहा, "अच्छा, बाबाजी की इच्छा", बस, रात के साढ़े आठ बजे बाबाजीने ध्यान किया तो समझ गये कि पण्डितजी क्यों नहीं आये। तुरन्त ही श्री गुरुदयालसिंहजी को मोटरसाइकिल से दौडाया कि पण्डितजी को लेते आओ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, की केन्द्र-व्यवस्था अपने सेन्टर की स्कूल में मैं ही कुछ वर्षों से करता हूँ। सितम्बर १९५३ में होने वाली परीक्षाओं में बैठने वाले विद्यार्थियों के आवेदन-पत्र

मयशुल्क नियत समय से २५ दिन ही पहिले मेरे पास आ चुके थे। कुछ कार्याधिक्य से भूल से मुझे निश्चित तिथी की अपेक्षा २६ जुलाई, आवेदन पत्र वर्धा पहुँचने की अन्तिम तिथी ज्ञात रही। अतः १० जुलाई से २० जुलाई १९५३ तक १० दिन की छुट्टी लेकर बाबाजी की जीवनी (यह ग्रन्थ) लिखने के लिये रामटेकड़ी ही चला गया। मैं तो निश्चित साधा कि मुझे आवेदन पत्र २६ जुलाई तक वर्धा पहुँचाने हैं। २३ तारीख़ को भेजूँगा तो २६ तारीख़ तक पहुँच ही जायेंगे। इसी निश्चिन्तता में मैं रामटेकड़ी पर ग्रन्थ लिखने की पूर्ति करने लगा। ता. १६ को एक बजे दुपहर मैं श्रीमान् बाबाजी के दर्शनार्थ बैठा ही था कि महाराज बोले, "आज घर नहीं जाओगे?" मैंने कहा, "महाराज, अभी तो मुझे २० ता. को हाजिरी देनी है।" परन्तु अन्तर्यामी बाबाजीने मुझे तुरन्त ही घर पर जाने की आज्ञा ही दी।

मैं घर पर आया ही था कि पता चला आवेदन पत्र २० ता. तक वर्धा पहुँचने चाहिये। मैंने कागजात देखें जो कि मैं २६ ता. का विचार किये बैठा था, देखा तो २० ता. ही निश्चित थी। यह मेरी भूल नहीं थी अपितु सुस्तीसी थी, जिसे श्रीमान् बाबाजीने अन्तरात्मा से जान लिया था

और मुझे "अपने कर्तव्य पर सुस्ती या भूल न हो" ऐसा चमत्कारिक दृश्य मुझे दिखाया।

जब मैंने ज़ाकर बाबाजी से कहा तो वे मुस्करा कर बोले, "गुरु महाराज भला ही करते हैं।"

एवं श्रीमान् बाबाजी की धुनी की राख के महत्त्वपूर्ण चमत्कार तो मेरे सामने कई बार दिखाई दिये। जिससे कि मैंने एक कविता "बाबाजी की राख" पर बनाई है।

"सत्संग की महिमा"

(लेखकः—शिवराम शर्मा)

सिद्धजी सर्वोपसायोग्य सकल गुणनिधान परम पूज्य महाराज सद्गुरु बाबा शारदारामजी के विषय में अर्थात् उनके स्वरूप, गुणप्रभाव, आदेश (अकथप्रिय सत्य अमृत उपदेश) और लीलाओं का वर्णन इन निर्जीव शब्दों के द्वारा अपनी तुच्छ बुद्धि से लेख में लाना कठिन और असम्भव समझता हूँ। फिर भी इन्हीं श्रीमहाराजश्रीजी की प्रयत्न की हुई शक्ति और ज्ञान के आधार पर श्रद्धालु भक्तों

की प्रसन्नता के लिये अपने टूटे फूटे शब्दों में लिखने का प्रयास करके भक्तसमाज की सेवार्थ समर्पित करने की चेष्टा करता हूँ।

श्रीमहाराजश्रीजी के दर्शन पहले पहल १९३२ में ग्रीष्म ऋतु के अंत में एक भक्त (जमादार गाज़ीराम) के घर पर रावलपिंडी में हुए थे। आपके दर्शनों से आकर्षित और उपदेशों से कौन प्रभावित नहीं होगा! अर्थात् महाराजश्री के दर्शन और सम्पर्क से मेरी आनन्द, शान्ति और जिज्ञासा बढ़ी।

महाराजश्रीजी की दिनचर्या में यम-नियम का पालन, परम पुनीत आचरण, महान् सत्यश्रेष्ठ विचार, सात्त्विक नियमित आहार, सत्य-प्रिय कल्याणकारी व्यवहार, इनके आदर्श और महान् जीवन में सत्य, अहिंसा, प्रेम, जप, तपस्या, संयम, त्याग, अभ्यास और परोपकार, जप, स्वाध्याय, दया और क्षमा आदि धर्मों के पालन करने के प्रत्यक्ष लक्षण दृष्टि गोचर होते रहे अथवा धर्म, भक्ति, योगज्ञान, सुकर्म, उपासना में तल्लीन जीवन व्यतीत होता रहा। इनकी आशीर्वाद चारों पदार्थों के देनेवाली है।

महाराजश्री के फिर दर्शन १९४०–१९४४ में हुए जब आप पूना रामटेकड़ी परम पुनीत

स्थान पर कठिन तपस्या में लवलीन थे। दर्शकों की तीव्र इच्छा और प्रार्थना पर ही कभी कभी किसी दिन ही दर्शन दिया करते थे। आपके दर्शनों और उपदेशों से दर्शकों और सत्संगियों का ईश्वर विश्वास, प्रभु भक्ति निष्काम भाव से कर्तव्य-पालन, दैवी सम्पत्ति का ग्रहण और आसुरी सम्पत्ति का त्याग की भावनाएँ उत्पन्न होती रहीं। श्रद्धा, विश्वास, भक्ति तो महाराजश्री के सम्पर्क वालों को शीघ्र ही प्राप्त होती है। किसीने तब कहा है।—

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थः सद्यः साधोः समागमः॥

(अर्थात्ः—महात्माओं के दर्शनों से तुरन्त ही लाभ होता है भले तीर्थ का फल देर में मिले। जैसे पारस लोहे को सोना बना देता है, उसी प्रकार सन्तजन अपनी संगति से लोहेरूपी अज्ञानी मनुष्यों को मुक्ति तक दिला देते हैं। सन्तों की महिमा ही अपार है।

महाराजश्री के दर्शन १९४९ से अबतक प्राप्त हैं। उनकी दया दृष्टि और कृपा से सत्संग मिलता रहता है। जिससे जीवन को ईश्वरप्राप्ति का ध्येय तथा लोक परलोक को सफल बना कर प्रभु प्राप्ति के लिये ज्ञान, उत्साह प्राप्त होता रहता है। जीवन की कठिनाइयों तथा अन्य

समस्याओं का अन्त होता रहता है और महान् आदेशों की प्राप्ति जीवन को सफल बनाने के लिये महाराजश्री के दर्शन, भाषण और कृपा से सहज ही प्राप्त होती रहती है।

महाराजश्री के मुखारविन्द से प्राप्त कुछ सतसंग के फल श्रद्धालु सज्जनों के लिए टिप्पणी मात्र मैं यहाँ पर लिखता हूँ। आशा है भक्त समाज को इससे बहुत कुछ लाभ होगा।

मनुष्य तन बड़े भाग्य से मिलता है इसलिये संसार में जिससे जैसा सम्बन्ध हो वैसा ही मर्यादा, न्याय, प्रेम, सत्य, सेवा, उपकार तथा निष्काम भाव से कर्तव्य पालन करना चाहिये। शुभ कर्म उपासना ज्ञान अथवा धर्म पालन, भक्ति भाव, अष्टाङ्ग योग, जप, दान, स्वाध्याय आदि से श्रेय प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। जीवन को सफल और आदर्श बनाना ही सार है वरना पशु और मानव में कोई विशेष अन्तर नहीं।

कर्मानुसार ईश्वर कृपा से यदि कोढ़ी (कुष्टी) अपाहिज, पागल, अधम (नीच), दुःखी जीवन न मिलकर उत्तम स्वास्थ्य, उच्च कुल, बल, बुद्धि का विकास, सुख, शान्ति, तो वैराग्य के अभ्यास द्वारा ईश्वर शरणागति ही ८४ लाख के चक्र से

मुक्ति दिला सकती है। सत्य, सात्त्विक आचार, विचार, आहार, व्यौहार और श्रद्धा, विश्वास, भक्ति भाव से जप, तप, स्वाध्याय, सत्संग आदि दैवी सम्पत्ति का संग्रह बढ़ाना चाहिये; जिसके द्वारा मनुष्य सांसारिक बुरी वासनाओं को छोड़ कर निष्काम योग का अभ्यासी बन कर मुक्ति प्राप्त करता है।

यह चंचल क्षणिक जीवन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, माया, ममता, व्याधि, दुःख, दोष और विषय वासना, आलस्य से घिरा हुआ है। इसकी मुक्ति के लिये शरीर साधना की कलाओं को जान कर मन को वश में कर इन्द्रिय संयम से ध्यान धारणा जप द्वारा प्रभुचिन्तन करना चाहिये।

"काम करते रहो, नाम जपते रहो।"

नारायणी बुद्धि से सब प्राणियों के शरीर को भगवान् का मन्दिर जान कर आत्मस्वरूप भगवान् के प्राणीमात्र में दर्शन करते रहो, जीवन धन्य हो जायेगा।

जीव कौन है? माया क्या है? अथवा मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ? कहाँ जाऊँ? लोक

परलोक कैसे सफल बना सकूँगा ? आदि जानने की चेष्टा सन्तों के द्वारा अवश्य करनी चाहिये।

विस्तार रूप से शंकाओं का समाधान तो महाराजश्री के उपदेशों से ही हो सकता है। अवतार और सन्त तो संसार में पाप को मिटाने और धर्म की स्थापना करने के लिये ही आते हैं। संतों के नाम लेकर हम भवसागर तर सकते हैं। महाराजश्रीने तो रामटेकड़ी को तपोबन से मुक्ति धाम बना दिया है। भक्त चाहें तो वहीं दर्शन सत्संग करके जीवन सफल बना सकते हैं।

" तीर्थों का तीर्थ "

(लेखिका:—श्रीमती अनुसयादेवी अजितकुमार, B. A. (Hons.) पूना)

पूर्वजन्म के पुण्य से ही बाबाजी जैसे महान् तपस्वी हमें गुरू मिले। आठों पहर सुख वैभव की चिंता से डूबा हुआ मन जैसे ही रामटेकड़ी चढ़ने लगता है तो एक एक कदम पर एक एक चिन्ता छोड़ता जाता है और कोई अलौकिक आनन्द से प्रफुल्लित होता जाता है। ऊपर पहुँचने पर यदि आँखें बन्द कर लें और अगर आरती के मधुर घंटा, शंख कानों में पड़ जाय तब तो ऐसा प्रतीत होता है कि बद्रीकेदार पहुँच गये या साक्षात् कैलाश। बाबाजी का विशाल ललाट, खुली जटा,

भस्म विलेपित अंग और प्रसन्न मुखमुद्रा देख कर दिल इतना भक्तिभाव से भर जाता है मानो स्वयं शंकर भगवान् ही हमारे सामने मुस्करा रहे हैं। दूर दूर के तीर्थों पर घूम कर भगवान् को प्रसन्न करने की इच्छा कभी नहीं होती। इन तीर्थों का तीर्थ छोड़ कर और कहीं जाना अच्छा नहीं लगता। बद्रीकेदार, रामेश्वर, एकलिंगजी सभी के दर्शन उनकी प्रसन्न मधुर सूरत से हो जाते हैं। उनके " श्रीशारदाराम " नाम में सरस्वती और श्रीराम की सुन्दर योग है। उनमें सरस्वती का ब्राह्म तेज और श्रीराम की सौम्यता, सत्यनिष्ठा और सब जीवों पर प्रेम भाव से देखने की विशालता है।

दूसरी रीति से देखा जाय तो 'शारदा' यानी सरस्वती यानी ज्ञान ही जिनका आसरा है जो ज्ञान के उपासक और खुद ज्ञानी हैं वे ही हमारे बाबाजी हैं। जो बड़े बड़े शब्दों के आडंबर को समझ नहीं सकते ऐसे भोले भाले हृदय के लिये भी उनका ज्ञान भंडार सदा खुला रहता है। उनकी बानी बहुत ही सरल और मधुर है। कठिन तत्त्व के कड़े अमृत को उनकी बानी द्वारा हम बहुत ही आसानी से पी सकते हैं। कठिन और गहरे शब्दों का उपयोग किये बिना ही वे

मनुष्यजन्म की उत्तमता और जीवन का सार हमें समझा रहे हैं । सिर्फ़ वही नहीं अपने प्रिय शिष्यों के जीवन के छोटे छोटे कदमों को आप बड़े प्रेम से देखते हैं । शिष्यों की खुशी में खुश रहते हैं और उनकी कठनाइयों को आप आसानी से सुलझा देते हैं । गुरुदेव के गुणगान के लिए मैं बहुत अल्प हूँ । उनकी कृपा से इतना भी कर सकी यह मेरे बड़े भाग्य हैं । उनके श्रीचरणों में मेरा बार बार नमस्कार हो ।

" प्रसाद का फल "

(लेखक :—भीमनदासजी)

पूर्व जन्मों के संस्कारों से मुझे रामटेकड़ी बाबाजी के दर्शनों से अपार शान्ति प्राप्त हुई । और मेरी सामाजिक परिस्थितियाँ गुरू कृपा से सुखमय होती रहीं ।

प्रमुख घटना मैं यहाँपर प्रगट करता हूँ । आशा है, मेरी ही तरह पाठकों का भी समय समय पर कल्याण बाबाजी की कृपा से होता रहेगा ।

वह घटना इस प्रकार है कि, मेरे घर में कोई सन्तान नहीं थी। महाराज के दर्शनों में मैं कभी कभी तो जाया ही करता था। एक दिन बाबाजी के दर्शनों से बाहर निकला कि महाराजश्रीने मुझे बुलाया और एक फल प्रसाद मुझे दिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे दिल की बात बाबाजी समझ गये इसीलिए उन्होंने यह फल दिया। बस, मैंने वह फल अपनी धर्मपत्नी को दे दिया। सचमुच नौवें महीने में मेरे घर लडका हो गया। मैं खुशी खुशी में रामटेकड़ी बाबाजी के चरणों में पहुँचा।
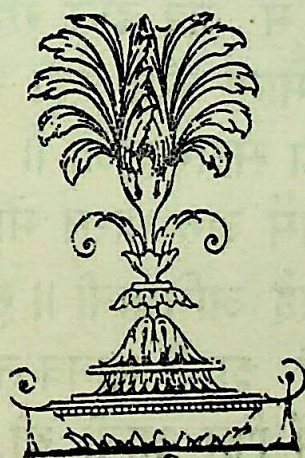
"बाबाजी की राख"

(लेखकः श्री. राधेश्याम बडोलाशास्त्री, हिं. विशारद,
साहित्यरत्न, धर्मोपदेशक, A. M. C., सेन्टर, पूना)

सुनो सुनाऊँ एक कहानी,
हुई नहीं जो अभी पुरानी ।
" उदासीनगढ़ " निर्माता की
अकथ कहानी है बानी ॥ सुनो ॥ १ ॥
दशवीं सदी से भारत भर में,
यवनों का जब राज हुआ ।
हिन्दु जाति के ऊपर था,
जुल्मों का भरमार रहा ॥
दया-धर्म का बेड़ा डगमग,
भारत में जब डोल रहा ।
भारत माता काँप रही थी,
बीरों का संहार हुआ ॥
देश-धर्म अरु भारत माँ पर,
लड़ते रहे अभिमानी ॥ सुनो ॥ २ ॥
प्रभु की शक्ती मानव तन में,
भारत में फिर आनी थी,

सन्त जनों की सत्संगत से,
भारत माँ हर्षानी थी ।
गुरु " नानकजी " के घर में फिर,
जगमग ज्योति जगानी थी ।
एक अनोखे बालक से तब,
पुत्र खुशी दिखलानी थी ।
" श्रीचन्द्र " नाम धराये जिनका
सत्गुरू ब्रह्म के ज्ञानी ॥ सुनो ॥ ३ ॥
श्रीचन्द्र मुनिजी इस कलियुग में,
श्रीशंकर के अवतार हुये ।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीशों –
कें वे ही विस्तार हुये ॥
देश धर्म के उद्धारक अरु,
सन्तन के आधार हुये ।
सत्य सनातन ॐ ईश्वर के,
जप तप में साकार हुये ॥
मानव तन में गुरु धारण में
रहे न पीछे ज्ञानी ॥ सुनो ॥ ४ ॥

हंसावतार श्रीसनक सनन्दन,
सनातन सनत्कुमार हुये।
फिर नारद, कपिल, दुर्वासा, पराशर,
जमदग्नि, परशुराम हुये।
विश्वामित्र, कुशिक, आदि भी,
उदासीन ऋषिराज हुये।
बत्स मुनि हेमाद्रि अदि अरु,
श्रीपद्म, रमेश, दिनेश हुये।
सुमेरु दास, अरु भाष्य मुनि,
फिर अतीतमुनि विज्ञानी॥ सुनो॥ ९ ॥
श्रीअतीत मुनि फिर वेद मुनिजी,
फिर अविनाशी राम हुये।
तिन के शिष्य "श्रीचन्द्राचार्य" जी,
उदासीन आसीन हुये।
इसीतरह फिर आगे बढ़कर,
शिष्यों के भी शिष्य हुये।
परम्परा फिर बढ़ी उन्हीं की
उदासीन बहु सन्त हुये।

सगुण–निर्गुण, सत् ब्रह्म की महिमा
निर्गुण में जिन जानी ॥ सुनो ॥ ६ ॥
शरयू शोभित अवधपुरी है,
सूर्य–वंश की रजधानी ।
बड़े बड़े अवतार हुये तहाँ,
भक्तों की मन मानी ।
श्री " माधोराम " उदासीनजीने,
प्रकाश करी तहाँ गुरु बानी ।
तिनके शिष्य श्री " सुध्दाराम " जी,
महा तपस्वी वरदानी ॥
फिर पूज्यपाद श्री " मौजीराम " जी
सत्गुरु आतम ज्ञानी ॥ सुनो ॥ ७ ॥
श्री " मौजीराम " महा मुनिजी के,
" श्रीशारदारामजी " शिष्य हुये ।
तन–मन–धन अरु सभी तरह जो–
गुरुचरणों में लीन हुये ॥
इक ॐकार परब्रह्म की,
भक्ती में तल्लीन हुये ।

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर,
तीर्थों का प्रस्थान किये ॥
दक्षिण दिशा पूना नगरि में
"रामटेकड़ी" मनमानी ॥ सुनो ॥ ८ ॥
त्रेता में जब रामचन्द्रजी,
इसी जगह पर आये थे।
कलियुग में फिर "समर्थ गुरु" जी,
राम के दर्शन पाये थे ॥
वर्ष हजारों बीतने पर –
फिर यहाँ भाग्य सराहे थे।
उदासीन पंथ परम तपस्वी –
श्री "शारदाराम" जी वहाँ आये थे॥
आत्म तत्त्व को पाया जिनने
अगम-निगम के ज्ञानी ॥ सुनो ॥ ९ ॥
सम्वत् उन्निससौ सतहत्तर में,
आसीन हुये महाराज वहाँ।
कठिन तपस्या साधन कीन्ही,
विचित्र रचना रची वहाँ ॥
"उदासीनगढ़" नाम धराया,

सन्तों का आधार जहाँ ॥
पञ्चनाम देवों के मन्दिर,
अरु श्रीचन्द्रजी का स्थान वहाँ ॥
बम्, भोले की जटा सटा में,
बहती है जलधार वहाँ ।
प्रभु की माया गुरु की छाया,
कृपा सहित उमगानी ॥ सुनो ॥ १० ॥
गोमाताओं के गोरस से,
प्रसाद् सभी सन्त पाते हैं ।
जपतप साधन अरु सत्संगत से,
कृतारथ हो जाते हैं ।
सभी धर्म अरू सभी वर्ण के,
दर्शक गण सब आते हैं ।
भीड़ लगी रहती है निशिदिन,
इक आते इक जाते हैं ॥
दर्शन लाभ कृतारथ हो कर
कंठ करें गुरु बानी ॥ सुनो ॥ ११ ॥
बाबाजी की गुफा पुरानी,
उसमें जपतप करते हैं ।

धुनी बभूत रमाये तन में,
हरि का सुमिरन करते हैं।
दीन, दुःखी अरु पापी जन का
कष्ट ताप सब हरते हैं।
दिव्य मूर्ति वे करुणा सागर,
'करुणामय' में रमते हैं॥
सन्त समागम हरिचर्चा में
कहते अमृत बानी॥ सुनो॥ १२॥
सत्गुरु बाबा भोले हमारे,
सब पर कृपा करते हैं।
चुंगटी एक "बभूती" देकर
कष्ट सभी का हरते हैं॥
इसी बभूती को जो कोई,
जिसी भाव से लेते हैं।
उसी भाव से सचमुच में वे,
मनवाँच्छित फल पाते हैं।
रोग-शोक अरु आधि-व्याधि से,
छूटें सब ही प्राणी॥ सुनो॥ १३॥
पुण्यभूमि वह कोटि तीर्थ की,

जहाँ उदासी रहते हैं ।
सनकादि उदासी मुनियों से,
यह परम्परा चलि आती है ।
धन्य जन्म जगतीतल उसका,
जो इस पथ में आते हैं ।
जन्म जन्म के पाप नशाकर,
भवसागर तर जाते हैं ॥
बाबाजी की जय हो जिनकी,
लिखी अकथ कहानी ॥ सुनो ॥ १४ ॥
गुरुदेव आपके चरणों में
यह पत्र–पुष्प चढ़ाता हूँ ॥
'कविता' भेंट चढ़ाने को मैं,
आगे हाथ बढ़ाता हूँ ॥

भजन

सेवा तुम्हारी करूँ मैं करूँ ।
गुरुचरणों में मैं चित्त लाऊँ ॥ ध्रु० ॥

भावभक्ति से गीत तुम्हारे ।
गाऊँ अवधबिहारी ॥
उदासीन पथ के हे पूरण ।
राखो लाज हमारी ॥ १ ॥
पूना के हे पुण्य भाग्य है ।
बाबा आप पधारे ।
रामटेकड़ी के धन्य भाग्य है ।
धन्य धन्य भाग्य हमारे ॥ २ ॥
शान्त तुम्हारी मधुर मूर्ति है ।
पावन पुरुष तपस्वी है ।
सत्कर्मों से हे तव मुनिवर ।
हम सब आज यशस्वी हैं ॥ ३ ॥
नामस्मरण का लगन लगा कर ।
गुरु का ध्यान लगाते ।
भले बुरे में भेद न जाने ।
समदर्शी कहलाते हैं ॥ ४ ॥
" जय–विजय " दो प्यारे तुम्हारे ।
चरनन के दो दास ।

कृपा दृष्टि हो तनिक तुम्हारे ।
जीते जम का फाँस ॥ ५ ॥

(जय–विजय कृत)

भजन

करके कृपा सिखा दो । बाबाजी ज्ञान हम को ।
बालक समझ के अपना । दे दो निशान हम को ॥
इस अंधःकार जग में । नाहक भटक रहा हूँ ।
कुछ कर दो मंत्र ऐसा । आ जाये ध्यान हम को ।
मूरत तुम्हारी देखूँ । दुसरा नज़र न आवे ।
सादी नज़र निहारो । तो जीत लेऊं जम को ॥
जिसको कहूँ मैं जैसा । हो जाये उसे वैसा ।
मैं चाहता हूँ ऐसा । दे देवो दान हम को ॥
हम जय-विजय हैं दोनों । चरणों के दास तुम्हारे ।
ले लो चरण में अपने । दर्शन दिखाओ हम को ।

(जय–विजय कृत)

भजन

मेरा भोला सद्गुरु बाबा ॥ धृ० ॥
मुरत बाबा की देखते ।
शंकर जैसे दिखते ॥ बाबा ॥
जटा बाँधकर भस्म लगाकर ।
सच्चा मार्ग बताते ॥ १ ॥
नित उठकर जो दर्शन करता
भाव भक्ति से कोई ॥
एक बार जो दर्शन करते ।
बार बार फिर आतें ॥ २ ॥
बड़े बड़े राजे ही आते ।
सुखी दुःखी सब जनता ॥
रामटेकड़ी नाम बसा है ।
बाबा के तप बल से ॥ ३ ॥
संकटसमय नाम जपो तुम ।
सद्गुरु बाबाजी के ॥
विभुती चुंगटी भर मुख में छोडो ।
दुःख दूर हो जाते ॥ ४ ॥

जय – विजय दो दास तुम्हारे।
नारायण गोविंद ॥
दया करो अब मेरे बाबा।
सदा हृदय में रहना ॥ ५ ॥

(जय – विजयकृत)

भजन

मोहे लागी रटन गुरु चरनन की।
चरनन की, गुरु सेवा की ॥ मोहे लागी ॥ १ ॥
राम का नाम मिला है जिसको।
गुरू आवसे उसी टेकरि को ॥
जंगल को मंगल बना दिया।
उन्होंने अपने तपोबल से ॥ २ ॥
ना हम जाए काशी मथुरा।
ना कोई तीरथ जाए।
सब तीर्थों का पुण्य मिलेगा।
उनके चरणकमल में ॥ ३ ॥

जन्म जन्म के जीवन चक्र में ।
जाने कब तक मारे फिरते ।
विधीने भेजा गुरूदेव को. ।
भाग हमारे जागे ॥ ४ ॥
ना मैं चाहूँ परमब्रह्म को
ना मैं माँगूँ मोक्ष मुक्ति को ।
मैं चाहूँ एक "गुरू कृपा" को ।
यही हमारे मनभाएँ ॥ ५ ॥

(सौ. अनुसूयादेवी अजितकुमार, B. A. (Hons.) कृत)

भजन

गुरू मिलन की आस ।
गुरुबिन व्यर्थ है जीवन सारा ॥१॥
लख चौरासी फेर में फिर के ।
पाया उत्तम मनुष्य देह को ।
सद्गुरु बिन ये कौन सिखाये ।
कैसा सफल बनाये उसको ॥ २ ॥

शारदारामजी गुरू हमारे।
पिता हमारे, देव हमारे।
आप ही मेरे ब्रह्मा विष्णु।
आप ही मेरे महेश ॥ ३ ॥
उनकी बाणि में खो जाऊँ।
अपने आपको भुल जाऊँ।
देखूँ उनकी सौम्य मूर्ति को।
जैसे प्रसन्न शिव के पाऊँ ॥ ४
प्रिय शिष्यों को प्रेम भाव से।
अपनी शरण में वे ले लेते।
शिष्यों के छोटे सुख दुःख में।
मार्गदीपक-से बन जाते ॥ ५ ॥
क्या मैं गाऊँ, क्या नहीं गाऊँ।
ब्राह्म सोच में पड जाऊँ।
मैं हूँ नारी एक छोटी-सी।
गुरु है मेरे विराट ॥ ६ ॥

(सौ. अनुसूयादेवी अजितकुमार, B. A. (Hons.) कृत)

भजन

सत गुरुजी चाकर राखो जी ॥
बाबाजी माने चाकर राखो जी ॥ ध्रु०॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ ।
नित उठ दर्शन पासूँ ॥
श्री रामटेकड़ी तीरथ आ के ।
बाबाजी तेरी महिमां गासूँ ॥
ऊँचे ऊँचे मन्दिर बनासूँ ।
विच विच राखूँ बारी ॥
सत गुरुजी के दर्शन पासूँ ।
जासूँ बल बल वारी ॥
जटा जूट माथे तिलक बिराजे ।
हथ विच सोहवे माला ॥
श्री रामटेकड़ी लीला रचावे ।
बाबा रामटेकड़ी वाला ॥
योगी आया योग करन को ।
तप करने संन्यासी ॥
पापी तारने सत गुरु आये ।
अवधपुरी के वासी ॥

(सेवक जमादार कृत)

" प्रशस्ति गीत "

हे धन्य शारदाराम ! धन्य वह माता तेरी ! जिसने तुमको उदर कक्ष में धारण करके जन्म दिया, पाला–पोषा, बड़ा किया, हे धीर तपस्वी ! !

गौरव थे तुम उसके,

किन्तु ?

समर्पण किया, जन्मभूमि को सफल बनाया

त्याग, अहिंसा सत्यकर्म का पाठ पढाया !

फिर, जब तुमको ज्ञान हुआ, तब तुमने सोचा– कर्मभूमि है ' मृत्यु-भूमि ' कुछ कर्म करो - कुछ धर्म करो, पर आगे तेरे !

प्रबल-पार्श्व-माया का बन्धन मुँह बाए था ! तुमने उसको काँट दिया अपने कर्मों से-

और हो गये वीत राग तुम सहज उदासी गृह–त्यागी ! संन्यासी ! ! का बाना धारण किया–फिर क्या था ? चमक उठी भूमाता तुझ–सा - सपूत पाकर ।

कोख हो गयी धन्य और तुम धन्य हो गये । सहज-विरागी, तपसी बन कर छोड़ दिया – दुनिया की माया ! और हुए तुम लीन – पाद पद्मों में श्रीभगवान् के।

* * *

पूना में जा 'पूत' हो गए, अपनी गहन तपस्या से उसको भी 'पूत' बना डाला। फिर कर्म भाव का उदय हुआ, जन्म भू पर आए ।
स्वर्ग तुम्हारे साथ साथ ही आया ।
कुछ कुछ सकुचाता, लज्जित-सा, वह उतर पड़ा।
फिर धन्य हो गया ।
उदासीनपुर कप्तानगंज का मन्दिर यह -
साक्षात् स्वर्ग है ।
सजग और साकार हो उठी धीर तपस्या
तेरी !
चाहे फिर तुम रहो, न रहो,
किन्तु कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी
और सुनायेगी तेरी यश–गाथा

दशों दिशाएँ, गाएँगी गौरव तेरा –
फहर फहर यह पुराय पताका मन्दिर की
जिसके कण कण में ही तुम व्याप्त हो गये !
धन्य तपस्वी !!!

(विद्याधर उपाध्याय 'मञ्जु' अज़मगढ़)

" प्रशस्ति–गीत "

हे तेज पुत्र! हे प्रभा पुंज!! हे वीतराग! संन्यासी!!
कस्तानगंज की तपोभूमि के तुम हो सहज उदासी
हे धर्मनिष्ठ! हे तपोव्रती, हे भक्त प्रवर गृहत्यागी
कैसे तेरे जीवन में यह अरुण मधुरिमा जागी !
हमने तो था सुना कि भागीरथिजी गंगा लाए।
शंकरने था भार सँभाला शेष नाग मुँह बाए।
तुमने तो साक्षात स्वर्ग ही लाकर यहाँ उतारा।
है गोलोक बना यह उपवन नन्दन बन-सा सारा।

कप्तानगंज की तपोभूमि में स्वर्ग उतर है आया।
जन जन के जीवन में अभिनव जीवन ज्योति
जगाया।
रामकृष्ण की युगुल मूर्तियों के संग राधा सीता।
दर्शन दे कृतार्थ करती हैं परम अलभ्य पुनीता।
शंकर के संग सती पार्वती आशीर्वाद लुटाती।
सिंहवाहिनी माता दुर्गा अपनी कला दिखाती।
सनक सनन्दन एक ओर हैं ध्यान-मग्न मन मारे।
एक ओर भगवान् गुरू हैं, निज कमलासन धारे।
उदासीनपुर के कण-कण में किसकी छाया डोल
रही है।
उदासीनपुर के प्रांगण में किसकी माया बोल
रही है।
उदासीनपुर का यह मन्दिर कहता सुयश कहानी
मनुज चला जाता, पर रहती उसकी अमिट
निशानी।
हे! धन्य 'शारदाराम'! कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी।
हे! धन्य 'शारदाराम'! पुराय अक्षुण्ण रहेगी।

धन्य धन्य यह पूत भूमि कप्तानगंज की,
जन्म भूमि जो तेरी।
धन्य धन्य वह पूत भूमि पावन–पूना की,
तपोभूमि जो तेरी।

(विद्याधर 'मञ्जु' अज़मगढ़ कृत,)

—०।०—

उपाहार

बालपन से ही यतिवर! शान्त शील के हे अपार।
बाणी मूक तुम्हारी करती सदा जीवन में सब
संचार।
शान्त, धीर, गंभीर, यदपि तुम, पर मन्त्र भरा
है विमोहन का।
रहते ध्यानावस्थित फिर भी जन लाभ हैं पाते
दर्शन का।
दास बने तब, बने अनुयायी लोग न कितने
इस भव में

राम रटन तब रसना करती सुसुप्त अरु जागृत में।
मनः पूतना मिलती नर को तव मुखाकृति से
क्षण में।
जीवन धन्य मनुज समझते, परम शान्ति तव
दर्शन में।
उदासीन! नहीं हितु-मित्र तुम्हारा, किस काम
हे अनासक्त।
दास बने विषयों के नर, तुम नित रहते सायासक्त।
सीख तुम्हारी 'सर्वमिदं ब्रह्म' की भस्म-काम
तुम हे त्यागी!
नग्न! पूर्णकाम करते नर को यदपि तुम हो
सहज विरागी।

("चन्दन" बडोलाशास्त्री, 'साहित्यरत्न' कृत)

भजन

ऐसा सत गुरु मेरा जेड़ा दिलाँ दीआ जानदा ए,
दुनियाँ मैं देख छडी कोई नहीं औदी शानदा।
बभूति दा कख ईक ईक लख दा ऐ,
दुखियाँ दे दुःख नूँ ओ खड़ा कटदा ऐ,
सुखियाँ नूँ होर सुख देना ओ जानदा ऐ।
दुनियाँ मैं देख छडी कोई नहीं ओदी शानदा ऐ।
मेहर दी नज़र जिथे इक वारी जावँदी,
तपदे कलेजियाँ नूँ ठँड जा कँपावदी।
ठँड औनूँ पैंदी जेड़ा देवे दान जानदा,
दुनियाँ मैं देख छडी कोई नहीं ओदी शानदा।
भुखियाँ घराँ विच भाग गुराँ लाये ने,
उजाड़ियाँ घराँ विच बूटे ला विखाये ने।
बूटिआँ नूँ फल लगे आयिआ वेला खान दा,
दुनियाँ मैं देख छडी कोइ नहीं ओदी शानदा।
पहाड़ियाँ दे उते कई महल बनाये ने,

गुरूद्वार कई, कई मन्दिर सजाये ने।
दास नूँ वी मौक़ा मिलिया दर्शन पान दा,
दुनियाँ मैं देख छडी कोई नहीं ओदी शानदा।
ऐसा सत गुरु मेरा जेड़ा दियाँ जानदा ऐ।
दुनियाँ मैं देख छडी कोई नहीं ओदी शानदा ऐ।

(सेवक हजारीलाल कृत)

दोहा

गुरु मूरत मुखचन्द्रमा, सेवक चपल चकोर।
अष्ट पहर निरखत रहूँ, गुरु मूरत की ओर॥

दोहा

आदी भवानी दाहिनी, श्रीगौरीपुत्र गणेश।
शारदाराम सतगुरू मिले, मुझे सेवा मिले हमेश।

भजन

(१) हे भगवान्, तेरी लीला का पार नहीं पाया। समय समय पर हर युग में, तूने आकर अवतार लिया। तरेता में तू राम बन आया, और द्वापर में कृष्ण बनकर जब कली का प्रचार हुआ, तो, अवध प्रान्त कृपा करके शारदाराम नाम धराया।

सुबेदार रामस्वरूपकृत

शब्द

दुनिया के लोगों एकवारी देख लो ।
पूना का स्थान । राम बिराजे ।
रामदास बिराजे ।
और बिराजे श्रीचंद्रभगवान् ॥ १ ॥

पहला नाम रामवाडी रखे थे ।
फिर आयें गुरू " शारदाराम " ।
कठिन तपस्या करी बाबाने ।
कइओं की आस पूजाई बाबाने ।
फिर रखा रामटेकड़ी नाम ॥ २ ॥

देश देश के साधु आतें ।
रामटेकड़ी रहकर रामेश्वर को जातें ।
प्रभु गुण गातें । भोजन पातें ।
सन्तों के दर्शन, मन प्रसन्न ।
करते विश्राम ॥ ३ ॥

बाबाने आ कर सत् का मार्ग बताया ।
मुझ जैसे कइओं को । पाप से बचाया ।
पाकिस्तान छोड़ हिंदुस्थान को आयें ।
प्रभु ऐसा गुरू मिलायें ।
मूलचंद पर किया एहसान ॥ ४ ॥

(कवी : मूलचंद कृत)

आरती शंकरजी की

(बाबा शारदारामजी कृत)

हरी ॐ जय पार्वतीनाथा ।
जय हर हर हर गिरीनाथा ॥ १ ॥
रामटेकड़ी राजतगण आदिक साथा ।
शिव, राजतगण आदिक साथा ।
मस्तक गंगा बिराजत शोभित चन्द्रकला,
शिव, शोभित चंद्रकला ।
कुंडल, नाग फणी के, शिव, कुंडल नाग फणी के ।
तीन नेत्र विमल ॥ जय हर० ॥
अंग विभूत रमाये, ओढे मृग छाला,
शिव, ओढे मृग छाला ।
नील कंठ में छाजत, शिव, नील कंठ में छाजत ।
नरमुंडन माला ॥ जय हर० ॥
कर में लिये कमंडलु चक्र त्रिशुलधारी,
शिव चक्र त्रिशुलधारी ।
दीनन के प्रतिपालक, शिव, दीनन के प्रतिपालक,

दुष्टन भयकारी ॥ जय हर० ॥
वामासन अर्धांगी आदिशक्ति देवी,
शिव, आदिशक्ति देवी ।
सकल सुमंगलदायिनी ।
शिव, सकल सुमंगलदायिनी ।
सुर नर मुनि सेवी ॥ जय हर० ॥
गणपत गोद विलोकत माता मोदभरी,
शिव, माता मोदभरी ।
जा के दर्शन करत,
शिव, जा के दर्शन करत ।
सारे विघन हरे ॥ जय हर० ॥
गजवदन लम्बोदर सकल सिद्धि दाता,
शिव, सकल सिद्धि दाता ।
दुख हर्ता, सुख कर्ता,
खटमुख के भ्राता ॥ जय हर० ॥
सनमुख नंदी राजत शिव चित दीने,
शिव चित दीने ।
ऋद्धि सिद्धि मंगल गावत ।
शिव; रिद्धि सिद्धि मंगल गावत ।

हाथ चवर लीनो ॥ जय हर० ॥
नाना रूप शंभु धरत मुनिजन अस गावत,
शिव, मुनिजन अस गावत ।
द्वादश मूरति धर के,
शिव, द्वादश मूरति धर के ।
पावन कियो भारत ॥ जय हर० ॥
काशी में विश्वनाथ बिराजे ।
जलनिधी तट रामेश्वर,
शिव, जलनिधी तट रामेश्वर ।
त्र्यंबकेश्वर नासिक में शोभित,
शिव नासिक में शोभित ।
उज्जैन में कालेश्वर ॥ जय हर० ॥
नागेश्वर तो बसे द्वारका, बैजनाथ, परली
शिव, बैजनाथ परली ।
केदारनाथ रहत हिमगिरी,
शिव, केदारनाथ रहत हिमगिरी ।
घुडमेश्वर देव टिली ॥ जय हर० ॥
मलकार्जुन कृष्णा तट आसन, बेरावल सोमेश्वर,
शिव, बेरावल सोमेश्वर ।

भीमा तट पर भीमाशंकर ।
शिव, भीमा तट पर भीमाशंकर ।
मालोंकारेश्वर ॥ जय हर० ॥
अगणित रूप धरे शिव ।
भक्तन हित पुनी प्रभु एक रहे,
शिव भक्तन, हित पुनी प्रभु एक रहे ।
आविनाशी सब घट घट वासी,
शिव, सब घट घट वासी ।
वेद पुराण कहे ॥ जय हर० ॥
प्रेमसहित जो सुमरे कर मन विश्वास,
शिव, कर मन विश्वास ।
सहज दयालु शंकर,
शिव, सहज दयालु शंकर ।
पुरवैं सब आशा ॥ जय हर० ॥
जय गिरीनाथजी की आरती ।
जो कोई जन गावे,
शिव, जो कोई जन गावे ।
सत्‌गुरु देव कृपाते ।
शिव सतगुरु देव कृपाते ।
भक्तिमुक्ति पावे ॥ जय हर० ॥
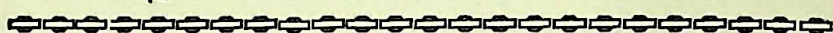
आरती श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवानजी की

(बाबा शारदारामजी कृत)

ॐ जय जय जय श्रीचन्द्र अवतारी ॥ टेक ॥
अगम निगम शिवकेर पुकारी ॥ टेक ॥
धर्म सनातन रक्षण कारण,
उदासीन भेष बिस्तारी ॥
आदि आचार्य गुरु सनक सनन्दन,
ॐ तत् सत् नित ही परचारी ॥ ॐ जय ०॥
चार कुन्ठ जा की धर्म शाला,
गावत मुनिन शब्द रशाला ॥
महिमा अद्भुत कथन न जावै,
सो जानै जो ध्यान लगावै ॥ ॐ जय ०॥
सर्गुण रूप निर्गुण दर्शावै,
जो जन रहस्य बेद का पावै ॥
श्रीगुरु नानकजी के आत्मज प्यारे,
हिन्दु धर्म के आप अधारे ॥ ॐ जय ० ॥

भूमंडल अर्थ रूप शिव धारे,
बसुधातल के भार उतारे ॥
साहब अर्जुन देव चँवर झुलावै,
राणा प्रताप स्तुति नित गावै ॥ ॐ जय० ॥
शिवाजी के गुरूजी को साहस बँधाये,
रिसायत चम्पा में शिला तराये ॥
ब्रह्मपुरी इन्द्रासन पधार्यो,
श्रीविष्णूजी के दर्श भयो सुखकारी ॥ ॐ जय ० ॥
रूस जापान जर्मन अमरीका,
चहुंदिस सत्य सत्य कियो प्रचारी ॥
राजा महाराजा और पीर अवलिया,
सब जावै चरणन परवालि हारी ॥ ॐ जय ० ॥
जो जन आरती श्रीचन्द्रजी की गावें,
ध्यान धरै अरु नाम रट लो वे ॥
शारदाराम मुक्ति मुनिन दर्शावै,
सद्गुरू कृपा से परमपद पावै ॥
ॐ जय जय जय श्रीचन्द्र अवतारी ॥ टेक ॥

आरती

श्रीसद्गुरु बाबा शारदारामजी की

ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम।
स्वामी जय जय जय गुरु शारदाराम॥
अवधपुरी से आये पूना में किया स्थान।
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम॥ १॥
दुःख को मिटाओ सुख को दिलाओ।
नाम का अमृत पिलाओ।
स्वामी, नाम का अमृत पिलाओ।
मनमन्दिर में बस जावो॥
मनमंदिर में बस जावो।
दीजो सेवा दान॥
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम॥ २॥
पड़ गया काम-क्रोध का फँदा।
लगा तू उसे डँडा।
स्वामी, लगा तू उसे डँडा।
मुझ में शक्ति नहीं है॥

स्वामी, मुझ में शक्ति नहीं है।
बचाना तेरा काम ॥
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम ॥ ३ ॥
बभूति तुम्हारी। सब फल देती।
मन को हर लेती।
स्वामी, मन को हर लेती।
जैसी जिसकी आशा ॥
जैसी जिसकी आशा।
करती पूरण काम ॥
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम॥ ४ ॥
राजे आतें रानी आतीं, द्वार पे प्रभु तेरे ॥
स्वामी, द्वार पे प्रभु तेरे।
देख देख छबी मोहे ॥
देख देख छबी मोहे, करते बचन स्नान ।
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम ॥ ५ ॥
बिनती करूँ मैं तेरे आगे। दुःख न कोइ मुझे लागे।
स्वामी दुःख न कोई मुझे लागे।
दिनरात्त लगन हो तेरी ॥

दिनरात लगन हो तेरी, होवे पूरण ज्ञान ॥
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम ॥ ६ ॥
शाँति की मूरत। मोहनी सूरत। सुंदर जटाधारी।
स्वामी, सुंदर जटाधारी। मौनी तपस्वी ब्रह्मज्ञानी।
मौनी तपस्वी ब्रह्मज्ञानी। तीनों तेरे नाम ॥
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम ॥ ७ ॥
उदासीन पंथ को धारण करके।
बने प्रभू तू जोगी। स्वामी बने प्रभू तू जोगी।
शिष्य सेवक शरण तुम्हारी ॥
शिष्य सेवक शरण तुम्हारी। जपते आपका नाम।
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम ॥ ८ ॥
लिखन लिखावन आप स्वामी।
मुझको निमित किया।
स्वामी, मुझको निमित किया।
मूलचंद सेवक क्या जाने ॥
मूलचंद सेवक क्या जाने। आपकी लीला राम ॥
ॐ जय जय जय गुरु शारदाराम ॥ ९ ॥

(कवी मूलचंद कृत)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

" जीवन-चरित्र " प्रकाशन-समारोह

पूना नज़दीक की प्रसिद्ध " श्रीरामटेकड़ी " (हडपसर) पर आबाल-वृद्धों के पूजा-स्थान बने हुए श्रीमान् १०८ सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन के " जीवन-चरित्र " ग्रंथ का प्रकाशन-समारोह, रविवार, तारीख २९-११-१९५३ के रोज़ श्रीरामटेकड़ी पर शिवमंदिर के विस्तीर्ण खुले आवार.में, सायंकाल के ५ से ७॥ की समय में मनाया गया ।

समारोह-स्थान शाम के पाँच बजे से ही स्त्री-पुरुषों से फुला हुआ था । आये हुए लोगों में पूना-शहर और कैंप, खड़की और हड़पसर यहाँ के प्रसिद्ध ब्यौपारी, नानक गुरु की शिष्यमंडली, वड़े बड़े फ़ौजी अफ़सर और कई नागरिक उपस्थित थे । सद्गुरु बाबा शारदारामजी के लिये पश्चिमाभिमुखी सुशोभित शामियाना और अध्यक्ष महोदय के लिये निराला व्यासपीठ बनवाया था । समारोह के जगह पर विज़ली की रोशनी और सभा के कार्य के लिये लाउड़ स्पीकर्स की अच्छी व्यवस्था की गयी थी । क़रीबन् बारह सौ से पंद्रह सौ तक जन-समाज इस समारोह पर उपस्थित था ।

श्री. नारायणराव बोगम इनके ईश-स्तवन और स्वागत-गीत होने के बाद श्री. पी. के. गुप्ताजीने अध्यक्षता का प्रस्ताव पेश किया । उसे श्री. राधेश्याम बडोलाशास्त्रीने अनुमती दी । उसके अनुसार समारोह महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदारजी की अध्यक्षता में शुरू हुआ । पहले पहल श्री. राधेश्याम बडोलाशास्त्रीने स्वागत में भाषण की । उन्होंने अपने भाषण में श्रीशारदारामजी महाराज के जीवन का महत्त्व बता दिया । इसके बाद महाराजजी के पूराने शिष्य श्री. गोविंदराव जाना इन्होंने खास कर समारोह के लिये आये हुए संदेश और ग्रंथ के अभिप्रायों को पढ़ कर बताया ।

अनन्तर श्रीमान् अध्यक्ष महोदयने छोटा-सा भाषण कर के ग्रंथ को पुष्पाक्षता से पूजा कर श्रीशारदाराम महाराजजी को अर्पण किया और " ग्रंथ-प्रकाशन" ज़ाहिर की ।

इसके बाद डॉ. पी. वी. करमचंदानी, श्री. व. ग. देवकुले (विश्वस्त : चित्रशाला प्रेस, पूना), कैप्टन शिवराम शर्मा, डॉ. शाँखला और श्री. ग. म. नलावडे, (मेयर, पूना म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन) इन्होंने अपने भाषणों में गुरुमहाराजजी के जीवन के अलग अलग पहलुओं को दिखाये ।

आख़िर अध्यक्ष महामहोपाध्याय पोतदारजी " जीवन-चरित्र " इस ग्रंथ के बारे में कहते हुए बोले कि " मैं इतिहास देखने वाला, प्रमाण पर आधारित ऐसी चीज़ें मानने वाला एक विचार करने वाला आदमी हूँ। श्रीशारदारामजी महाराज का जीवन-चरित्र देख कर मुझमें जिज्ञासा निर्माण हुआ और बाबाजी की तपस्या और प्रभु-सेवा का अच्छा परिचय मिला। उनके एक-दो वक्त के दर्शन से मुझे उनके बारे में प्रमाण मिल गया। और आज उनका " जीवन-चरित्र " ग्रंथ का प्रकाशन करने में मैं मुझको धन्य समझता हूँ। उनके जीवन-पद्धति के अनुसार उन्होंने बहुतों का मार्गदर्शन किया है और आज भी कर रहे हैं। " महाराजजी की शांत साधुवृत्ति और श्रीरामटेकड़ी का स्थान-माहात्म्य के विषय में उन्होंने अपने भाषण में वर्णन किया।

अध्यक्ष महोदय के भाषण के बाद " तपोभूमि " यह चित्रपट- जिसमें श्रीरामटेकड़ी और बाबा शारदारामजी के बारे में चित्रित किया गया है— आम जनता को दिखाया गया। इसके बाद समारोह के लिये खास कर आये हुए महनीय अध्यक्ष महामहोपाध्याय पोतदार, महापौर (मेयर) नलावडे, श्री. देवकुले, डॉ. करमचंदानी, डॉ. शाँखला और कैप्टन शर्मा इनको और इकठ्ठे हुए सभी लोगों को प्रसाद दिया गया। इस समारोह की यशस्विता को धन्यता देते हुए लोग अपने अपने घर लौटे। इसका सर्व श्रेय महाराजजी के स्वार्थ निरपेक्ष बुद्धि से काम करने वाले जीवनचरित्र प्रकाशन समिति के सदस्य और शिष्य-सेवक गणों को ही मिलना आवश्यक है। [ता. ३०-११-१९५३]

अभिप्राय

(लेखक :—कैप्टन सोहनसिंग सोढ़ी)

श्रीमान् सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन इनका दर्शन लाभ मुझे सन १९४३ से मिल रहा है। उनके दर्शन और उपदेश से मनुष्य का ऐहिक और पारलौकिक कल्याण दोनों बन जाता है यह मेरा अनुभव है। जो बाबाजी के दर्शन को आते हैं उनको बाबाजी सत्यधर्म का उपदेश करते रहते हैं। पाठक गणों से मेरी प्रार्थना है कि बाबाजी का दर्शन सत्संग करके अपना लोकपरलोक दोनों कल्याण साध्य करें।
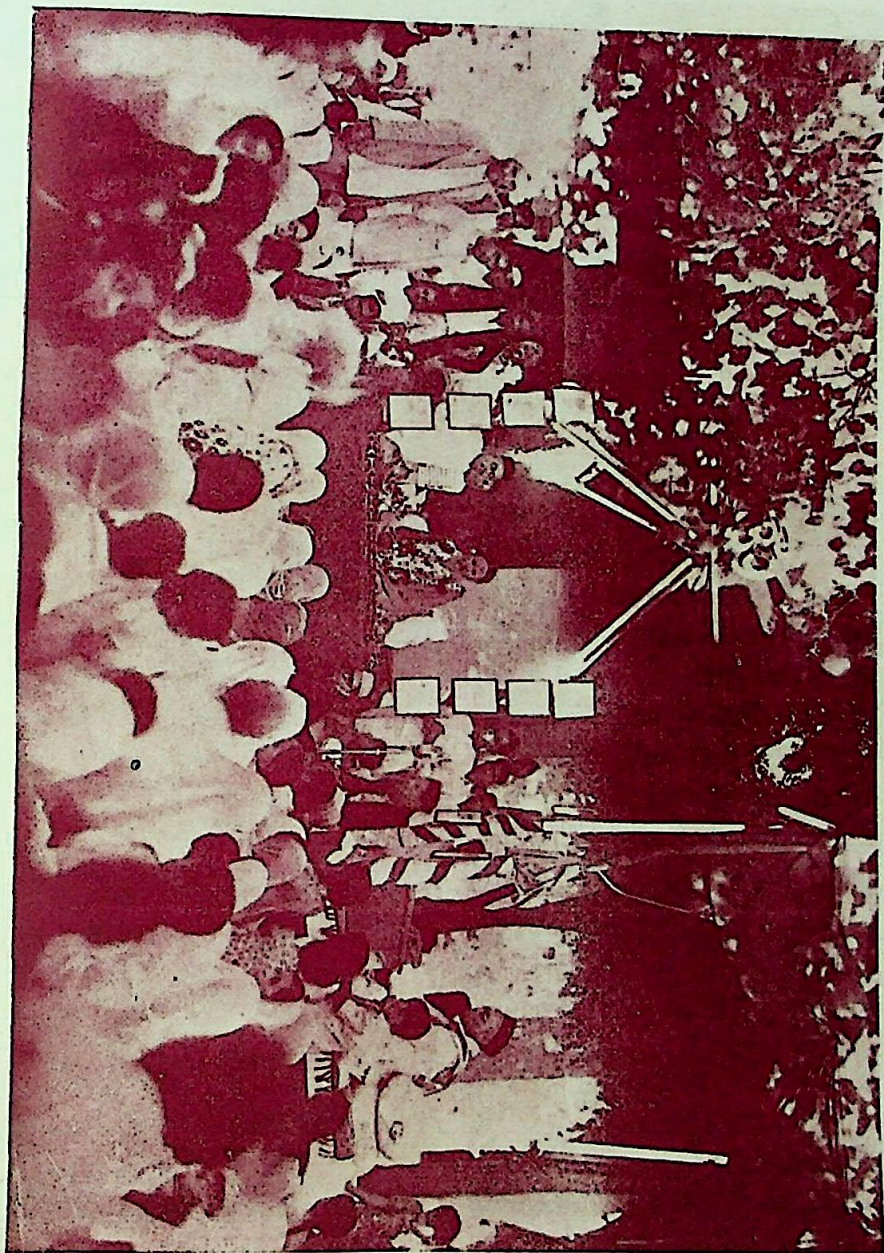
'जीवन-चारित्र' ग्रंथ प्रकाशन समारोह के समय का दृश्य।
मिति, कार्तिक व॥ ९, शके १८७५, रविवार, दि. २९।११।१९५३

'जीवन-चरित्र' ग्रंथ प्रकाशन समारोह के समय का दृश्य।

मिति कार्तिक व॥ ९, शके १८७५, रविवार, दि. २९।११।१९५३